आचार्यश्रीभद्रबाहुसूरिविरचिता

कल्पनिर्युक्तिः

(चूर्णि-अवचूर्णिसहिता)

आचार्यश्रीभद्रबाहुसूरिविरचिता

कल्पनिर्युक्तिः

(चूर्णिः-अवचूरिसहिता)

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र

ग्रन्थनाम	:	**कल्पनिर्युक्तिः (चूर्णिः-अवचूरिसहिता)**
ग्रन्थकर्ता	:	**आ. श्रीभद्रबाहुसूरि**
अवचूरि	:	प्राचीन-**अज्ञात,** नवीन-**आ. श्रीमाणिक्यशेखरसूरि**
सम्पादक	:	**मुनिश्रीवैराग्यरतिविजयजीगणिवर**
भाषा	:	**प्राकृत+संस्कृत**
पत्र	:	२४+१११
प्रकाशक	:	**श्रुतभवन संशोधन केन्द्र - शुभाभिलाषा रीलीजीयस ट्रस्ट**
आवृत्तिः	:	**प्रथमा**

~: प्राप्तिस्थान :~

पूना	:	**श्रुतभवन संशोधन केन्द्र** ४७-४८, अचल फार्म, आगममंदिर से आगे, सच्चाइ माता मंदिर के पास, कात्रज, पुणे-४११०४६ Mo. 7744005728 (9-00am to 5-00pm) www.shrutbhavan.org Email : shrutbhavan@gmail.com
अहमदाबाद	:	**श्रुतभवन संशोधन केन्द्र (अहमदाबाद शाखा)** C/o. उमंग शाह बी-४२४, तीर्थराज कॉम्पलेक्स, वी. एस. हॉस्पिटल के सामने मादलपुर, अहमदाबाद-३८०००६, मो. ०९८२५१२८४८६
अक्षरांकन	:	**अखिलेश मिश्र, विरति ग्राफिक्स, अहमदाबाद** फोन : मो. ०८५३०५२०६२९, ७४०५५०६२३०

प्रकाशकीय

'श्रुत की सुरक्षा के साथ व्यापक अध्ययन एवं संशोधन में सहभागी होना' हमारा मुद्रालेख है । इस शास्त्र के सम्पादन में कल्पनिर्युक्ति, प्राचीन और नवीन अवचूर्णि के शब्दकोश एवं धातुकोश का संकलन किया है । इसकी उपयोगिता एवं मुद्रण सम्बन्धी मर्यादाओं को देखते हुए शब्दकोश एवं धातुकोश का परिशिष्ट डीजीटल रूप में (CD) सुरक्षित रखा है । आ.श्री माणिक्यशेखर सू.कृत कल्पनिर्युक्ति की पाण्डुलिपि के छायाचित्र भी CD में हैं ताकि कोई विद्वान् मूलप्रत का भी अवगाहन कर सके । जिज्ञासुओं के लिये इसकी कॉपी श्रुतभवन संशोधन केन्द्र से उपलब्ध हो सकती है ।

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र की गतिविधि में विशेषत:

विद्वान् संशोधक पूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजय **मुनिचंद्रसूरिजीम.,**

प्राचीनश्रुतसंरक्षक पूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजय **हेमचंद्रसूरिजी म.,**

विद्वान् संशोधक पूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजय **विजयशीलचंद्रसूरिजी म.,**

सुविशालगच्छाधिपति पूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजय **पुण्यपालसूरिजी म.,**

उदारचेता पूज्य पंन्यासप्रवरश्री **वज्रसेनविजयजी** गणिवर के आशिष, मार्गदर्शन एवं सहायता प्राप्त होते रहते हैं । हम उनके चरणों में नतमस्तक होकर वंदन करते हैं ।

'कल्पनिर्युक्ति' एक छेद ग्रन्थ है । परम्परा में वर्णित अधिकृत महात्मा ही इसके पठन के अधिकारी है । पाठकवर्ग इस मर्यादा का ख्याल करके शास्त्र में प्रवेश करें । श्रुतभवन संशोधन केन्द्र की समस्त गतिविधियों के मुख्य आधार स्तंभ मांगरोळ (गुजरात) निवासी श्री चंद्रकलाबेन सुंदरलाल शेठ परिवार एवं भाईश्री (ईन्टरनेशनल जैन फाऊन्डेशन, मुंबई) के हम सदैव ऋणी है ।

दिनांक ६-१-१२

भरतभाई शाह
मानद अध्यक्ष

श्री सिद्धगिरिराज की छत्रछाया में

वि.सं. २०६७ वर्ष के जैनशासन शिरताज,

दीक्षायुगप्रवर्तक, तपागच्छाधिराज, पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजयरामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.के शिष्यरत्न

गुरुगच्छ विश्वासधाम, वर्धमान तपोनिधि,

पूज्य आचार्यदेव श्री विजयगुणयशसूरीश्वरजी म.सा.के शिष्यरत्न

प्रवचन प्रभावक पूज्य आचार्यदेव श्री विजयकीर्तियशसूरीश्वरजी म.सा.

एवं कुलदीपिका पूज्य साध्वीश्री राजनंदिताश्रीजी म.सा.के

सदुपदेशसे धानेरा निवासी

मातुश्री चंपाबेन जयंतिलाल दानसुंगभाई अजबाणी

धानेरा डायमंडस् परिवार द्वारा आयोजित चातुर्मास में

उत्पन्न ज्ञानद्रव्य से इस पुस्तक के प्रकाशन का

पुण्यलाभ लिया गया है।

आपकी श्रुतभक्ति की अनुमोदना ।

संपादकीय

दशाश्रुतस्कन्ध का आठवाँ कल्प नामक अध्ययन कल्पसूत्र के नाम से प्रसिद्ध है । दशाश्रुतस्कन्ध की निर्युक्ति के अन्तर्गत कल्प-अध्ययन की निर्युक्ति गाथाओं को 'कल्पनिर्युक्ति' कहा जाता है । दशाश्रुतस्कन्ध के ऊपर अनेक टीका, वृत्ति, पर्याय आदि विवरण उपलब्ध हैं । आ. श्री माणिक्यशेखरसूरि ने केवल कल्प-अध्ययन का विवरण करते हुए अवचूरि की रचना की है । प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रधान सम्पाद्य वस्तु वही है । विषय को स्पष्टता से समझने के लिये प्रस्तुत सम्पादन में प्राचीन चूर्णि को भी स्थान दिया है । प्राचीन चूर्णी, **पवित्रकल्पसूत्र**[१] पुस्तक से उद्धृत है । आ.श्रीमाणिक्यशेखर सू. कृत अवचूर्णि प्रथमतया ही प्रकाशित हो रही है । भाण्डारकर भारतीय प्राच्य विद्या संशोधन संस्थान (भाण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च सेन्टर) स्थित हस्तप्रत के आधार पर यह संशोधन सम्पन्न हुआ है ।

जैसा कि पहले कहा है–'कल्पनिर्युक्ति' दशाश्रुतस्कन्ध की निर्युक्ति का एक भाग है। अतः इसकी निर्युक्ति गाथाओं का क्रम दो प्रकार का रखा है । एक-दशाश्रुतस्कन्ध की निर्युक्ति का क्रम, दूसरा-कल्पअध्ययन की निर्युक्ति गाथाओं का क्रम । परिशिष्ट में दोनों प्रकार के क्रमों का उल्लेख किया है । कल्पनिर्युक्ति गाथाओं में भी न्यूनाधिक्य दिखाई देता है। प्रस्तुत सम्पादन में उभय चूर्णि में विवृत या तो उल्लिखित गाथाओं को ही स्थान दिया है। **'निर्युक्तिपञ्चक'**[२] में–

विज्जो ओसह निवयाहिवई (गाथा-१३) इस गाथा को कल्पनिर्युक्ति में नहीं गिना है। क्योंकि यह प्राचीन चूर्णि में व्याख्यात नहीं है । लेकिन आ. श्रीमाणिक्यशेखरसूरि म. की चूर्णि में इसकी व्याख्या है, इसलिये उसे यहाँ स्थान दिया है ।

पसत्थ विगतिग्गहणं तत्थ वि य असंचइय उ जा उत्ता ।
संचइय ण गेण्हंती, गिलाणमादीण कज्जट्ठा ॥ (८२/२१ नि.पं.)

इस गाथा को निर्युक्तिपञ्चक में अतिरिक्त गिना है । दोनों चूर्णियों में इसकी व्याख्या न होने से इसका यहाँ समावेश नहीं किया गया है ।

डगलच्छारे लेवे छड्डाण गहणे तहेव धरणे य ।
पुंछण गिलाण मत्तग, भायण भंगावि हेतू से ॥ (गा. ८८ नि.पं.)

---

१. सम्पादक-मुनिराजश्री पुण्यविजयजी म., प्रकाशकः साराभाई नवाब ।

२. जैन विश्व भारती, लाडनूं से प्रकाशित ।

यह गाथा चूर्णि में व्याख्यात नही है, अतः इसका भी समावेश यहाँ नहीं है ।

यद्यपि इस गाथा का विवरण प्राचीन चूर्णि में है और अर्थ संगति की दृष्टि से प्रस्तुत भी है । क्योंकि उसके विना द्रव्यस्थापना के सातवें अचित्त द्वार की व्याख्या अधूरी रहती है ।

चउसु कसाएसु गती निरयतिरि माणुसे य देवगती ।
उवसमह णिच्च कालं सोग्गइ मग्गं वियाणंता ॥ (नि.पं. १०४/१)

यह गाथा भी चूर्णि में व्याख्यात नहीं है । निर्युक्तिपञ्चक में भी इसे अतिरिक्त गिना है । अतः यहाँ भी समाविष्ट नहीं है ।

प्राचीन चूर्णि एवं आ. माणिक्यशेखरसूरि के अवचूर्णि की निर्युक्ति गाथा में कुछ पाठ-भेद मिलते हैं, वह निम्नप्रकार हैं,

गाथा क्र.	**प्राचीन चूर्णि**	**आ. माणिक्यशेखरसूरिजी की चूर्णि**
गाथा ७	मासट्ठ	मासेट्ठ
गाथा ८	महिगा तो	अहिगा तु
गाथा ८	असाहगवाघाएण	साहगवाघाएण (प्रा. चूर्णेः पाठः सम्यक्)
गाथा १८	ठियाण जाव	ठियाणऽतीए (अव. अनुसारेण जाव. इत्येव सम्यक्)
गाथा २४	मोत्तूण	मोत्तूणं
गाथा ३८	पाणाणं	पाणा
गाथा ४७	रद्धेय	लद्धेय (अर्थभेद)
गाथा ५१	पंडरज्ज	पंडुरज्ज
गाथा ५२	सुवट्ठाइऽति कोवे	सुवट्ठाऽतिकोवे
गाथा ५५	गिण्हावइ	गाहावइ
गाथा ५७	पंडरज्जा	पंडुरज्जा
गाथा ५९	वेरग्गी	वेरग्ग
गाथा ६०	गतवइरे	गतवेरे
गाथा ६१	पच्छित्ते बहु पाणा	पच्छित्तं बहु पाणा
गाथा ६७	अ पंचमए	अ पच्छिमए

कल्पनिर्युक्ति की प्राचीन चूर्णि एवं आ. माणिक्यशेखरसूरि की अवचूर्णी में कुछ व्याख्याभेद भी मिलते हैं, वह निम्न प्रकार हैं :

१. प्राचीन चूर्णि में पर्युषण शब्द के नौ गौण=गुणनिष्पन्न नाम बताये हैं । आ. माणिक्यशेखरसूरि. कृत अवचूर्णि में इनकी संख्या दस है, प्राचीन चूर्णि में पर्यायव्यवस्थापना और पर्युसमणा को एक ही गिना है ।

२. गाथा ९ : 'साहग' और 'असाहग' शब्द भेद है, अर्थ एक ही है, वैसे 'अ' होना चाहिए ।

३. गाथा २४ : प्राचीन चूर्णि में 'यहाँ से क्षेत्राधिकार प्रारम्भ होता है ।' और 'विदिशा को क्यों ग्रहण नहीं किया ?' इस प्रश्न का समाधान; ये दो बातें स्पष्ट की हैं ।

४. गाथा २७ : प्राचीन चूर्णि में 'दगघट्ट' इस 'पारिभाषिक' शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है ।

५. गाथा २९ : आहार व्युत्सर्जन की स्पष्टता प्राचीन चूर्णि में है ।

६. गाथा ३० । 'विगति' का अर्थ प्राचीन चूर्णि में स्पष्ट किया है, 'संयम से असंयम में जाना ।' चातुर्मास विगइ त्याग करने का कारण स्पष्ट किया है, 'बिजली और बादलों की आवाज सुनकर मोह में विवृद्धि होती है ।'

७. गाथा ३५ : प्राचीन चूर्णि में वर्षाकाल में दीक्षा न देने के कारण बताये हैं ।

८. गाथा ३८ : समिति पालन की उपयोगिता प्राचीन चूर्णि में है, पाँच समिति के उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

चूर्णि एवं अवचूर्णि के कर्ता

कल्पनिर्युक्ति की प्राचीन चूर्णि के कर्ता अज्ञात है । निशीथ शेष चूर्णि के कर्ता श्री जिनदासगणि महत्तर से वे भिन्न होने चाहिये । क्योंकि दोनों की शैली में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है । इतना तो स्पष्ट है कल्पनिर्युक्ति के चूर्णिकार निर्युक्ति रचना के बाद तुरन्त में हुए है । 'पवित्र कल्पसूत्र' में आगम प्रभाकर पू.मु.श्री पुण्यविजयजी म. ने भी इनको अज्ञात ही माना है ।

अवचूर्णि के कर्ता-श्री माणिक्यशेखरसूरिजी., आ. माणिक्यसुन्दरसूरिजी इस नाम से भी प्रसिद्ध हैं । इनका काल एवं इतिवृत्त अद्यावधि कालगर्भ है । आ. माणिक्यसुन्दरसूरिजी, आ. जयशेखरसूरिजी के पास पढ़े थे । इनकी नौ रचनाएँ उपलब्ध हैं । (१) सं. १४६३ में 'श्रीधरचरित्र सं. (कां. छाणी), (२) चतुःपर्वीकथा चम्पू, (३) शुकराज कथा (भां, १ नं. ८३, प्र. हंसविजय जैन फ्री ग्रन्थमाला नं. २०), (४) अजापुत्र कथा, (५) संविभागव्रत कथा, (६) पृथ्वीचन्द्र कथा, (७) सं. १४७८ में 'गुणवर्मा चरित्र' और (८) सं. १४८४ में (कां. छाणी, बुह. ४, नं. २४१, खेडा भं.), 'साचोर, चन्द्रधवल, धर्मदत्त कथा (बुह. ३, नं. १६०. कां.

छाणी, रीपोर्ट, १८७२-७३, नं. १६०, वे.नं. १७४४), उसके उपरान्त गुजरात के राजा शंख की सभा में (टीका में उसकी प्रशस्ति-**शंखस्य नरेश्वरस्य पुरतोऽप्यूचे**) कथित (९) महाबल-मलयासुन्दरी चरित्र सर्ग : ४ (कां. छाणी, पी १, नं. ३१३) उपलब्ध है[१] ।

मो.द. देसाई के 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' के अनुसार आ. माणिक्यशेखरसूरिजी आ. माणिक्यसुन्दरसूरिजी से भिन्न है । आंचलगच्छ के आ. श्रीजयशेखरसूरि, के शिष्य आ. श्रीमेरुतुंगसूरि हुए । उनके दो शिष्य थे (१) आ. **माणिक्यसुन्दरसूरि** (जिनकी रचनाओं का उल्लेख 'जैन परम्परानो इतिहास' में है) (२) आ. **माणिक्यशेखरसूरि** । उनकी आठ रचनाएँ हैं । (१) कल्पनिर्युक्ति अवचूरि (बुह. ७, नं. १९), (२) आवस्सयसुत्तणिज्जुत्ती-टीकादीपिका (बुह्. ८, नं. ३७३), (३) श्रीओघनिर्युक्तिदीपिका, (४) पिण्डनिर्युक्तिदीपिका (बुह्.) ८ नं. ३८९), (५) दसवेयालियणिज्जुत्तीदीपिका, (६) उत्तरज्झयणदीपिका, (७) आचारांगसुत्तदीपिका, (८) नवतत्त्व विवरण आदि है । गुजराती गद्य में उनकी रचना ''पृथ्वीचन्द्र चरित्र'' के बारे में जानकारी मिलती है । उपर्युक्त प्रत्येक 'माणिक्यांक' है । उनकी उपलब्ध रचना आवश्यकनिर्युक्तिदीपिका के अनुसार इनके गुरु का नाम आ. श्री मेरुतुंगसूरि है, ऐसा ज्ञात होता है । आचारांग दीपिका और नवतत्वविवरण से समझ में आता है, कि ये सभी एक ही कर्ता के रचे हुए सहोदर रूप हैं (एककर्तृतया ग्रन्था अमी अस्याः सहोदराः) । इससे अधिक उनके समय आदि के बारे में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है[२] ।

आ.श्रीमाणिक्यशेखरसूरिजी अंचलगच्छीय आ.श्रीमहेन्द्रप्रभसूरिजी के शिष्य आ.श्रीमेरु-तुंगसूरिजी के शिष्य हैं, आवश्यकनिर्युक्ति-दीपिका के उपरान्त उनकी अन्य कृतियाँ भी हैं : १. दशवैकालिकनिर्युक्ति-दीपिका, २. पिण्डनिर्युक्तिदीपिका, ३. ओघनिर्युक्तिदीपिका, ४. उत्तराध्ययनदीपिका, ५. आचार-दीपिका की प्रशस्ति इस प्रकार है :

ते श्रीअञ्चलगच्छमण्डनमणिश्रीमन्महेन्द्रप्रभ-
श्रीसूरीश्वरपट्टपङ्कजलसमुल्लासोल्लसद्भानवः ।
तर्कव्याकरणादिशास्त्रघटनाब्रह्मायमाणाश्चिरं,
श्रीपूज्यप्रभुमेरुतुङ्गगुरवो जीयासुरानन्ददाः ॥१॥

तच्छिष्य एष खलु सूरिरचीकरत् श्री-
माणिक्यशेखर इति प्रथिताभिधानः ।
चञ्चद्विचारचयचेतनचारुमेनां,
सद्दीपिकां सुविहितव्रतिनां हिताय ॥२॥

---

१. जैन परम्परानो इतिहास भाग. २, पृष्ठ ४१७, इ.स. २००१ का प्रकाशन ।

२. मो.द.देसाई का जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास ।

मुनिनिचयवाच्यमाना तमोहरा दीपिका पिण्डनिर्युक्तेः ।
ओघनिर्युक्तिदीपिका दशवैकालिकस्याप्युत्तराध्ययनदीपिके ॥३॥
आचारदीपिकानवतत्त्वविचारणं तथास्य ।
एककर्तृतया ग्रन्था अमी अस्याः सहोदराः ॥४॥

आ.श्रीमाणिक्यशेखरसूरिजी संभवतः विक्रम की १५वीं सदी में विद्यमान थे । अंचल-गच्छीय मेरुतुंगसूरिजी के शिष्य आ.श्रीजयकीर्तिसूरिजी ने वि. सं. १४८३ में एक चैत्य की देरी की प्रतिष्ठा की थी; जिसका लेख इस प्रकार है : *'संवत् १४८३ वर्षे प्रथम वैशाख शुद १३ गुरौ श्रीअंचलगच्छे श्रीमेरुतुंगसूरीणां पट्टधरेण श्रीजयकीर्तिसूरीश्वर सुगुरूपदेशेन... श्रीजिराउला पार्श्वनाथस्य चैत्ये देहरि (३) कारापिता ।'* प्रस्तुत दीपिका के प्रणेता आ.श्रीमाणिक्यशेखरसूरिजी भी अंचलगच्छीय आ.श्रीमेरुतुंगसूरिजी के शिष्य हैं । इसलिये जयकीर्तिसूरिजी और आ.श्रीमाणिक्यशेखरसूरिजी के गुरुभ्राता के जैसे मानने पर दीपिकाकार आ.श्रीमाणिक्यशेखर-सूरिजी का समय विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी का साबित होगा । दूसरी बात यह भी है कि ग्रन्थ की वि.सं. १५५० से पहले लिखी हुई कोई प्रत नहीं है जिसके आधार पर उन्हें अधिक प्राचीन साबित कर सकें ।

हस्तप्रत

दशाश्रुतस्कन्ध पर जो टीका साहित्य उपलब्ध है उसकी पाण्डुलिपियाँ कहाँ-कहाँ हैं इसकी सूची निम्नप्रकार है, यह सूची जिनरत्नकोश[१] से ली गयी है ।

१. दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णिः ग्रं. २२२५ ।

१. श्री हंसविजयजी महाराज ग्रन्थालय, वडोदरा । नं. ५८१ ।

२. शान्तिनाथ मन्दिर, भण्डार, खम्भात । पोथी नं. ४९ (प्रत नं. २), पोथी नं. ५१ (प्रत नं. १) ।

३. ज्ञानविमलसूरि भण्डार, खम्भात । नं. ७१ ।

४. जेसलमेर का बडा भाण्डार । नं. १३६५ ।

५. सम्मतिरत्न सूरि भण्डार, खेडा । नं. ८८, (वर्तमान में यह ज्ञानभण्डार आनन्दजी कल्याणजी पेढी, अहमदाबाद में है ।)

६. भंठ की कुण्डी, भण्डार-जेसलमेर । नं. २९० ।

७. फोफलिया वाडा, वखतजी शेरी, भण्डार, पाटन । पोथी नं. ४५ (प्रत नं. २, ३) ।

---

१. सं. हरि दामोदर वेलणकर (एम.ए.) ।

८. आगली सेरी, फोफलिया वाडा, भण्डार, पाटन । पोथी नं. २३ (प्रत नं. ३) ।

९. चुनीलाल मुलजी भण्डार, झवेरी वाडा, पाटन । पोथी नं. ६ (प्रत नं. ६) ।

१०. वाडी पार्श्वनाथ पुस्तक भण्डार, झवेरी वाडा, पाटन । पोथी नं. १० (प्रत नं. १), पोथी नं. १९ (प्रत नं. १२), पोथी नं. २३ (प्रत नं. १०) ।

११. जैनानन्द भण्डार, गोपीपुरा, सुरत, नं. १७४२ ।

१२. पार्श्वनाथ मन्दिर, जेसलमेर , नं. ४५२ ।

इनके अलावा जिन सूचीपत्रों में इस दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णि का उल्लेख है वह निम्न प्रकार है ।

१. बृहत् टिप्पणक, नं. ३६ ।

२. डॉ. बुल्हेर का तीसरा संकलन, जो "The Collection of 1872-1873" के नाम से विख्यात है, नं. १०५ ।

३. जेसलमेर भण्डार का पाण्डुलिपियों का सूचीपत्र, गायकवाड ओरियण्टल सिरिज्, बडोदा, १९२३ में प्रकाशित । pp. 2; 43; (compare DI. P.24)

४. जैन ग्रन्थावली अथवा जैन कार्यों की सूची । वह जैन श्वेताम्बर कॉन्फरन्स प्राप्त है और उन्ही के द्वारा Bombay Pydhoni, 1909 से प्रकाशित है । पेज १४

५. डॉ. किल्होर्न कि संग्रहित तीसरी सूची वह "The Collection of 1881-1882" इस नाम से भी ज्ञात है । नं. १५८,

६. डॉ. पिटरसन का तीसरा रिपोर्ट, पेज १४२, १८१ ।

७. डॉ. पिटरसन का चौथा रिपोर्ट, नं. १२६३, १२६४, परिशिष्ट पत्र नं. १०० ।

१. दशाश्रुतस्कन्ध टीका :

इसे 'जनहिता' कहते हैं, और इसका संकलन ब्रह्ममुनि या ब्रह्मसूरि ने किया है, जो तपागच्छ के पार्श्वचन्द्र के शिष्य हैं । (ग्रं. ५१५०, आदि-यथास्थितशेष) ।

१. विजयधर्म लक्ष्मी ज्ञानमन्दिर, बेलनगंज, आगरा । नं. २०४,

२. मुनि श्री कांतिविजयजी ग्रंथालय, नरसिंहजी पोल, वडोदरा, नं. ३०२ ।

३. डेलाउपाश्रय भण्डार, अहमदाबाद । पोथी नं. १४ (प्रत नं. २९, ३०), पोथी नं. ७३ (प्रत नं. १०) ।

४. डेला उपाश्रय भण्डार, अहमदाबाद । पोथी नं. ७ (प्रत नं. ७, ८) ।

५. श्री हंसविजयजी महाराज, ग्रन्थालय । नं. १५७७ ।

६. श्री हरिसागरगणि, जयपुर का अन्तर्गत भण्डार । नं. १९ (दिनांक : संवत् १६५१) ।

७. श्री हरिसागरगणि, जयपुर का बाह्य भण्डार, नं. २० ।

८. लिमडी भण्डार, लिमडी, जि. अहमदाबाद, नं. २०४, ४५६ ।

९. जैनानन्द भण्डार, गोपीपुरा, सुरत, नं. १६२ ।

१०. विमल गच्छ, उपाश्रय भण्डार, अहमदाबाद । डाभडा नं. ७ (पोथी नं. १४, १७) ।

इनके अलावा जिन सूचीपत्रों में इस टीका का उल्लेख है वह निम्न प्रकार है ।

१. डॉ. बुल्हेर का चौथा संकलन, जो "The Collection of 1873-1874", इस नाम से विख्यात है, नं. १५६ ।

२. जैन ग्रन्थावली प्रकाशक जैन श्वेताम्बर कॉन्फरन्स–Bombay Pydhoni, 19091 पत्र नं. १४ ।

३. प्रा. ए.बी. काथवटे, का रिपोर्ट । यह संकलन "The Collection of 1895-1902", इस नाम से विख्यात है, जो अभी भाण्डारकर संशोधन केन्द्र में स्थित है, नं. १०८९ ।

३. टीका : अज्ञात ।

१. बीकानेर के महाराजा का ग्रन्थालय, नं. १६५३ ।

२. संस्कृत कॉलेज, बनारस, नं. ४७२, ७१७ ।

३. श्री जैनानन्द पुस्तकालय, गोपीपुरा, नं. ७, ८ ।

४. जेसलमेर भण्डार का पाण्डुलिपियों का सूचीपत्र, गायकवाड ओरियण्टल सिरिझ, बडोदा, १९२३ में प्रकाशित, पत्र नं. ४३ (न. ३४०) ।

४. पर्याय :

१. भाण्डारकर प्राच्य–विद्या संशोधन केन्द्र, पूणे, हस्तप्रत सूची Vol.XVII. pts. 1 से 3, Nos. 494; 495.

प्रस्तुत सम्पादन में उपयुक्त सामग्री को परिशिष्ट में स्थान दिया है ।

परिशिष्ट :

प्रथम परिशिष्ट में कल्पनिर्युक्ति का छाया एवं अनुवाद का ग्रहण किया है जो **दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति : एक अध्ययन** (लेखक–**डॉ. अशोककुमार सिंह**) से लिया है ।

द्वितीय परिशिष्ट में **निर्युक्तिपञ्चक**[१] में प्रदत्त कल्पनिर्युक्ति का पाठान्तर सहित मूलपाठ प्रस्तुत है ।

तृतीय परिशिष्ट में पदानुक्रम है ।

चतुर्थ परिशिष्ट में निशीथसूत्रचूर्णि के दशमउद्देशक का संकलन है । तुलनात्मक दृष्टि से यह उपयोगी है ।

पाँचवें परिशिष्ट में कल्पनिर्युक्ति की अन्य ग्रन्थों से तुलना प्रस्तुत है । इसे **निर्युक्तिपञ्चक** से उद्धृत किया है ।

छठे परिशिष्ट में चूर्णि और अवचूर्णि में व्याख्यात परिभाषाएँ हैं ।

सातवें परिशिष्ट में कल्पनिर्युक्ति में इंगित दृष्टान्तों का संकलन है, यह भी **निर्युक्तिपञ्चक** से उद्धृत है ।

इसके अतिरिक्त कल्पनिर्युक्ति तथा प्राचीन और नवीन का शब्दकोश एवं धातुकोश भी वर्गीकरण के साथ तैयार किया है ।

कृतज्ञता :

पू.पा.विद्वान् संशोधक **आ.दे.श्री वि.मुनिचंद्रसूरि.म.**ने श्रुतभवन संशोधन केन्द्र की समस्त गतिविधियों को अपना ही समझकर संशोधन के हरेक क्षेत्र में प्रेरणा और सहकार्य प्रदान किया है । आपके प्रति कृतज्ञता सिर्फ शब्दों से अभिव्यक्त नहीं हो सकती । कल्पनिर्युक्ति अवचूर्णि की हस्तप्रत का लिप्यन्तरण, संपादनोपयुक्त सामग्री का संकलन, परिशिष्टनिर्माण आदि प्रधान कार्य **सुकुमार जगताप** (M.A.) ने किया है । इसे शुद्ध और सुन्दर रूप देने में **अमितकुमार उपाध्ये** एवं **महेश देसाई** ने मदद की है । और इसका अक्षरांकन **विरति ग्राफिक्स** के **अखिलेश मिश्र** ने किया है । ये सब साधुवादार्ह हैं ।

सम्पादन में रही त्रुटियों को सूचित करने हेतु विद्वज्जन से अनुरोध है ।

२०६८, मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी — **वैराग्यरतिविजय**

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र

---

१. संपा.-आचार्य महाप्रज्ञ, प्रका. जैनविश्वभारती विश्वविद्यालय लाडनूं ।

कल्पनिर्युक्ति परिचय

श्वेताम्बर आम्नाय सम्मत पैंतालीस आगमों का ११ अंग, १२ उपांग, १० प्रकीर्णक, ६ छेद, ४ मूल, १ नंदी और १ अनुयोगद्वार इस प्रकार वर्गीकरण किया गया है । उसमें चौथा छेदसूत्र दशाश्रुतस्कन्ध है । उसका दूसरा नाम आचारदशा है । दश अध्ययन होने से यह दशाश्रुतस्कन्ध नाम से पहचाना जाता है । इसमें २१६ सूत्र और ५२ श्लोक हैं ।

दशाश्रुतस्कन्ध के आठवें अध्ययन का नाम 'कल्प' है । परिभाषा से कल्प का अर्थ 'पर्युषणा' किया जाता है । वर्तमान में प्रचलित 'कल्पसूत्र' दशाश्रुतस्कन्ध के आठवें अध्ययन में ही गिना जाता है । इस सूत्र के रचयिता आ.श्री भद्रबाहुसू. म. (प्रथम) हैं । इस सूत्र के ऊपर आ. श्री भद्रबाहुसूरि म. (द्वितीय-आठवीं शताब्दी) रचित निर्युक्ति है, जिसे कल्पनिर्युक्ति कहा जाता है । सोलहसौ साल पुरानी चूर्णि भी है । इस लघु प्रबन्ध में कल्पनिर्युक्ति का परिचय प्रस्तुत है ।

जैनागमों पर सामान्यतः संक्षिप्त शैली से सूत्र की प्रस्तावनारूप, सूत्र को समझने के लिए आवश्यक पदार्थों, विषयों की स्पष्टता, पूर्तिरूप निर्युक्ति होती है । वर्तमान में मात्र ८+२ आगमों पर ही निर्युक्ति मिलती हैं । परम्परा से निर्युक्तियों के कर्ता श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुस्वामी कहे जाते हैं । निर्युक्तियाँ पद्यबद्ध—गाथामय ही होती हैं और इनकी भाषा अर्धमागधी-प्राकृत होती है । निर्युक्तियों में कालक्रम से भाष्य की अनेक गाथाएँ सम्मिलित हो गई हैं जिन्हें अलग कर पाना दुष्कर कार्य है ।

ज्यादातर आगमिक टीकाएँ व प्राचीन चूर्णियाँ प्रधानतः यथोपलब्ध निर्युक्तियों पर ही लिखी गई हैं । निर्युक्तियाँ आगमों के सिवाय अन्य साहित्य पर नहीं मिलतीं । निर्युक्ति में निक्षेप के द्वारा अर्थ का विवरण किया जाता है ।[१]

अवचूर्णि : मोटे (बड़े) दल का चूरा करना अवचूर्णि के नाम से जाना जाता है। अवचूर्णि प्रधानतः संस्कृत में होती है । अवचूर्णि प्रायः तीन प्रकार की होती है, १. टीका के संक्षिप्तीकरण रूप, २. टिप्पण के विस्तृतीकरण रूप, ३. स्वतन्त्र अवचूर्णि ।

---

१. कैलास श्रुतसागर ग्रन्थसूची, जैन हस्तलिखित साहित्य-खण्ड-१, हस्तप्रत : एक परिचय ।

परिचय :

कल्पनिर्युक्ति कल्पसूत्र की प्रस्तावना है । कल्प अध्ययन की निर्युक्ति जिनचरित्र और स्थविरावली को स्पर्श नहीं करती । सिर्फ पर्युषणकल्प के आचार सम्बन्धी सूत्रों का विवरण करती है । निर्युक्ति के चार घटक हैं । निक्षेप, एकार्थ, निरुक्त और दृष्टान्त । पर्युषणा शब्द के पर्यायवाची शब्द दस हैं ।[१]

१. परियाययववत्थवणा, २. पज्जोसमणा, ३. पागइया, ४. परिवसना ५. पज्जोसणा, ६. पज्जोसवणा, ७. वासावास, ८. पढमसमवसरण, ९. ठवणा और १०. जेट्ठावग्गह ।

१. 'परियाययववत्थवणा अर्थात् पर्यायव्यवस्थापना ।' श्रमण परम्परा में पर्युषणा को अत्यन्त महत्व प्राप्त है । यहाँ तक की दीक्षा वर्ष की गणना का आधार भी पर्युषणा को माना जाता था । पर्युषणा काल को वर्ष मान कर दीक्षापर्याय की गणना की जाती थी । इसलिए पर्युषणा का पहेला नाम पर्यायव्यवस्थापना है ।

२. 'पज्जोसमणा अर्थात् पर्युषमणा ।' चातुर्मास काल में ऋतुबद्ध काल (चातुर्मास अतिरिक्त आठ मास-महिने) के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का त्याग किया जाता है, अतः पर्युषणा का दूसरा पर्याय पज्जोसमणा है ।

३. 'पागइया अर्थात् प्राकृतिका ।' पर्युषणा गृहस्थ श्रावक के लिये भी समान रूप से आराध्य है, इसलिये पर्युषणा का तीसरा पर्याय पागइया है ।

४. 'परिवसना अर्थात् समग्रता से एक स्थान में निवास करना ।' चातुर्मास में श्रमण वर्ग विहार का त्याग करते हैं, अतः पर्युषणा का चौथा पर्याय परिवसना है ।

५. 'पज्जोसणा' अर्थात् 'पर्युषणा' शब्द का अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

६. 'पज्जोसवणा अर्थात् पर्युपासना' । चातुर्मास में श्रमण चातुर्मास सम्बन्धी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को स्वीकार करते हैं, इसलिये पर्युषणा का छट्ठा पर्याय पर्युपासना है ।

७. 'वासावास अर्थात् वर्षावास ।' वर्षाऋतु में श्रमण चार महिनों तक एक स्थान में निवास करते हैं । इसलिये पर्युषणा का सातवाँ पर्याय वासावास है ।

८. 'पढमसमवसरण अर्थात् प्रथम समवसरण ।' समवसरण शब्द कई अर्थ में प्रचलित है। एक है—आगमन । वर्षाऋतु में चार महिनों तक एक स्थान में निवास करने हेतु श्रमणों का योग्य क्षेत्र में आगमन होता है । दूसरा है—देशना भूमि । चातुर्मासिक स्थिरता में श्रमण नियमित रूप से उपदेश देते हैं । उसका प्रारम्भ पर्युषणा में होता है। तीसरा है—एकत्र संमीलन । शेषकाल में विभिन्न क्षेत्र में विहार कर रहे श्रमण चातुर्मास में एकत्रित होते हैं । अतः पर्युषणा का आठवाँ पर्याय पढमसमवसरण है ।

---

१. सन्दर्भ-क.नि. १-२ ।

९. 'ठवणा अर्थात् स्थापना।' ऋतुबद्ध काल की अपेक्षा चातुर्मास काल की मर्यादा भिन्न होती है। जिसकी स्थापना पर्युषणा में की जाती है, इसलिये पर्युषणा का नौवाँ पर्याय ठवणा है।

१०. 'जेट्ठावग्गह अर्थात् ज्येष्ठावग्रह।' ऋतुबद्ध काल की अपेक्षा चातुर्मास काल का क्षेत्रावग्रह अधिक होता है। ऋतुबद्ध काल में एक-एक माह का क्षेत्रावग्रह होता है, जब कि चातुर्मास में वह चार माह का होता हैं। अतः पर्युषणा का दसवाँ पर्याय जेट्ठावग्गह है।

चातुर्मास का प्रारम्भ आषाढी पूर्णिमा से होता है। इस तिथि तक साधु चातुर्मास योग्य क्षेत्र में पहुँच जाते हैं, तो आषाढ़ वदि पञ्चमी से पर्युषणा कल्प अर्थात् वर्षावास का प्रारम्भ हो जाता है। योग्य क्षेत्र न मिलने पर पाँच दिन अन्वेषण करके आषाढ़ वदि दसमी, से वर्षावास का प्रारम्भ होता है। इस प्रकार पाँच-पाँच दिन की मर्यादा को बढ़ाते श्रावण वदि अमावास्या तक योग्य क्षेत्र का अन्वेषण होता है। इसके बाद जिस क्षेत्र में हो वहीं वर्षावास करने की मर्यादा है। यहाँ तक की वृक्ष के नीचे भी वर्षावास कर लेना चाहिए। भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी अन्तिम तिथि है। पर्युषणा कल्प इस तिथि के बाद नहीं होता। तात्पर्य यह है कि, चातुर्मास रूप पर्युषणा कल्प का प्रारम्भ आषाढ़ी पूर्णिमा से श्रावण वदि अमावास्या तक अनुकूल तिथि में हो सकता है, भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी की रात्रि बीत जाने पर नहीं हो सकता। पर्युषणा पद के इन पर्यायवाची शब्दों में अर्थ से भेद नहीं है।

निर्युक्ति में निक्षेप के द्वारा अर्थ का विवरण किया जाता है। ५४वीं गाथा में पर्युषणा शब्द के स्थापना पर्याय को उदाहरण बनाकर उसके अर्थ का विवरण किया है। चातुर्मास में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की स्थापना होती है। स्थापना शब्द के छः निक्षेप हैं। नाम-स्थापना-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। नाम में की गई चातुर्मास की स्थापना को नामस्थापना कहते हैं। जिसका चातुर्मास इस तरह का नाम स्थापन किया जाय उसे नाम-स्थापना कहते हैं। किसी वस्तु में की गई चातुर्मास की स्थापना को स्थापना-स्थापना कहते हैं। चातुर्मास में शिष्यादि सचित्त द्रव्य ग्रहण का निषेध है, अचित्त घास इत्यादि का स्वीकार है। इस तरह द्रव्य में चातुर्मास की स्थापना को द्रव्यस्थापना कहते हैं। द्रव्य में चातुर्मास की स्थापना को द्रव्यस्थापना कहते हैं। जिस क्षेत्र में चातुर्मास की स्थापना की है, वहाँ से ढ़ाई कोस तक के क्षेत्र में आहार आदि के लिये जाना-आना होता है। इसे क्षेत्रस्थापना कहते हैं। जिस तिथि से चातुर्मास की स्थापना की जाती है, उस तिथि से लेकर चातुर्मास समाप्ति तक के काल को कालस्थापना कहते हैं। कषायादि औदयिक भावों का त्याग करके क्षायोपशमिक भाव में स्थिर रहना यह भावस्थापना है।[१]

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की स्थापना तीन अर्थ को लेकर होती है—सम्बन्ध, कारण और आधार। यह ये अर्थ क्रमशः षष्ठी, तृतीया और सप्तमी विभक्ति से प्राप्त होते हैं। द्रव्यादि के

---

१. सन्दर्भ-क.नि. ३-४।

साथ तीन विभक्ति के प्रयोग से ये अर्थ प्राप्त होते हैं । जैसे-द्रव्य की स्थापना, द्रव्य से (द्वारा) स्थापना, द्रव्य में स्थापना । इनके एकवचन और बहुवचन की विवक्षा से छह भेद प्राप्त होते हैं । पाठकों की सुविधा हेतु यहाँ तालिका प्रस्तुत है ।

द्रव्य की स्थापना—एक संस्तारक का ग्रहण ।

द्रव्यों की स्थापना—एकाधिक उपकरण का ग्रहण ।

द्रव्य से (द्वारा) स्थापना—एक आम्बिल के द्रव्य से चातुर्मासी तप ।

द्रव्यों से (द्वारा) स्थापना—चार आम्बिल के द्रव्य से चातुर्मासी तप ।

द्रव्य में स्थापना—एक फलक में रहना ।

द्रव्यों में स्थापना—एकाधिक फलक में रहना ।

क्षेत्र की स्थापना—एक गाँव में आहारादि हेतु जाना ।

क्षेत्रों की स्थापना—नजदीक के तीन गाँव में आहारादि हेतु जाना ।

क्षेत्र से स्थापना—नहीं होती ।

क्षेत्रों से स्थापना—नहीं होती ।

क्षेत्र में स्थापना—कारणवश अर्ध योजन की मर्यादा में विचरण ।

क्षेत्रों में स्थापना—कारणवश अर्ध योजन से अधिक योजन की मर्यादा में विचरण ।

काल की स्थापना—चार महिनों की मर्यादा ।

काल से स्थापना—आषाढ़ी पूर्णिमा तिथि से चातुर्मास की स्थापना होती है ।

कालों से स्थापना—आषाढ़ी पूर्णिमा से पाँच-पाँच दिन को बढ़ाते चातुर्मास की स्थापना होती है ।

काल में स्थापना—वर्षाऋतु में चातुर्मास की स्थापना होती है ।

कालों में स्थापना—आषाढ़ी पूर्णिमा से एक माह और बीस दिन में चातुर्मास की स्थापना होती है ।

भाव की स्थापना—चातुर्मास में औदयिक भाव का त्याग होता है ।

भावों की स्थापना—चातुर्मास में क्षायिक एवं क्षायोपशमिक भाव को छोड़कर शेष भाव का त्याग होता है ।

भाव से स्थापना—जिस भाव से निर्जरा हो उस भाव का स्वीकार भावों से स्थापना ।

भाव में स्थापना चातुर्मास में क्षायोपशमिक भाव में स्थिरता होती है ।

भावों में स्थापना नहीं होती ।[१]

---

१. सन्दर्भ-क.नि. ५ ।

कल्पनिर्युक्ति में प्रधानतः द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की स्थापना का विवरण है । गाथा १ से २३ तक (५२ से ७५) काल-स्थापना का वर्णन है । गाथा २४ से २८ (द.नि. ७५ से ७८) तक क्षेत्र-स्थापना का वर्णन है । गाथा २८ से ३५ (द.नि. ७९ से ८६) तक द्रव्य-स्थापना का वर्णन है। ३६ से ६१ (द.नि. ८७ से ११२) तक भाव-स्थापना का वर्णन है । गाथा ६२ से ६७ (द.नि. ११३ से ११८) तक वर्षाकाल सम्बन्धी विशेष बातों का निर्देश है।

काल-स्थापना के सम्बन्ध में वर्षाकाल में प्रवेश एवं शरद ऋतु में निर्गम की विधि बतायी है । वर्षाकाल में चातुर्मास स्थापना की विधि जानने से पहले ऋतुबद्ध काल की विहार मर्यादा को जानना आवश्यक है । ऋतुबद्ध काल में जिनकल्पी प्रतिमा प्रतिपन्न एक जगह पर एक दिन रहते हैं (कारण होने पर एक माह तक रहते हैं) । यथालन्द पाँच दिन एक जगह पर रहते हैं (कारण होने पर एक माह तक रहते हैं) । परिहारविशुद्धि कल्प स्थित एक जगह पर एक माह तक रहते हैं । स्थविर श्रमण निःकारण एक जगह पर एक माह तक रहते हैं । साधारणतः स्थविरकल्पी के लिये ऋतुबद्ध काल में मासकल्प की मर्यादा है । आठ मास में आठ मासकल्प होते हैं । कभी-कभी रोग-दुर्भिक्ष-कर्दम-पुररोध-संघकार्य आदि कारणवश कम-ज्यादा भी हो सकते हैं। ज्यादा से ज्यादा आषाढी पूर्णिमा तिथि से मगसिर वद दसमी तक चातुर्मास का अवस्थान होता है । इस प्रकार आठ मास विहार करके वर्षाकाल में चातुर्मास स्थापना का लिये योग्य क्षेत्र ढूँढना पड़ता है ।

तेरह गुण वाला क्षेत्र चातुर्मास स्थापना के लिये योग्य है । १. जहाँ कीचड़ न हो । २. जहाँ चींटी-मकोड़े जैसे प्राणजीव न हो । ३. जहाँ स्थंडिल भूमि उपलब्ध हो । ४. जहाँ वसति शुद्ध हो । ५. जहाँ दुग्ध आदि गोरस प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो । ६. जहाँ परिवार बड़े हों । ७-८. जहाँ वैद्य और औषध सुलभ हों । ९. जहाँ गृहस्थ के घर धनधान्य से भरपूर हों। १०. जहाँ राजा भद्रक हों । ११. जहाँ पाखण्डिओं से श्रमणों की अवहेलना न होती हों । १२. जहाँ निर्दोष भिक्षा उपलब्ध हों । १३. जहाँ स्वाध्याय में व्याघात न हों ।[१]

आषाढी पूर्णिमा तिथि से भाद्रपद शुक्ला पंचमी तक श्रमणों का अवस्थान नियत नहीं होता है, इसलिये गृहस्थ को ज्ञात नहीं होता कि श्रमणों की स्थिरता है कि नहीं । अतः वह अनभिगृहीत चातुर्मास स्थापना कहलाती है । भाद्रपद शुक्ल पंचमी के बाद कार्तिकी पूर्णिमा तक स्थिरता पक्की हो जाने से गृहस्थ को ज्ञात होता है, अतः वह अभिगृहीत चातुर्मास स्थापना कहलाती है । अनभिगृहीत चातुर्मास स्थापना साधु को ज्ञात होती है, गृहस्थ को नहीं ।[२] इसप्रकार चातुर्मास स्थापना जघन्य से सत्तर दिन प्रमाण होती है । मध्यम मान से अस्सी, पचाशी, नब्बे, पीच्यानबे, सौ, एकसौ पाँच, एकसौ दस दिन प्रमाण होती है । उत्कृष्ट मान से एकसौ वीस और कारणवश एकसौ तीस(मगसिर वद दसमी तक) दिन प्रमाण होती

---

१. सन्दर्भ-६ से १३ । २. सन्दर्भ-५ ।

है। कारणवश चातुर्मास के पहले और बाद मासकल्प करने पर छह महिने तक स्थिरता सम्भव होती है ।

भाद्रपद शुक्ला पंचमी से चातुर्मास स्थापना नियत होती है इसलिये यह तिथि महत्व रखती है । इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि, आ. श्री कालिकसू. ने सांवत्सरिक पर्युषणा पर्व भाद्रपद शुक्ला पंचमी से परिवर्तित कर भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी में नियत किया । आ.श्री कालिकसू. ने उज्जयिनी के राजा बलमित्र और भानुमित्र के भांजे को दीक्षा दी । इससे राजा कुपित हुए और आ. श्री कालिकसू. को देश से निकाल दिया । आ. श्री कालिकसू. प्रतिष्ठानपुर(पैठण) आये । वहाँ पर शालिवाहन(शक संवत्सर प्रवर्तक ?) राज्य करता था । वह श्रावक था । यद्यपि उसका अन्त:पुर जैन नहीं था, फिर भी राजा ने श्रमणावसर चालू किया था । जिससे अष्टमी आदि को उपवास करके साधुओं का भिक्षा लाभ लेता था । पर्युषणा पर्व नजदीक आने पर आ. श्री कालिकसू. ने राजा को भाद्रपद शुक्ला पंचमी का महत्त्व बतलाया। राजा ने कहा, ''उस दिन मुझे इन्द्र की अनुज्ञा लेनी पड़ती है इसलिये सांवत्सरिक पर्युषणा पर्व षष्ठी के दिन रखा जाय ।'' आ. श्री कालिकसू. ने कहा, ''भाद्रपद शुक्ला पंचमी की रात्रि का उल्लंघन नहीं हो सकता ।'' राजा ने कहा, ''तो चतुर्थी के दिन रखो ।'' आ. श्री कालिकसू. ने इस बात को स्वीकार किया । इस तरह यह पर्व चतुर्थी के दिन नियत हुआ ।[१]

उत्सर्ग से चातुर्मास में विहार निषिद्ध है । अपवाद से अनिवार्य स्थिति में विहार अनुमत है । जिसके कारण इस प्रकार है । जहाँ स्थण्डिलभूमि न हो, संस्तारक मिलता न हो, वसति जीवाकुल हो, जहाँ भिक्षा दुर्लभ हो, राजा साधु का द्वेषी बन जाय, उपाश्रय में सर्प का उपद्रव हो, उपाश्रय को आग लग जाय, दूसरे गाँव में कोई साधु बीमार हो तो चातुर्मास में भी विहार हो सकता है । उत्सर्ग से चातुर्मास के बाद उस जगह पर रहना निषिद्ध है । लेकिन मेघ बरसने के बाद भी विराम नहीं ले रही हो, रास्ते दुर्गम हों और कीचड़ से भरे हों तो उस जगह पर रहना अनुमत है ।[२]

चातुर्मास में जिस जगह अवस्थान हो वहाँ से छह दिशा में एक योजन और एक कोस तक गमनागमन की अनुमति है । गमनागमन की सम्भावना ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में है । गाँव यदि पर्वत पर हो तो ऊर्ध्व और अधो दिशा में गमन हो सकता है ।[३]

चातुर्मास में द्रव्यस्थापना के ग्रहण धारणा और त्याग के सम्बन्ध में सात द्वारों से विचार किया जाता है । १. आहार, २. विगई, ३. संस्तारक, ४. मात्रक, ५. लोच, ६. सचित्त, ७. अचित्त ।

१. आहार—चातुर्मास में ग्रीष्मादि ऋतु में लिये जाने वाले आहार का त्याग होता है । शक्ति अनुसार योग में और तप में वृद्धि होती है ।

---

१. सन्दर्भ-क.नि. १४-१६ । २. सन्दर्भ-क.नि. १७-२३ । ३. सन्दर्भ-क.नि. २४-२७ ।

२. विगई–विगई के दस प्रकार हैं । दूध, दही, घी, तेल, गुड़, कडा(कटाह–तले हुए खाद्य), मधु(शहद), मक्खन, मदिरा और मांस । अन्तिम चार विगई अप्रशस्त है, बाकी छह प्रशस्त है । जिस का संग्रह हो सके उसे 'सांचयिक विगई' कहा जाता है । जो तुरन्त बिगड जाती है, उसे 'असांचयिक विगई' कहा जाता है । चातुर्मास में द्रव्य–भाव की विवृद्धि हो ऐसी प्रशस्त विगई का ही ग्रहण करना चाहिए । विकृति करना विगई का स्वभाव है । जो साधु विगई का या विगईमिश्रित आहार का भक्षण करता है, उसका संयम दूषित होता है । विगई संयम को दूषित करके साधु को जबरदस्ती दुर्गति में ले जाती है । उत्सर्ग से विगई ग्रहण निषिद्ध है । अपवाद से अनिवार्य स्थिति में वृद्ध, बाल और दुर्बल साधु के लिये प्रशस्त विगई का ग्रहण किया जाता है । तरुण और बलवान साधु को जरुरत पड़ने पर ही विगई दी जाती है । ग्लान–बीमार साधु के लिये अत्यन्त आगाढ़ अपवाद से अनिवार्य स्थिति में अप्रशस्त विगई का ग्रहण किया जाता है ।

कल्पसूत्र के २५३ वें सूत्र में मदिरा एवं माँस के ग्रहण की विधि का प्रतिपादन किया गया है । यहाँ प्रश्न हो सकता है कि, 'क्या जैन साधु मदिरा एवं माँस का परिभोग करते थे ?' इसका उत्तर यह है कि, 'जैन साधु मदिरा एवं मांस का परिभोग नही करते थे ।' न ही सूत्र इस प्रकार की अनुज्ञा प्रदान करता है । अत्यन्त आगाढ अपवाद से अनिवार्य स्थिति में किसी श्रुतधर आचार्यादि के प्राण का प्रश्न हो, दूसरा कोई इलाज ही उपलब्ध न हो, ऐसी अवस्था में बाह्य उपचार के रूप में अप्रशस्त विगई का ग्रहण किया जाता है । इस विषय में 'उवासगदसा' का पाठ पुष्ट प्रमाण है । **एवं खलु चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयाए कम्मं पकरेंति, णेरइयत्ताए कम्म पकरेंता णेरइसेसु उववज्जंति । तं जहा–महारंभयाए महापरिग्गहयाए, पचिंदियवहेणं, कुणिमाहारेणं ।** अर्थ :– जीव चार कारणों से नरक का आयुष्य बन्ध करते हैं और फलतः नरक में उत्पन्न होते हैं । महारंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय की हत्या और मांसाहार । इस सन्दर्भ में उपा. श्री धर्मसागरजी कृत 'कल्पसूत्र की किरणावली टीका'[१] एवं उपा. श्री समयसुन्दरजी कृत

---

१. **वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हट्ठाणं आरुग्गाणं बलियसरीराणं इमाओ नवरसविगईओ अभिक्खणं अभिक्खणं आहारित्तए । तं जहा–खीरं दहिं नवणीयं सप्पिं तिल्लं गुडं महुं मज्जं मंसं ॥१७॥ (२५१)**

व्याख्या–वासावांसं इत्यादितो **मंसं** त्ति पर्यन्तम् । तत्र हृष्टानां–तरुणत्वेन समर्थानां युवानोऽपि केचित्सरोगाः स्युरित्याह–अरोगाणां क्वचिद् **आरुग्गाणमि**ति पाठस्तत्रारोग्यमस्त्येषामित्यभ्रादित्वादप्रत्यये आरोग्यास्तेषां, तादृशा अपि केचित् कृशाङ्गाः स्युरित्याह–बलिकशरीरिणां, रसप्रधाना विकृतयो रसविकृतयस्ता अभीक्ष्णं–पुनः पुनर्न कल्पन्ते, रसग्रहणं तासां मोहोद्भवहेतुत्वख्यापनार्थम्, अभीक्ष्णग्रहणं पुष्टालम्बने कदाचित्तासां परिभोगानुज्ञार्थं, नवग्रहात्कदाचित् पक्वान्नंऽपि गृह्यते । विकृतयो द्विधा–सञ्चयिका असञ्चयिकाश्च, तत्रासञ्चयिकाः दुग्धदधिपक्वान्नाख्या ग्लानत्वे वा गुरुबालवृद्धतपस्विगच्छोपग्रहार्थं वा श्रावकादरनिमन्त्रणाद्वा ग्राह्याः, सञ्चयिकास्तु घृततैलगुडाख्यास्तस्तस्ताश्च प्रतिलाभयन् गृही वाच्यः 'महान् कालोऽस्ति ततो

'विशेष शतक प्रकरण'[१] में स्पष्टीकरण दिया है ।

ग्लान के लिये विगई ग्रहण करने का विधि सूत्र में इस प्रकार बताया है । ग्लान के लिये जितनी विगई का ग्रहण जरूरी है उतनी ही ले । दाता के आग्रह पर भी अधिक विगई का ग्रहण न करे । जिससे दाता को यह विश्वास हो कि, यह लोग ग्लान के लिये विगई का ग्रहण करते हैं । जरूरत पड़ने पर तीन बार जा कर याचना कर सकते हैं, पर अधिक ग्रहण न करे । दाता अपनी खुशी से आग्रह करता है, तो अधिक विगई का ग्रहण करने में कोई बाधा नहीं ।[२]

ग्लानादिकार्ये ग्रहीष्याम:' स वदेत् 'गृण्हीत चतुर्मासीं यावत्प्रभूता: सन्ति' ततो ग्राह्या: बालादीनां च देया न तरुणानाम् । यद्यपि मद्यादिवर्जनं यावज्जीवमत्स्येव तथापि कदाचिदत्यन्तापवाददशायां ग्रहणेऽपि कृतपर्युषणानां सर्वथा निषेध: ॥१७॥

१. ननु–कल्पसूत्रे पञ्चमसामाचार्यां '**वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीणं वा हट्ठाणं तुट्ठाणं–आरोग्गाणं बलियसरीराणं इमाओ नवरसविगइओ अभिक्खणं २ आहारित्तए । तंजहा खीरं दहिं नवणीयं सप्पिं तिल्लं गुडं महुं मज्जं मंसं ।** इत्युक्तं तत्कथं घटते, मद्यादिविकृतीनाम् अभक्ष्यत्वेन यावज्जीवं साधूनां वर्जितत्वात् ? उच्यते, यद्यपि साधूनां तद्वर्जनम् अस्त्येव, परं कदाचिद् अत्यन्तापवाददशायां ग्रहणेऽपि कृतपर्युषणानां सर्वथा निषेध: । तत्र तासां परिभोगो बहि: परिभोगार्थे ज्ञेय: । यदुक्तं श्रीआचाराङ्गे द्वितीयश्रुतस्कन्धे प्रथमोद्देशके, तथाहि 'से भिक्खू वा से जं पुण जाणेज्जा बहुअट्ठियं वा मंसं वा मच्छगं वा बहुकंटयं, अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे सिया भोयणजाए बहुउज्झियधम्मिए तह पगारं बहुअट्ठियं वा मंसं मच्छगं वा बहुकंटयं लाभे संते, नो पडिग्गहेज्जा, से भिक्खू वा २ जाव समाणे सिया णं परो बहुअट्ठिएणं मंसेणं मच्छेणं वा उवनिमंतेज्जा आउसंतो समणा अभिकक्खंसि बहुअट्ठिअं मंसं पडिग्गहित्तए । तंजहा तहप्पगारं निग्घोसं सुच्चा निसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा, आउसोत्ति वा, भइणी वा नो खलु मे कप्पइ बहुअट्ठिअं मंसं पडिग्गाहितए, अभिकक्खंसि मे दाउं जावइयं तावइयं पुग्गलं दलयाहि मा अट्ठियाइं से एवं वयंतस्स परो अभिहट्टु अंतो पडिग्गहगंसि बहुअट्ठियं मंसं पडिभाएत्ता नीहट्टु दलेज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहगं परहत्थंसि परपायंसि वा अफासुयं जाव नो पडिग्गए, से य आहच्च पडिगाहिए सिया, तं नो हित्ति वएज्जा, नो अणहित्ति वएज्जा, से तमादाय एगंतमवक्कमेज्जा, अहे आरामंसि वा अहे उवस्सगंसि वा, अप्पंडे जाव असंताणए वा, मंसगं २ मच्छगं २ भुत्ता, अट्ठियाइ कंटगे गहाय, से तमायाय एगंतमवक्कमेज्जा, अहे झामथंडिल्लंसि वा जाव पमज्जिय २ परिट्ठवेज्जा एवं मांससूत्रमपि ज्ञेयम् । अस्य च उपादानं क्वचिद् लूताद्युपशमनार्थं सद्वैद्योक्तं देशतो बाह्यपरिभोगेन स्वेदादिना ज्ञानाद्युपकारकत्वात् फलवद् दृष्टं भुजिश्च अत्र बहि:परिभोगार्थे, न अभ्यवहारार्थे पदातिभोगवत्, एवं गृहस्थामन्त्रणादिविधि-पुद्गलसूत्रमपि सुगमम्, इति तदेवम् आदिना छेदसूत्राभिप्रायेण ग्रहणे सत्यपि कण्टकादिपरिष्ठापनविधिरपि सुगम: । इति बहि: परिभोगार्थे साधूनां मांसादिग्रहणविचार: ॥९६॥ (विशेष जानकारी हेतु देखिये – जैन आगम अने मांसाहार ऐतिहासिक चर्चा आ.श्रीवि.शीलचन्द्रसू. अनुसन्धान अंक-४१ पृष्ठ-१ ।)

२. **वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ, अट्ठो भंते ! गिलाणस्स, से य वइज्जा अट्ठो, से य पुच्छियव्वे केवइएणं अट्ठो ? से य वइज्जा एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स, जं से पमाणं वयइ से पमाणओ घित्तव्वे, से य विन्नविज्जा, से य विन्नवेमाणे लभिज्जा, से य पमाणपत्ते होउ**

३. संस्तारक—संस्तारक ग्रहण करने का विधि इस प्रकार है । ऋतुबद्ध काल में जो संस्तारक का ग्रहण किया था वह जीर्ण हो जाने से चातुर्मास में नये संस्तारक का ग्रहण किया जाता है । उस समय में साधु घास से बने संस्तारक का उपयोग करते थे । घास के संस्तारक का घास गिर जाता था । इस लिये चातुर्मास में नया संस्तारक लिया जाता है जो परिशाटी न हो अर्थात् जिससे घास न गिरता हो । गुरु के लिये तीन और शेष साधुओं के लिए एक संस्तारक लिया जाता है ।[१]

४. मात्रक—मात्रक का अर्थ है, आहार में उपयोगी पात्र से अतिरिक्त पात्र । मात्रक खास कर शारीरिक मल के त्याग के लिये उपयोगी होता है । मात्रक की संख्या तीन होती है। एक-मूत्रविसर्जन के लिये, दो-मलविसर्जन के लिये और तीन-श्लेश्म विसर्जन के लिए । ऋतुबद्ध काल के मात्रकों का त्याग कर चातुर्मास में नये मात्रक ग्रहण किये जाते हैं । संयम और मेहमान हेतु कारणवश मात्रक ग्रहण करने की अनुज्ञा है ।[२]

५. लोच—जिन याने अरिहंत अथवा जिनकल्पी । इनको हंमेशा लोच रहता है । अर्थात् वे सदा मुण्ड-केश ही होते हैं । स्थरविरकल्पी साधु चातुर्मास में सांवत्सरिक पर्युषणा पर्व से पहले अवश्य लोच कर लेते हैं । अशक्त और असहु के लिये अपवाद रूप कैची,

---

अलाहि, इय वत्तव्वं सिआ, से किमाहु भंते ! एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स, सिया णं एवं वयंतं परो वइज्जा पडिगाहेहि अज्जो पच्छा तुमं भोक्खसि वा पाहिसि वा, एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिगाहित्तए ॥१८॥ (२५२)

व्याख्या—वासावासं इत्यादितो **नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिग्गाहित्तए** त्ति पर्यन्तम् । तत्र अस्त्येकेषां वैयावृत्त्यकरादीनामेवामुक्तपूर्वं भवति गुरुं प्रतीति शेषः, हे भदन्त ! भगवन् ! अर्थः प्रयोजनं ग्लानस्य विकृत्येति काक्वा प्रश्नावगतिः एवमुक्ते स च गुरुर्वदेत् अर्थः **से अ पुच्छेइ** त्ति तं च ग्लानं स वैयावृत्त्यकरः पृच्छति । क्वचित् **से अ पुच्छेअव्वे** त्ति पाठः तत्र ग्लानः प्रष्टव्यः किं पृच्छतीत्याह-**केवइएणं अट्ठो** कियता विकृतिजातेन क्षीरादिना तवार्थः, तेन च ग्लानेन स्वप्रमाणे उक्ते स **वैयावृत्यकरो** गुरोरग्रे समागत्य ब्रूयात्, **एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स** इति इयतार्थो ग्लानस्य, ततो गुरुराह-**जं से** इति यत्स ग्लानः प्रमाणं वदति तत्प्रमाणेन से इति तद्विकृतिजातं ग्राह्यं त्वया, **से अ विण्णविज्जा** स च वैयावृत्त्यकरादि-र्विज्ञपयेत्-याचेत् गृहस्थपार्श्वात् विज्ञप्तिधातुरत्र याञ्चायां, स च याचमानो लभेत तद्वस्तु, तच्च प्रमाणप्राप्तं-पर्याप्तं जातं ततश्च **होउ अलाहि** त्ति साधुप्रसिद्ध-इत्थमिति शब्दस्यार्थे भवत्विति पदं **अलाहि** त्ति सृतमित्यर्थः, 'अलाहि निवारणे' इति वचनात् अन्यन्मा दाः इति वक्तव्यं स्यात् गृहस्थं प्रति । ततो गृही प्राह-अथ किमाहुर्भदन्ताः—किमर्थं सृतमिति ब्रुवते भवन्तः इत्यर्थः, साधुराह-**एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स** एतावताऽर्थो ग्लानस्य **सिआ** कदाचित् एनं साधुमेवं वदन्तं परो दाता गृही वदेत् किमित्याह **अज्जो** इत्यादि हे आर्य ! प्रतिगृहाण त्वं पश्चाद्यदधिकं तत्त्वं भोक्ष्यसे-भुञ्जीथाः पक्वान्नादि पास्यसि पिबेर्द्रवं क्षीरादि । क्वचित् **पाहिसि**स्थाने **दीहिसि** त्ति पाठः, तत्रातीव हृद्यम्, अन्यस्य साधोर्वा दद्या एवमुक्ते गृहिणा से तस्य साधोः कल्पते प्रतिगृहीतुं न पुनर्ग्लाननिश्रया गार्द्ध्यात् स्वयं गृहीतुं ग्लानार्थं याचितं मण्डल्यां नानेयमित्याकूतम् ॥१८॥

१. सन्दर्भ-क.नि. ३२ । २. सन्दर्भ-क.नि. ३३ ।

अस्तरा आदि से केश कर्तन करने की आज्ञा है । लोच का मतलब है, 'अपने हाथ से मस्तक, दाढी, मूछ के बाल उखाड़ना ।' इन तीन अवयव से अतिरिक्त स्थानों के बाल का लोच नहीं करते ।[१]

६. सचित्त–सचित्त से मतलब है, सचित्त भिक्षा अर्थात् शिष्य । चातुर्मास में दीक्षा निषिद्ध है । अपवाद से पूर्व परिचित, भावित और संविग्न गृहस्थ को दीक्षा की अनुमति है । अपरिचित, अभावित और असंविग्न गृहस्थ को दीक्षा देने से वह निर्घृण हो जाने की सम्भावना है । भोजनादि विधि का एवं रात में शरीरबाधा का त्याग किस तरह किया जाता है, इसका ख्याल न होने से उसका उपहास हो सकता है ।[२]

सातवें अचित्त द्वार के विषय में निर्युक्ति मौन है । प्राचीन चूर्णि के अनुसार ऋतुबद्ध काल में लिये गये उपकरणादि का त्याग और नये रक्षा (राख) लेप आदि का ग्रहण करना चाहिए ।

इस प्रकार काल-स्थापना सम्बन्धित सात द्वारों का विवरण करके निर्युक्तिकार पर्युषण की भाव-स्थापना का निर्देश करते हैं ।

चातुर्मास में

(१) समिति के पालन में उपयुक्त रहना चाहिये ।

(२) मन-वचन-काया को गुप्ति में रखना चाहिये ।

(३) दुष्कृत की आलोचना करनी चाहिये ।

(४) अधिकरण (झगड़ा) एवं कषायों का त्याग करना चाहिये ।[३]

अधिकरण त्याग के विषय में दुरूतक, चण्डप्रद्योत और द्रमक के दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं ।[४]

कषाय त्याग के विषय में चार कषाय के अनंतानुबन्धि आदि चार प्रकार को सोदाहरण प्रस्तुत किये हैं । क्रोध के विषय में बटु, मान के विषय में अच्चंकारि आर्या, माया के विषय में पाण्डु आर्या तथा लोभ के विषय में आचार्य मंगु के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं ।[५]

कषाय की आलोचना न करने से भारी नुकसान होता है, अतः चातुर्मास में कषाय हो जाय तो तुरन्त प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये । चातुर्मास में जीवोत्पत्ति अधिक होती है, अतः विराधना का त्याग करना चाहिये । एक जगह संलीनता से रहना चाहिये । स्वाध्याय, संयम और तप में आत्मा को जोड़ देना चाहिये ।[६] इन उदाहरणों को परिशिष्ट-७ में प्रस्तुत किया गया है ।

---

१. सन्दर्भ-क.नि. ३३ । २. सन्दर्भ-क.नि. ३४ । ३. सन्दर्भ-क.नि. ३५-३७ । ४. सन्दर्भ-क.नि. ३८-४६ । ५. सन्दर्भ-क.नि. ४७-५९ । ६. सन्दर्भ-क.नि. ६० ।

प्रथम और अन्तिम तीर्थकर के शासन में पर्युषणा कल्प होता है । पर्युषणा में मंगल निमित्त प्रथम-अंतिम तीर्थंकर और शेष बाईस तीर्थकर के आचारधर्म का वाचन होता है । जिन, गणधर और स्थविरों के चरित्र का भी वाचन होता है ।[१]

कल्पसूत्र के २६३ वें सूत्र में वर्षा में आहार ग्रहण करने की विधि बताई है । निर्युक्ति ११४ में इसीका विवरण है । भीतरी वस्त्र गीला करके शरीर को भिगो दे ऐसी बारिस में साधु आहार ग्रहण करने के लिये नहीं जाते । अपवाद से ज्ञानार्थी, तपस्वी और क्षुधा के असहु साधु के लिये अनुमत है । साधु ऐसे क्षेत्र में हो जहाँ पर संयम के उपकरण और वर्षा में पहनने योग्य ऊन का वस्त्र दुर्लभ है, वहाँ उत्तरकरण करना चाहिये । उत्तरकरण इस प्रकार होता है । सबसे पहले वर्षा में जाने के लिये वालज वस्त्र का उपयोग करना चाहिये । वे तीन प्रकार के होते हैं । ऊन का, ऊमट (उट) के बाल का, कुतप (चूहे के बाल) का । वालज वस्त्र के अभाव में घास से बने हुए वस्त्र का उपयोग करना चाहिये । उसके अभाव में छत्र का उपयोग करना चाहिये । उत्तरकरण आपवादिक संयोग में ही होता है ।[२]

यह पर्युषणाकल्पनिर्युक्ति की संक्षेप में विषयवस्तु है ।

• • •

१. सन्दर्भ-क.नि. ६१ । २. सन्दर्भ-क.नि. ६२-६६ ।

अनुक्रमः

१. सम्पादकीय ५

२. कल्पनिर्युक्ति-परिचय १३

३. कल्पनिर्युक्तिः प्राचीन अवचूरिः + अवचूर्णिः १-३४

४. परिशिष्ट

१. कल्पनिर्युक्तिः छाया एवं अनुवाद ३५

२. कल्पनिर्युक्तिः पाठान्तर सहित मूलपाठ ५३

३. पदानुक्रम ६२

४. निशीथसूत्र चूर्णि से तुलना ६५

५. अन्य ग्रन्थों से तुलना ९०

६. चूर्णि अवचूर्णिगत परिभाषाएँ ९३

७. कल्पनिर्युक्ति में इङ्गित दृष्टान्त ९५

८. सङ्केतसूचि १०९

९. सन्दर्भग्रन्थसूचि १११

॥ कल्पनिर्युक्तिः ॥

अज्ञातकृतप्राचीनचूर्णिः

१. पज्जोसमणाए अक्खराइं होंति उ इमाइं गोण्णाइं ।
परियायववत्थवणा, पज्जोसमणा य पागइया ॥५२॥[१]

(१-२) (प्रा०चू०) अथ अट्ठमी दसा पज्जोसमणा-कप्पो अज्झयणं

संबंधो-सत्तमासियं फासित्ता आगतो ताहे वासाजोग्गं उवहिं उप्पाएति, वासाजोग्गं च

आ. श्री माणिक्यशेखरसूरिकृता अवचूर्णिः

(१-२) (अव०) पर्युषणाया अक्षराणां इमानि गौणानि नामानि भवन्ति । तु निश्चये तद्यथा-पर्यायव्यवस्थापना (१) पज्जोसमना सैद्धान्तिकं नाम (२) प्राकृतिका (३) परिवसना (४)

---

१. सन्दर्भः =ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ? ॥ (कल्पसूत्रम्) (२२४)

जओ णं पाएणं अगारीणं अगाराइं कडियाइं उक्कंपियाइं छन्नाइं लित्ताइं गुत्ताइं घट्ठाइं मट्ठाइं संपधूमियाइं खाओदगाइं खायनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए कडाइं परिभुत्ताइं भवंति, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥ (२२५)

जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ तहा णं गणहरा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति ॥ (२२६)

जहा णं गणहरा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं गणहरसीसा वि वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥ (२२७)

जहा णं गणहरसीसा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं थेरा वि वासावासं पज्जोसविंति ॥ (२२८)

जहा णं थेरा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति तेवि अ णं वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥ (२२९)

जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया णं वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥ (२३०)

जहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं अम्हेवि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो । अंतरा वि य से कप्पइ पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणावित्तए ॥८॥ (२३१)

२. परिवसणा पज्जुसणा, पज्जोसवणा य वासवासो य ।
पढमसमोसरणं ति य, ठवणा जेट्ठोग्गहेगट्ठा ॥५३॥

खेत्तं पडिलेहेति । एतेण संबंधेण पज्जोसमणाकप्पो संपत्तो । तस्स दारा चत्तारि । अधिकारो वासावासजोग्गेण खेत्तेण उवधिणा य, जा य वासासु मज्जाया । णामणिप्फन्नो पज्जोसमणाकप्पो । दुपदं नाम, पज्जोसमणा कप्पो य, पज्जोसमणाए कप्पो पज्जोसमणाकप्पो । पज्जायाणं ओसमणा[१] पज्जोसमणा । अधवा परि सव्वतो भावे, उष निवासे, एस पज्जोसमणा । इदाणिं णिज्जुत्ती-वित्थारो । **पज्जोसमणाए** गाथाद्वयं । पज्जोसमणा एतेसिं अक्खराणं शक्रेन्द्र-पुरन्दरवदेकार्थिकानि नामानि गुणनिप्फण्णानि गोण्णानि, जम्हा पवज्जा-परियातो पज्जोसमणा-वरिसेहिं गणिज्जति तेण परियाग-ववत्थवणा भण्णति । (१) जधा आलोयण-वंदणगादीसु जहारातिणियाए कीरमाणेसु अणज्जमाणे परियाए पुच्छा भवति । कति पज्जोसमणातो गताओ उवट्ठावितस्स ? जम्हा उडुबद्धिया दव्व-खेत्त-काल-भाव-पज्जाया इत्थ पज्जोसविज्जंति उज्झिज्जंति त्ति भणितं होइ । (२) अण्णारिसा दव्वादिपज्जाया वासारत्ते आयरिज्जंति तम्हा पज्जोसमणा भण्णति । (३) पागतियत्ति पज्जोसवण त्ति एतं सव्वलोग-सामण्णं । पागतिया गिहत्था (४) एगत्थ चत्तारि मासा परिवसंति त्ति परिवसणा । (५) सव्वासु दिसासु ण परिब्भमंतीति पज्जुसणा । (६) वरिसासु चत्तारि मासा एगत्थ अच्छंतीति वासावासो । (७) निव्वाघातेणं पाउसे चेव वासपाउग्गं खित्तं पविसंतीति पढम-समोसरणं । (८) उडुबद्धातो अण्णा मेरा ठविज्जतीति ठवणा । (९)

पर्युषणा (५) पज्जोसवना सैद्धान्तिकं नाम (६) वर्षावासः (७) प्रथम समवसरणमिति (८) च स्थापना (९) ज्येष्ठावग्रहः (१०) एतानि एकार्थिकानि नामानि ज्ञेयानि ॥

१. यथाक्रमं वन्द्यमाने पर्यायपृच्छाया उपस्थापितस्य कति पर्युषणा गताः ? इति पर्यायव्यवस्थापनम् आर्षं नाम । यतः सिद्धान्ते श्रावणाद्यवर्षाकालाद्यो वर्षाकालः ।

२. ऋतुबद्धिका द्रव्यक्षेत्रकालभावाः पर्युष्यन्ते=त्यज्यन्ते । अत्र 'म' रूपम् ।

३. प्राकृतिका=गृहस्था एकत्र चतुरो मासांस्तिष्ठन्ति पर्युषणायाः प्राकृतिका नाम ।

४. परिवसणा सर्वासु दिक्षु न परिभ्रमन्ति ।

५. पर्युषणा-'उष निवासे,' परि=समन्तात् चतुरो मासानेकत्र तिष्ठन्ति पर्युषणा ।

---

१. उपशमना क्रोधादिपर्यायाणाम् यदि वा ऋतुबद्धसत्कानां द्रव्यादिपर्यायाणामुज्झनं, नवानां च वर्षारात्रे समाचरणम् ।

३. ठवणाए निक्खेवो छक्को, दव्वं च दव्वणिक्खेवो ।
खेत्तं तु जम्मि खेत्ते, काले कालो जहिं जो उ ॥५४॥

४. ओदइयाईयाणं, भावाणं जा जहिं भवे ठवणा ।
भावेण जेण य पुणो, ठविज्जए भावठवणा उ ॥५५॥

उडुबद्धे एक्केक्कं मासं खेत्तोग्गहो भवति त्ति । वरिसासु चत्तारि मासा एगखेत्तोग्गहो भवति त्ति जिट्ठोग्गहो । एषां व्यञ्जनतो नानात्वं, न त्वर्थतः ॥५२ ॥५३॥

(३-४) (प्रा०चू०) एषामेकं ठवणाणामं परिगृह्य णिक्खेवो कज्जति । **ठवणाए निक्खेवो** गाहा । नाम-ठवणातो गताओ, दव्वट्ठवणा जाणगसरीर-भवियसरीर-वतिरित्ता । **दव्वं च दव्वनिक्खेवो** । जाइं दव्वाइं परिभुंजंति जाणि य परिहरिज्जंति । परिभुज्जंति तण-डगल-छार-मल्लगादि । परिहरिज्जंति सचित्तादि ३ । सचित्ते सेहो ण पव्वाविज्जति, अचित्ते वत्थादि ण घेप्पति, पढमसमोसरणे, मीसए-सेहो सोवहितो । खेत्तट्ठवणा सकोसं जोयणं, कारणे वा चत्तारि पंच जोयणाइं । कालट्ठवणा चत्तारि मासा, यच्च तस्मिन् कल्प्यम् । भावठवणा कोहादि-विवेगो भासासमितिजुत्तेण य होतव्वं ॥५४ ॥५५॥

---

६. वर्षाकालसम्बन्धिनां द्रव्यक्षेत्रकालभावानां स्वीकारः । यतो ऋतुबद्धे एकैकं मासं तिष्ठन्ति वर्षासु चत्वार इत्यादि । अत्र 'व'त्वमिति भेदः ।

७. वर्षाकालारम्भे एव श्रावणवदिप्रतिपदि वासः, चः समुच्चये ।

८. प्रथमसमवसरणं वर्षाप्रारम्भे प्रथममवस्थानम् ।

९. स्थापना ऋतुबद्धादन्या मर्यादा स्थाप्यतेऽत्रेति ।

१०. ज्येष्ठावग्रहो बहुकालस्थानम् । एषां व्यञ्जने नानात्वम्, अर्थत ऐक्यम् ॥५३॥

(३-४) (अव०) एषां मध्ये एकां स्थापनामाह वत्याह (नामाहत्याह) ।

स्थापनाया निक्षेपः षड्विधः स्यात् । नामस्थापना-स्थापनास्थापने अस्येष्टे । द्रव्यनिक्षेपे-शिष्य-सोपधिशिष्य-वस्त्राद्यं वर्षासु न ग्राह्यम्, अचित्तं तृणडगलरक्षादि ग्राह्यम् । क्षेत्रे स्थापना-यस्मिन् क्षेत्रे स्थिताः तस्मिन् अर्धतृतीयक्रोशः प्रमाणम् । काले स्थापना-यत्राषाढपूर्णिमादौ यस्तु कालश्चातुर्मासीस्थितिलक्षणः सा । भावे स्थापना-समितिगुप्तिपरैः क्षायोपशमभावेन स्थेयम् ॥५४॥

तत्र औदयिकानां भावानां मध्ये या यत्र स्थापना स्यात् । तत्र औदयिकं विना क्षायोपशमिकादिषु भावेषु स्थापना भवेत् । येन भावेन क्षायोपशमिकेन स्थाप्यते चतुर्मासी स्थितिः सा तु भावस्थापना ॥५५॥

५. सामित्ते करणम्मि य, अहिगरणे चेव होंति छब्भेया ।
एगत्तपुहत्तेहिं दव्वे, खेत्तऽद्ध भावे य ॥५६॥

---

(५) (प्रा०चू०) एतेसिं सामित्तादि विभासा कातव्वा । तत्थ गाधा-**सामित्ते०** । दव्वस्स ट्ठवणा दव्वट्ठवणा, दव्वाणं वा ठवणा दव्वट्ठवणा, दव्वेण वा ठवणा, दव्वेहिं वा ठवणा, दव्वंमि वा ठवणा दव्वेसु वा ठवणा । एवं खेत्त-काल-भावेसु वि एगत्त-पुहत्तेहिं सामित्त-करणा-ऽधिकरणा भाणितव्वा । तत्थ दव्वस्स ठवणा-जधा कोइ संथारगं गिण्हति, दव्वाणं जधा-तिन्नि पडोगारेणं गिण्हति, दव्वेणं जधा-वरिसारत्ते चउसु मासेसु एक्कसिं आयंबिलेणं पारित्ता सेसं कालं अब्भत्तट्ठं करेति, दव्वेहिं मासेणं मासेणं चत्तारि आयंबिलपारणया, एवं निव्वितियएणंपि, दव्वम्मि जधा-एगंगिए फलए ट्ठातव्वं दव्वेसु जधा-[१]दोमादी-कंबीसंथारए । खेत्तस्स एगगामस्स परिभोगो, खेत्ताणं ति गामादीणं अंतरपल्लीयादीणं, करणे एगत्त-पुहत्तेणं णत्थि । अधिकरणे एगे खेत्ते परं अद्धजोयण-मेराए गंतुं [२]पडिएत्तए, पुहत्तेणं दुयमादीहिं वि अद्धजोयणेहिं गंतुं पडिएत्तए कारणे । कालस्स जा मेरा सा ठविज्जति अकप्पिया वासारत्तकाले ण परिघिप्पंति, कालाणं चउण्हं मासाणं ठवणा कालेण आसाढपुण्णिमाए कालेण ठायंति, कालेहिं-पंचाहे पंचाहे गते कारणे ठायंति, कालम्मि पाउसे ठायंति, कालेसु आसाढपुण्णिमातो सवीसतीराए मासदिवसेसु गतेसु ठायंति कारणे । भावस्स ओदयियस्स ठवणा, भावाणं खइयं भावं संकंतस्स सेसाणं भावाणं परिवज्जणा होई । **भावत्ति**-भावेणं निज्जरट्ठाए ठाति, भावेहिं निज्जरट्ठयाए संगहट्ठताए

---

(५) (अव०) स्वामित्वे=सम्बन्धे करणे=कारणकारके अधिकारके अधिकरणे=आधारे एकत्वबहुत्वाभ्यां षड्भेदाः स्युः । द्रव्ये क्षेत्रेऽद्धायां भावे च । यथा द्रव्यस्य स्थापना-संस्तारकं गृह्णाति, द्रव्याणां स्थापना त्रीन् प्रत्यवतारान् । त्रिगुणं पात्रस्योपकरणं गृह्णन्ति । द्रव्येण आचाम्लादिद्रव्येण चतुर्मासीतपः । **द्रव्येति** । चतुर्भिराचाम्लैः चतुर्मासीतपः । द्रव्ये एकस्मिन् फलके स्थातव्यं, द्रव्येषु त्रिषु फलकादिषु । क्षेत्रे एकग्रामपरिभोगः, क्षेत्राणां त्रयादीनाम् आसन्नग्रामानां परिभोगः । क्षेत्रे करणं नास्ति । एकस्मिन् क्षेत्रे बहुषु क्षेत्रेषु अर्द्धयोजनान्तः, कारणे योजनानि कालस्य वर्षाकालस्य अकल्प्यता मर्यादा । कालानां चतुर्णां मासानां स्थितिः । मर्यादा कालेन आषाढपूर्णिमा, कालैः पञ्चभिः पञ्चभिः दिनैः स्थितिः । काले प्रावृषि, कालेषु आषाढराकायाः सविंशतिशत-

---

१. द्व्यादि-कम्बी-निष्पन्न-संस्तारके । २. 'पडिनियत्तए' पाठान्तरम् ।

६. कालो समयादीओ, पगयं समयम्मि तं परूवेस्सं ।
निक्खमणे य पवेसे, पाउस-सरए य वोच्छामि ॥५७॥

७. ओणाइरित्तमासे, अट्ठ विहरिऊण गिम्हहेमंते ।
एगाहं पंचाहं मासं च जहासमाहीए ॥५८॥

८. काऊण मासकप्पं, तत्थेव उवागयाण ऊणा ते ।
चिक्खल्ल वास रोहेण, वा वि तेण ट्ठिया ऊणा ॥५९॥

वेतावच्चं करेति, भावंमि खओवसमिए, भावेसु णत्थि । अहवा खओवसमिए भावे सुद्धातो सुद्धतरं एवमादिसु परिणमंतस्स भावेसु ठवणा भवति ॥५६॥

(६) (प्रा०चू०) एवं ताव दव्वादि समासेण भणितं । इदाणिं एते चेव वित्थरेण भणिहामि । तत्थ ताव पढमं कालट्ठवणं भणामि । किं कारणं ? जेण एवं सुत्तं कालट्ठवणाए सुत्तादेसेणं परूवेतव्वं । **कालो समयादीओ** गाहा । असंखेज्ज-समया आवलिया । एवं सुत्तालावएणं जाव संवच्छरं । एत्थ पुण उडुबद्धेण वासारत्तेण य पगतं अधिगार इत्यर्थः । तत्थ पाउसे पवेसो वासावास-पाउग्गे खेत्ते । सरते तातो निग्गमणं ॥५७॥

(७) (प्रा०चू०) ऊणातिरित्त० गाहा । चत्तारि हेमंतिया मासा, चत्तारि गिम्हमासा एते अट्ठ विहरंति । ते पुण अट्ठ मासा ऊणया अतिरित्ता वा विहरिज्जा ॥५८॥

(८) (प्रा०चू०) कथं पुण ऊणा वा अतिरित्ता वा भवंति ? । तत्थ ताव जधा ऊणा भवंति तधा भण्णति—**काऊण** पुव्वद्धं० गाहा ।

मासाऽहेषु । भावस्य औदयिकस्य स्थापना, वाम (एवं) क्षायिकभावं सङ्क्रान्तस्य शेषाणां भावानां परिवर्जना । भावेन निर्जरार्थिकेन भावैनिर्जरार्थैः सङ्ग्रहार्थादिभिः क्षायोपशमिके एव, भावेषु नास्ति ॥५६॥

(६) (अव०) कालः समयादिकः । समयादिकाले प्रकृतम्=अधिकारः । तां कालस्थापनां प्ररूपयिष्यामि । प्रावृषि प्रवेशं शरदि निर्गमनं च प्रवक्ष्यामि ॥५७॥

(७) (अव०) एतां गाथाम् अग्रे व्याख्याति-ऊनातिरिक्तमासानष्टौ विहृत्याग्रीष्म-हेमन्तयोः । एकदिनं जिनकल्पिकानां, पञ्चदिनं यथालन्दपरिहारविशुद्धाणां मासं च स्थविराणां च यथासमाधिना विहृत्य ॥५८॥

(८) (अव०) मासकल्पं कृत्वा तत्रैव=तस्मिन्नेव क्षेत्रे उपागतानाम्=आगतानाम् अन्यत्र

९. वासाखेत्तालंभे, अद्धाणादीसु पत्तमहिगातो ।
साहगवाघाएण व, अपडिक्कमिउं जइ वयंति ॥६०॥

आसाढचाउमासियं पडिक्कंते जति अण्णत्थ वासावासपाउग्गं खेत्तं णत्थि ताहे तत्थेव ठिता वासावासं, एवं ऊणा अट्ठमासा, जेण सत्तमासा विहरिता । अहवा इमेहिं पगारेहिं ऊणा अट्ठमासा होज्ज । **चिक्खल्ल** पच्छद्धं । जत्थ वासारत्तो कतो, ततो कत्तियचाउम्मासिए ण णिग्गता इमेहिं कारणेहिं–पंथो चिक्खल्लो तत्थ खुप्पिज्जति, वासं वा ण [१]ओरमती, रोहगो वा जातो । जाव मग्गसिरं सव्वं ण णिग्गआ, ताहे पोसे निग्गंताणं पोसादीया आसाढंता सत्तमासा विहरिता एवं ऊणा भवंति ॥५९॥

(९) (प्रा०चू०) इदाणिं जधा अतिरित्ता अट्ठमासा विहरिता होज्जा तधा भण्णति– **वासाखेत्तालंभे०** गाहा । साहुणो आसाढचाउम्मासिए पडिक्कंते वासावासपातोग्गं खेत्तं मग्गंता ण लभंति, ताहे तेहिं मग्गंतेहिं ताव ण लद्धं जाव आसाढचाउम्मासियातो सवीसतिरातो मासो गतो। णवरं भद्दपद–जोण्हस्स पंचमीए लद्धं खेत्तं तंमि दिवसे पज्जोसवितं, एवं णवमासा सवीसतिराया विहरिता । अथवा साहू अद्धाणपडिवन्ना सत्थवसेणं आसाढचाउम्मासियातो परेणं पंचाहेण वा दसाहेण वा जाव सवीसतिराते वा मासे खेत्तं पत्ता एवं अतिरित्ता अट्ठमासा विहरिता ।

अहवा जत्थ वासावासो कतो ततो खेत्तातो आरतो चेव कत्तियचाउम्मासियस्स निग्गच्छंति इमेहिं कारणेहिं–कत्तियपुण्णिमाए आयरियाणं णक्खत्तं असाहगं, अण्णो वा कोइ तद्दिवसं वाघातो भविस्सति, ताहे अपुण्णे कत्तिए निग्गच्छंता अतिरित्ते अट्ठमासे विहरिरस्संति ।

स्थानाऽभावात् । तेन ऊना मासाः कार्तिक्या अनु चिक्खल्लवर्षावप्ररौधैश्चापि स्थिताः तेन ऊना स्युः ॥५९॥

(९) (अव०) आषाढपूर्णिमायां चतुर्मासके प्रतिक्रान्ते वर्षाक्षेत्राभावे तथा अध्वादिषु आदिशब्दात् सङ्घकार्यादिपरिग्रहः । प्राप्ताः साधवः । आषाढचतुर्मासके चतुर्मासके प्रतिक्रान्ते क्षेत्रं न लभन्ते । एवम् अधिका अष्टौ मासा यदि गुरो राकायां साधकं नक्षत्रं न स्यात्, व्याघातेन वा अप्रतिक्रम्य यदि व्रजन्ति तदाष्टौ मासा अधिकाः ॥६०॥

---

१. उपरमति ।

१०. पडिमापडिवण्णाणं, एगाहं पंच होंतऽहालंदे ।
जिणसुद्धाणं मासो, निक्कारणओ य थेराणं ॥६१॥

११. ऊणाइरित्त मासा, एवं थेराण अट्ठ णायव्वा ।
इयरे अट्ठ विहरिउं, णियमा चत्तारि अच्छन्ति ॥६२॥

१२. आसाढपुण्णिमाए, वासावासं तु होति ठातव्वं ।
मग्गसिरबहुलदसमीउ, जाव एक्कम्मि खेत्तम्मि ॥६३॥

१३. चिक्खल्ल पाण थंडिल्ल, वसहि गोरस जणाउले विज्जे ।
ओसह निवयाहिवइ, पासंडा भिक्ख सज्झाए ॥६४॥[1]

१४. बाहिं ठिता वसभेहिं, खेत्तं गाहेत्तु वासपाओग्गं ।
कप्पं कहेत्तु ठवणा, सावणऽसुद्धस्स पंचाहे ॥६५॥

---

(१०) (प्रा०चू०) एगाहं पंचाहं मासं वा जधासमाधीए । (गा० ५८) अस्य व्याख्या– **पडिमापडिवण्णाणं** गाहा । ताव पडिमापडिवण्णा उडुबद्धे एक्केक्कं अहोरत्तं एगखेत्ते अच्छंति । अहालंदिया पंच अहोरत्ताइं एगखेत्ते अच्छंति । जिणकप्पिया मासं । सुद्धपरिहारिया एवं चेव । थेरकप्पिया णिव्वाघाएण मासं, वाघाते ऊणं वा अतिरित्तं वा मासं ॥६१॥

(११) (प्रा०चू०) ऊणाइरित्तमासा गाहा । इतरे णाम पडिमापडिवन्नया अहालंदिया एते एवं रीइत्ता उडुबद्धे कहिं पुण ठातव्वं ? वासारत्ते य चत्तारि मासा सव्वेवि अच्छंति एगखेत्ते ॥६२॥

(१२-१४) (प्रा०चू०) आसाढपुन्निमाए वासावासंमि होति ठातव्वं । गाथा– आसाढपुन्निमाए वासावासं ठातव्वं ॥६३ ॥६४॥

---

(१०) (अव०) प्रतिमाप्रतिपन्नानाम् एकाहम्=एकदिनं, पञ्चदिना भवन्ति, यथालन्दे, जिनकल्पिकपरिहारविशुद्धादौ मासः । निःकारणिकश्च स्थविराणां मासः । एष विहारविधिरष्ट-मासावधिकः ॥६१॥

(११) (अव०) ऊनाऽतिरिक्तमासा एवं स्थविराणां ज्ञातव्या भवन्ति । इतरे प्रतिमाप्रतिपन्नादयः स्थविरान् वर्जयित्वा अष्टौ मासान् विहृत्य नियमात् चतुरो मासांस्तिष्ठन्ति ॥६२॥

(१२-१४) (अव०) आषाढपूर्णिमायां वर्षावर्षे(वासं) स्थातव्यं भवति । मार्गशीर्ष-

---

१. प्राचीनचूर्णौ इमा गाथा न व्याख्याता ।

१५. एत्थ तु अणभिग्गहियं, वीसतिरायं सवीसतीमासं ।
तेण परमभिग्गहिअं, गिहिणातं कत्तिओ जाव ॥६६॥

बाहिं ठित त्ति । बाहिं ठिता जत्थ आसाढ-मासकप्पो तत्थ दसमीए आरब्भ जाव आसाढमासपण्णरसी ताव वासावासपाउग्गे खेत्ते संथारय-डगल-खार-मल्लगादी गिण्हंता वसभा भावेंति य खेत्तं साधुभावणाए, ततो आसाढपुण्णिमाए वासावासपाउग्गे खेत्ते गंतुं आसाढचाउम्मासियं पडिक्कमंति, पंचहिं दिवसेहिं पज्जोसवणाकप्पं कड्ढेंति सावण-बहुलस्स पंचमीए पज्जोसवेंति । अध बाहिट्ठितेहिं वसभेहिं ण गहिताणि छारादीणि, ताहे कप्पं कहेंता चेव गिण्हंति मल्लगादीणि । एवं आसाढपुन्निमाए ठिता जाव मग्गसिर-बहुलस्स दसमी ताव एग्गंमि खेत्ते अच्छेज्जा, तिन्नि वा दसराता । एवं तिन्नि पुण दसराता चिक्खल्लादीहिं कारणेहिं ॥६५॥

(१५) (प्रा०चू०) एत्थ उ० गाथा । **एत्थत्ति** । पज्जोसविते सवीसतिरायस्स मासस्स आरतो जति गिहत्था पुच्छंति-'तुब्भे अज्जो वासारत्तं ठिता ? अध णो ताव ठाध' । एवं पुच्छितेहिं जति अभिवड्ढित-संवत्सरे जत्थ अहिमासतो पडति तो आसाढपुण्णिमाओ वीसतिराते गते भण्णति 'ठिता मो' त्ति, आरतो ण कप्पति वोत्तुं 'ठिता मो' त्ति । अध इतरे तिन्नि चंदसंवत्सरा तेसु सवीसतिराते मासे गते भण्णति 'ठिता मो' त्ति, आरतो ण कप्पति वोत्तुं 'ठिता मो' त्ति ॥६६॥

बहुलगदमी (दशमीं) यावत् एकस्मिन् क्षेत्रे कारणे स्थितिः स्यात् ॥६३॥

यत्र क्षेत्रे चिक्खिल्लं न स्यात् (१) यत्र प्राणा न स्युः (२) यत्र स्थण्डिलं स्यात् (३) वसतिः (४) गोरसः (५) जनाकुलं (६) वैद्यः (७) औषधानि (८) निचयः (९) अधिपतिः (१०) पाखण्डा न स्युः (११) भिक्षा शुद्ध्यमाना यत्र स्यात् (१२) स्वाध्यायः (१३) एते त्रयोदश गुणाः स्युः ॥६४॥

बहिःस्थिता गुरवो वृषभैर्वर्षाप्रायोग्यं क्षेत्रं ग्राहयन्ति साधुभावनया । दशम्या आरभ्य संस्तारक-डगल-च्छार-मल्लकादीन् गृह्णन्ति । एकादश्या आरभ्य कल्पं कथयित्वा आषाढपूर्णिमायां वर्षाणां स्थापना स्यात्, तिष्ठन्तीत्यर्थः ॥६५॥

(१५) (अव०) अत्र च अनभिगृहीतं स्थानं आषाढपूर्णिमादौ स्थितिः स्वज्ञातै (ज्ञातैव ज्ञाते च वा) च अधिकमासे विंशतिरात्रम् अन्यत्र सविंशतिमासः । तेन परम् अभिगृहीतं गृहिज्ञातं कार्तिकं यावत् ॥६६॥

१६. असिवाइकारणेहिं, अहवा वासं न सुट्ठु आरद्धं ।
अहिवड्ढियम्मि वीसा, इयरेसु सवीसई मासो ॥६७॥

१७. एत्थ तु पणगं पणगं, कारणियं जा सवीसतीमासो ।
सुद्धदसमीट्ठियाण व, आसाढीपुण्णिमोसरणं ॥६८॥

---

(१६) (प्रा०चू०) किं कारणं ? **असिवादि० गाहा** ॥ कताइ असिवादीणि कारणाणि उप्पज्जेज्जा, जेहिं निग्गमणं होज्जा, ताहे गिहत्था मण्णेज्ज, ण किंचि एते जाणंति, मुसावातं वा उल्लवेंति, जेणं 'ठिता मो' त्ति भणित्ता निग्गता । अहवा वासं ण सुट्ठु आरद्धं तेण लोगो भीतो धण्णं [१]झंपितुं ठितो, साहूहिं भणितं 'ठिया मो' त्ति जाणंति एते-वरिसिस्सति तो मुयामो धण्णं विक्किणामो अधिकरणं, घराणि य च्छएंति[२], हलादीण य संठप्पं करेंति। जम्हा एते दोसा तम्हा वीसतिराते अगते सवीसतिराते वा मासे अगते ण कप्पति वोत्तुं 'ठिता मो' त्ति ॥६७॥

(१७) (प्रा०चू०) एत्थ तु० गाथा । आसाढपुण्णिमाए ठिताणं जति तण-डगलादीणि गहियाणि पज्जोसवणा कप्पो य कथितो तो सावणबहुलपंचमीए पज्जोसवेंति । असति खेत्ते सावणबहुलदसमीए, असति खेत्ते सावणबहुलस्स पण्णरसीए, एवं पंच पंच ओसारेंतेण जाव असति भद्दवयसुद्धपंचमीए, अतो परेणं न वट्टति अतिकमेतुं, आसाढ-पुण्णिमातो आढत्तं मग्गंताणं जाव भद्दवयजोण्हपंचमीए। एत्थंतरे जति ण लद्धं ताहे जति रुक्खहेट्ठे ठितो तो वि पज्जोसवेतव्वं । एतेसु पव्वेसु जधालंभे पज्जोसवेयव्वं अप्पव्वे ण वट्टति, कारणिया चउत्थीवि अज्जकालएहिं पवत्तिता । कहं पुण ?

---

(१६) (अव०) अशिवादिकारणैः अथवा वर्षणं सुष्ठु न आरब्धं अभिवर्द्धिते विंशतिः, इतरेषु सविंशतिमासः ॥६७॥

(१७) (अव०) अत्र तु आषाढपूर्णिमाया अनु कारणिकं=कारणे सति पञ्चदिनेषु पञ्चदिनेषु तिष्ठन्तु यावत् सविंशतिमासो भवति । भाद्रशुक्लपञ्चम्यां नियमात् तिष्ठन्ति । वृक्षमूलेऽपि एवं पर्वण्यवतिष्ठन्ति, न अपर्वणि ।

उज्जयिन्यां नगर्यां बलमित्र-भानुमित्रौ राजानौ । तयोर्भागिनेयः कालिकाचार्येण प्रव्राजितः तैः राजप्रद्विष्टैः कालको निर्विषयीकृतः । स प्रतिष्ठानं नगरम् आगतः । तत्र च शालिवाहनो राजा । श्रावकः । तेन श्रमणक्षणः=श्रमणावसरः प्रवर्तितः । अन्तःपुरं च भणितम्, अष्टम्यादिषु

---

१. पिधानादिना संगोपयितुम् । २. छादयन्ति ।

१८. इय सत्तरी जहण्णा, असीति णउती दसुत्तरसयं च ।
जइ वासति मिग्गसिरे, दस राया तिण्णि उक्कोसा ॥६९॥

उज्जेणीए णगरीए **बलमेत्त-भाणुमेत्ता** रायाणो । तेसिं भाइणेज्जो **अज्जकालएण** पव्वाविंतो, तिहिं राईहिं पदुट्ठेहिं अज्जकालतो निव्विसतो कतो । सो **पतिट्ठाणं** आगतो । तत्थ य **सातवाहणो** राया सावगो । तेण समण-पूयणछन्नो[१] पवत्तितो, अंतेपुरं च भणितं-'अमावासाए उपवासं काउं पारणए साधूण भिक्खं दातुं पारिज्जह' । अन्नया पज्जोसमणा-दिवसे आसण्णे आगते अज्जकालएण सातवाहणो भणितो-'भद्दवत-जोण्हस्स पंचमीए पज्जोसवणा भवति ।' रण्णा भणितो, 'तद्दिवसं मम इंदो अणुजातव्वो होहिति, तो ण पज्जुवासिताणि चेतियाणि साधुणो वा भविस्संति त्ति कातुं तो छट्ठीए पज्जोसवणा भवतु' । आयरिएण भणितं-'ण वट्टति अतिक्कामेउं' । रण्णा भणियं-'तो चउत्थीए भवतु' । आयरिएण भणितं-'एवं होउ' त्ति चउत्थीए कता पज्जोसवणा । एवं चउत्थीवि जाता कारणिता । **सुद्धदसमीठिताण च आसाढी पुन्निमोसरणं ति** । जत्थ आसाढ-मासकप्पो कतो, तं च खेत्तं वासावासपाउग्गं, अण्णं च खेत्तं णत्थि वासावासपाउग्गं । अथवा अब्भासे चेव अण्णं खेत्तं वासावासपाउग्गं सव्वं च पडिपुण्णं संथारडगलगादी य भूमी य [२]बद्धा, वासं च गाढं अणोरयं आढत्तं, ताहे आसाढपुण्णिमाए चेव पज्जोसविज्जति । एवं पंचाह-परिहाणिमधिकृत्योच्यते ॥६८॥

(१८) (प्रा०चू०) इय सत्तरी० गाहा ॥ इय त्ति उपप्रदर्शने । जे आसाढ-चाउम्मासियातो सवीसतिराते मासे गते पज्जोसवेंति, तेसिं सत्तरीदिवसा जहण्णतो जेट्ठोग्गहो

अमावस्यायामुपवासं कृत्वा पारणके साधूनां भिक्षां दत्त्वा पारयत । अथ पर्युषणादिने आसन्नीभूते आर्यकालिकेन शालिवाहनो भणितः, 'भाद्रसुदिपञ्चम्यां पर्युषणा भवति' । राज्ञा भणितं, 'तद्दिवसं मम इन्द्रोऽनुज्ञातव्यो भविष्यति ततः चैत्यानि साधवश्च पर्युपासितानि न भविष्यन्ति इति कृत्वा ततः षष्ठ्यां पर्युषणा भवतु' । आचार्येण भणितं, 'न वर्तते अतिक्रामितुं तां रात्रिम्' । राज्ञा भणितं-'ततः चतुर्थ्यां भवतु ।' आचार्येण भणितं-'एवं भवतु' इति चतुर्थ्यां पर्युषणा कृता । एवं चतुर्थ्यपि जाता कारणिका । अपर्वणि कालिकाचार्येण कारणे पर्युषणा कृता । शुद्धदशमीस्थितानां च आषाढ-पूर्णिमायाम् एकादश्या आरभ्य तृणादिग्रहणे । अवसरणं=अवस्थानं, निश्चयः साधुज्ञातः स्यात्, न गृहिज्ञातः ॥६८॥

(१८) (अव०) इति सप्ततिः जघन्या दिवसाः स्युः । एवम् अशीतिः, नवतिः,

---

१. उत्सवः । २. चिक्खल्लरहितेत्यर्थः ।

१९. काऊण मासकप्पं, तत्थेव ठियाणऽतीए मग्गसीरे ।
सालंबणाण छम्मासितो तु जेट्ठोग्गहो होति ॥७०॥

२०. [1]जइ अत्थि पयविहारो, चउपाडिवयम्मि होइ गंतव्वं ।
अहवावि अणिंतस्सा, आरोवण पुव्वनिद्दिट्ठा ॥७१॥

भवति । कहं पुण सत्तरी ? चउण्हं मासाणं सवीसं दिवससतं भवति, ततो सवीसतिरातो मासो पण्णासं दिवसा सोधिता सेसा सत्तरिं दिवसा। जे भद्दवय-बहुलस्स दसमीए पज्जोसवेंति तेसिं असीति दिवसा जेट्ठोग्गहो, जे सावण-पुण्णिमाए पज्जोसविंति तेसिं णं णउत्ति दिवसा मज्झि जेट्ठोग्गहो, जे सावण-बहुल-दसमीए ठिता तेसिं दसुत्तरं दिवस-सतं जेट्ठोग्गहो, एवमादीहिं पगारेहिं वरिसारत्तं एगखेत्ते अच्छित्ता कत्तिय-चाउम्मासिए णिगंतव्वं । अथ वासो न ओरमति तो मग्गसिरे मासे जद्दिवसं पक्कमट्टियं जातं तद्दिवसं चेव णिग्गंतव्वं, उक्कोसेण तिन्नि दसरायाण णिग्गच्छेज्जा । मग्गसिरपुण्णिमाए त्ति भणियं होइ । मग्गसिरपुन्निमाए परेण जइ वि प्लवंतेहिं तहवि णिग्गंतव्वं। अध न णिग्गच्छंति ता चउलहुगा। एवं पंचमासिओ जेट्ठोग्गहो जाओ ॥६९॥

(१९) (प्रा०चू०) काऊण गाहा० । आसाढमासकप्पं काउं जइ अन्नं वासावासपाउग्गं खेत्तं णत्थि, तं चेव वासावासपाओग्गं, जत्थ आसाढमासकप्पो कतो, ते तत्थेव पज्जोसवेंति आसाढपुण्णिमाए वा सालंबणाणं मग्गसिरंपि सव्वं वासं ण ओरमति तेण ण निग्गता, असिवादीणि वा बाहिं, एवं सालंबणाणं छम्मासितो जेट्ठोग्गहो, बाहिं असिवादीहिं जइ वाघातो अण्णवसहीए ट्ठंति, जतणाविभासा कातव्वा ॥७०॥

(२०) (प्रा०चू०) जति अत्थि पदविहारो गाहा कंठा । कुत्र निद्दिट्ठा ? निसीथे[2] ॥७१॥

दशोत्तरशतं च । यदि वर्षति मार्गशीर्षे तदा त्रयोदशरात्राः उत्कृष्टाः स्युः ॥६९॥

(१९) (अव०) कृत्वा मासकल्पं । तत्रैव स्थितानां यावत् मार्गशीर्षः स्यात् । सालम्बनानां षाण्मासिकः ज्येष्ठावग्रहो भवति ॥७०॥

(२०) (अव०) जइ एषा गाथा सुगमा ॥७१॥

---

१. प्रक्षेपगाथा सम्भाव्यते । २. कुत्रचिद्दिट्ठा निशीथोक्ता इति कु० पुव्वनिद्दिट्ठा इति भाव्यम् ? ।

२१. काईयभूमी संथारए य, संसत्त दुल्लहे भिक्खे ।
एएहिं कारणेहिं, अपत्ते होइ निग्गमणं ॥७२॥

२२. राया सप्पे कुंथू, अगणि गिलाणे य थंडिलस्सऽसति ।
एएहिं कारणेहिं, अपत्ते होइ निग्गमणं ॥७३॥

२३. वासं व ण ओरमई, पंथा वा दुग्गमा सचिक्खल्ला ।
एएहिं कारणेहिं, अइक्कंते होइ निग्गमणं ॥७४॥

२४. असिवे ओमोयरिए, राया दुट्ठे भए व गेलण्णे ।
एएहिं कारणेहिं, अइक्कंते होति निग्गमणं ॥७५॥

२५. उभओ वि अद्धजोयण, सअद्धकोसं च तं हवति खेत्तं ।
होइ सकोसं जोयण, मोत्तूण कारणज्जाए ॥७६॥[१]

(२१-२४) (प्रा०चू०) कयाइ अपुण्णे वि चाउम्मासिए निग्गमेज्जा इमेहिं कारणेहिं-**काईय०** गाहा । काइयभूमी संसत्ता उदएण वा पिल्लिता, संथारगा संसत्ता, अन्नातो वि तिन्नि वसधीओ णत्थि, अथवा तासु वि एस चेव वाघातो, राया वा पदुट्ठो, गिलाणो वा जाओ । वेज्जनिमित्तं अतिक्कंते वि अच्छिज्जति । **वासं वा ण ओरमती०** गाथाद्वयं कंठं ॥७२-७५॥

(२५) (प्रा०चू०) एस कालट्ठवणा । इदाणिं खेत्तट्ठवणा-**उभतो०** गाधा ।

जंमि खेत्ते वासावासं ठायंति तत्थ उभतो-सव्वतो समंता सकोसं जोयणं उग्गहो

(२१-२४) (अव०) कायिकीभूमिर्न स्यात्, संस्तारकश्च न, संसक्ता वसतिः, दुर्भिक्षम् एतैः कारणैरप्राप्ते चतुर्मासके भवति निर्गमनम् ॥७२॥

राजा प्रद्विष्टः स्यात्, सर्पः उपाश्रये स्यात्, कुन्थवः पतन्ति, अग्निना उपाश्रयो दह्यते, ग्लानश्च अन्यस्मिन् ग्रामे, स्थण्डिलस्य असतिः=अभावः एतैः कारणैः निर्गमनं भवति ॥७३॥

वर्षा वा नोपरमते=न निवर्तते । पन्थानो वा दुर्गमाः सचिक्खल्लाश्च भवेयुः । एतैः कारणैरतिक्रान्ते भवति निर्गमनम् ॥७४॥

असिवे उ एषा सुगमा ॥७५॥

(२५) (अव०) उभयतो अर्धयोजनम् अर्धक्रोशं च । इन्द्रपदपर्वतादिषु षट्सु दिक्षु गमनं

---

१. (सन्दर्भ) वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता

२६. उड्ढमहे तिरियम्मि य, सकोसयं सव्वतो हवइ खेत्तं ।
इंदपयमाइएसुं, छिद्दिसि इयरेसु[1] चउ पंच ॥७७॥

२७. तिण्णि दुवे एक्का वा, वाघाएणं दिसा हवइ खेत्तं ।
उज्जाणाओ परेणं, छिण्णमडंबं तु अखेत्तं ॥७८॥

कातव्वो । कथं पुण ? सव्वतो समंता छद्दिसातो पुव्वा दाहिणा अवरा उत्तरा उड्ढा अधा, चत्तारि विदिसातो असंववहारिणीओ एगपदेसियाओ त्ति काउं मुक्काओ । तासु छसु दिसासु एक्केक्काए अद्धजोयणं अद्धकोसं च भिक्खायरियाए गम्मति गत-पडियागतेणं सकोसं जोयणं भवति ॥७६॥

(२६-२७) (प्रा०चू०) कहं पुण छद्दिसातो भवंति ? उच्यते-**उड्ढमहे०** गाथा ।

इंदपदे गयग्गपदे पव्वतते उवरिं पि गामो हिट्ठा वि गामो । उड्ढुच्च तस्स मज्झंमि वि गामो । मज्झिमेल्ल-गामस्स चउसुवि दिसासु गामा । मज्झिमेल्ल-गामे ठ्ठिताणं छिद्दासातो भवंति । आदिग्गहणेणं जो अन्नो वि एरिसो पव्वतो होज्ज तस्स वि छद्दिसातो भवंति ।

स्यात् । अत ऊर्द्ध्वं गमनाभावाच्च (?) तत् क्षेत्रं भवति । भवति सक्रोशं योजनं मुक्त्वा कारणजातम् ॥७५॥

(२६-२७) (अव०) ऊर्ध्वम्, अधः, तिर्यग् सर्वतः सक्रोशं योजनं क्षेत्रं भवति । इन्द्रपद-गजाग्रपदादिषु षट् दिशो भवन्ति । इतरेषु क्षेत्रेषु चतस्रः पञ्च दिशः स्युः ॥७७॥

तिस्रः द्वे एका वा दिग् व्याघातेन क्षेत्रं स्यात् । उद्यानात् परेण पर्वतपानीयादिभिरेता दिशो

सक्कोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ताणं चिट्ठिउं अहालंदमवि ओग्गहे ॥ कल्पसूत्र ॥२३२॥

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए ॥ जत्थ णं नई निच्चोदगा निच्चसंदणा णो कप्पइ सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खा यरिआए गंतुं पडिएतए ।

एरावई कुणालाए, जत्थ चक्किया सिया एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा, एवं चक्किया एवं णो कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं गंतुं पडिनियत्तए ॥ एवं च णो चक्किया, एवं से णो कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं गंतुं पडिनियत्तए ॥२३३॥

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा जाव चत्तारि पंच जोयणाइं गंतुं पडिनियत्तए । अंतराऽवि से कप्पइ वत्थव्वए, नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥२८७॥

१. सेसेसु इति पाठान्तरम् ।

२८. दगघट्ट तिन्नि सत्त च, उडुवासासु ण हणंति तं खेत्तं ।
चउरट्ठाति हणंति, जंघद्धेक्कोवि उ परेणं ॥७९॥

२९. दव्वट्ठवणाऽऽहारे, विगई संथार मत्तए लोए ।
सच्चित्ते अचित्ते, वोसिरणं गहण-धरणाइं ॥८०॥ (दारगाहा)

मोत्तुंत्ति-एरिसं पव्वत्तं मोत्तुं अण्णंमि खेत्ते चत्तारि वा दिसातो उग्गहो भवति पंच वा । ण केवलं एत्तियाओ च्चेव । **तिन्नि दुवे एक्का वा** दिसा वाघातेण होज्ज । को पुण वाघातो ? अडवि उज्जाणातो परेण पव्वतादिविसमं वा पाणियं वा, एतेहिं कारणेहिं एतातो दिसातो रुद्धियातो होज्जा जेण गामो णत्थि, सति वि गामे अगम्मो होज्जा । छिण्ण-मडंबं णाम-जस्स गामे वा णगरेसु वा सव्वासु दिसासु उग्गहे गामो णत्थि, तं च अक्खित्तं णातव्वं ॥७७-७८॥

(२८) (प्रा०चू०) जाए दिसाए जलं ताए दिसाए इमं विधिं जाणिज्जा । **दगघट्ट०** गाथा । दगसंघट्टो नाम-जत्थ जाव अद्धं जंघाए उदगं, उडुबद्धे तिण्णि संघट्टा जत्थ भिक्खायरियाए गतागतेणं छ, वासासु सत्त, ता ते गतागतेणं चोद्दस भवंति । एतेहिं ण उवहम्मति खेत्तं ॥७९॥

(२९-३०) (प्रा०चू०) खेत्तट्ठवणा गता । दव्वट्ठवणा इदाणिं **दव्वट्ठवणाहारे** गाहा ।

दव्वट्ठवणाए आहारे चत्तारि मासे निराहारो अच्छतु । ण तरति तो एगदिवसूणो एवं जति जोगहाणी भवति तो जाव दिणे दिणे आहारेतु । जोगवुड्ढी—जो णमोक्कारेणं पारेंतओ सो पोरिसीए पारेतु, पोरिसिइत्तो पुरिमुड्ढेण, पुरिमड्ढइत्तो एक्कासणएण । किं कारणं ? वासासु चिक्खल्ल-चिलिच्चिलं, दुक्खं सण्णाभूमिं गम्मति, थंडिल्लाणि य ण पउराणि, हरितकाएण उवहयाणि । गता आहारट्ठवण त्ति ।

रुद्धाः स्युः । छिन्न-मडम्बं नाम यस्य ग्रामस्य वा नगरस्य वा सर्वासु दिक्षु अवग्रहे ग्रामो नास्ति । तद् अक्षेत्रं ज्ञातव्यम् ॥७८॥

(२८) (अव०) ऋतुबद्धकाले त्रयो दकघट्टाः वर्षाकाले सप्त दकघट्टाः । तत् चत्वार न घ्नन्ति अष्टौ आदयः तत्क्षेत्रं घ्नन्ति । जङ्घा द्विसङ्घट्टः स्यात् । ते पुनरेको लेपो अकल्प्यः परेण स्यात् ॥७९॥

(२९-३०) (अव०) द्रव्यस्थापनां व्याख्याति । आहारे विकृत्यां संस्तारके मात्रके लोचे सचित्ते अचित्ते व्युत्सृजनग्रहणधारणादि । एतानि द्वाराणि ॥८०॥

पूर्वाहारस्य उत्सर्जनं कार्यम् । योगवृद्धिः तपोवृद्धिः शक्तितः कार्या । विकृतीनां ग्रहणं

३०. पुव्वाहारोसवणं, जोग विवड्ढी य सत्तिउग्गहणं ।
संचइय असंचइए, दव्वविवड्ढी पसत्था उ ॥८१॥

३१. विगतिं विगतीभीओ, विगइगयं जो उ भुंजए भिक्खू ।
विगईविगयसभावं, विगती विगतिं बला नेइ ॥८२॥

३२. पसत्थविगईगहणं, गरहियविगतिग्गहो य कज्जम्मि ।
गरहा लाभपमाणे, पच्चय पावप्पडीघाओ ॥८३॥[१-२]

इदाणिं विगतिट्ठवणा-**संचइय असंचइये दव्वविवड्ढी पसत्था तु** । विगती दुविधा संचइया असंचइया य । तत्थ असंचइया खीर-दधि-मंस-णवणीय-ओगाहिमगा य, सेसातो घय-गुल-मधु-मज्ज-खज्जग-विधाणातो संचइयातो । तत्थ मज्जविधाणातो अप्पसत्थातो, सेसातो पसत्थातो ॥८०-८१॥

(३१) (प्रा०चू०) आसामेकतरा परिगृह्योच्यते-**विगतिं०** गाहा-

तं आहारित्ता संयतत्वादऽसंयतत्वं विविधैः प्रकारैः गच्छिहिति विगति, **विगतीभीतो** त्ति । संयतत्वादसंयतत्वगमनं तस्स भीतो, **विगतिगतं** भत्तं पाणं वा विगतिमिस्सं न भोत्तव्वं। जो पुण भुंजति तस्स इमे दोसा-**विगति** पच्छद्धं । विगतीए विगतो संयतभावो जस्स सो विगतीविगतसभावो, तं विगतीविगतसभावं सा विगती आहारिता बला विगतिं णेति । विगती नाम असंयतत्वगमनं । जम्हा एते दोषा तम्हा णव रसविगती ओगाहिम-दसमाओ नाहारेतव्वाओ, ण तहा उडुबद्धे जधा वासासु, वासासु सीयले काले अतीव मोहुब्भवो भवति गज्जितविज्जुताईणि य दट्ठुं सोउं वा । भवे कारणं आहारेज्जावि । गेलण्णेणं आयरिय-बाल-वुड्ढ-दुब्बल-संघयणाण गच्छोवग्गहट्ठताए घेप्पेज्जा । अहवा सड्ढा णिब्बंधेण निमंतेति पसत्थाहि विगतीहिं ॥८२॥

साञ्चयिकानां असाञ्चयिकानां कारणे कार्यम् । यथा द्रव्यविवृद्धिर्भावविवृद्धिश्च स्यात् तथा प्रशस्ता ग्राह्या ॥८१॥

(३१) (अव०) यः भिक्षुः विकृतिं विकृतिगतं विकृतिमिश्रं च भुङ्क्ते । किं विशिष्टः भिक्षुः ? विगतेः=दुर्गतेः भीतः । विकृतिर्विकृतिस्वभावा=विकारजननस्वभावा । विकृतिर्विगतिं= दुर्गतिं बलान्नयति संयतत्वादसंयतत्वं च करोति ॥८२॥

---

१. निर्युक्तिपञ्चके इमा गाथा अधिका,
''पसत्थ विगतिग्गहणं, तत्थ वि य असंचइय उ जा उत्ता ।
संचइय ण गेण्हंती, गिलाणमादीण कज्जट्ठा'' ॥

२. (सन्दर्भ) वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ 'दावे भंते !' एवं से

(३२) (प्रा०चू०) तत्थ-**पसत्थविगतीगहणं०** गाहा ।

ताहे जाओ असंचईआओ खीर-दहीतोगाहिमगाणि य ताओ असंचइयातो घेप्पंति, संचइयातो ण घेप्पंति घत-तिल-गुल-णवणीतादीणि । पच्छा तेसिं खते जाते जता कज्जं भवति तदा ण लब्भंति तेण ताओ ण घेप्पंति । अह सड्ढा णिबंधेण णिमंतेति ताहे भण्णति । जदा कज्जं भविस्सति तदा गेण्हीहामो । **बालादि**-बाल-गिलाण-वुड्ढ-सेहाण य बहूणि कज्जाणि उप्पजंति, महंतो य कालो अच्छति, ताहे सड्ढा तं भणंति-जाव तुब्भे समुद्दिसध

(३२) (अव०) कारणे प्रशस्तविकृतिग्रहणं कार्यम् । सा च स्थविरबालदुर्बलानां दीयते, बलिक-तरुणानां न देया । कारणे तेषां दीयते । अप्रशस्ता ग्लानकार्ये ग्राह्याः । अत्राऽऽलापकः- '*अत्थेगईयाणं एवं वुत्तं भवइ अट्ठो भंते गिलाणस्स*' (कल्पसूत्रम्-२३८) तस्य=ग्लानस्य विकटेन=मद्येन पौद्गलेन=मांसेन वा कार्यम् । गर्हितविकृतेर्लाभे यत् प्रमाणं वैद्येन उक्तं स्यात् तल्लात्वा-ऽधिकमाग्रहेऽपि न ग्राह्यम् । एतद्वाच्यं 'एतावताऽर्थो ग्लानस्य' । एवं दातुः प्रत्ययः स्यात्- 'एते ग्लानार्थं लान्ति न आत्मार्थं अधिकाऽग्रहणात् ।' येऽपि पापाः तेषां निन्दाप्रतिघातः कृतः

कप्पइ दावित्तए णो से कप्पइ पडिगाहित्तए ॥२३४॥

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगईयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ 'पडिगाहेहि भंते !' एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए णो से कप्पइ दावित्तए ॥२३५॥

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ 'दावे भंते पडिग्गाहेहि भंते !' एवं से कप्पइ दावित्तए वि पडिगाहित्तए वि ॥२३६॥

वासावासं पज्जोसवियाणं णो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हट्ठाणं आरुग्गाणं बलियसरीराणं इमाओ नवरसविगईओ अभिक्खणं अभिक्खणं आहारित्तए । तं जहा-खीरं दहिं नवणीयं सप्पिं तिल्लं गुडं महुं मज्जं मंसं ॥ कल्पसूत्र ॥२३७॥

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ, 'अट्ठो भंते ! गिलाणस्स', से य वइज्जा, से य पुच्छियव्वे 'केवइएणं अट्ठो ?' से य वइज्जा 'एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स', जं से पमाणं वयइ से पमाणओ घित्तव्वे, से य विण्णविज्जा, से य विण्णवेमाणे लभिज्जा, से य पमाणपत्ते 'होउ अलाहि', इय वत्तव्वं सिआ, से किमाहु भंते ! एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स, सिया णं एवं वयंतं परो वइज्जा 'पडिगाहेहि अज्जो पच्छा तुमं भोक्खसि वा पाहिसि वा', एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, णो से कप्पइ गिलाणणीसाए पडिगाहित्तए ॥ कल्पसूत्र (२३८) ॥

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थि णं थेराणं तहप्पगाराइं कुलाइं कडाइं पत्तियाइं थिज्जाइं वेसासियाइं संमयाइं बहुमयाइं अणुमयाइं भवंति, तत्थ से णो कप्पइ अदक्खु वइत्तए 'अत्थि ते आउसो ! इमं वा इमं वा' से किमाहु भंते ! सड्ढी गिही गिण्हइ वा तेणियं पि कुज्जा ॥ कल्पसूत्र (२३९) ॥

३३. कारणओ उडुगहिते, उज्झिऊण गेण्हंति अण्णऽपरिसाडी ।
दाउं गुरुस्स तिण्णि उ, सेसा गेण्हंति एक्केक्कं ॥८४॥

३४. उच्चार-पासवण-खेलमत्तए तिण्णि तिण्णि गिण्हंति ।
संजम-आएसट्ठा, भुंजेज्जऽवसेस उज्झंति ॥८५॥[1]

ताव अत्थि चत्तारि वि मासा । ताहे णाऊण गेण्हंति जतणाए, संचइयंपि ताहे घेप्पत्ति जधा तेसिं सड्ढाणं सड्ढा वड्ढति, अवोच्छिन्ने भावे चेव भणंति—होतु अलाहिं पज्जत्तंति । सा य गहिया थेर-बाल-दुब्बलाणं दिज्जति, बलिय-तरुणाणं न दिज्जति, तेसिं पि कारणे दिज्जति, एवं पसत्थविगतिग्गहणं । अप्पसत्था ण घेत्तव्वा । सा वि गरहिता विगती कज्जेणं घिप्पति इमेणं- *'वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगतियाणं एवं वुत्तपुव्वं भवति, अट्ठो भंते गिलाणस्स ?, तस्स य गिलाणस्स वियडेणं पोग्गलेण वा कज्जं से य पुच्छितव्वे-'केवतिएणं से अट्ठो ?' जं से पमाणं वदति 'एवतिएणं मम कज्जं,' तप्पमाणतो घेत्तव्वं । एतंमि कज्जे वेज्जसंदेसेण वा, अण्णत्थ वा कारणे आगाढे जस्स सा अत्थि सो विण्णविज्जति, तं च से कारणं दीविज्जति । एवं जाइते समाणे लभेज्जा, जाधे य तं पमाणं पत्तं भवति जं तेण गिलाणेण भणितं ताहे भण्णति-'होउ अलाहि' त्ति वत्तव्वं सिया, ताहे तस्यापि प्रत्ययो भवति सुव्वत्तं एते गिलाणट्ठयाए मग्गंति, ण एते अप्पणो अट्ठाए मग्गंति । जति पुण अप्पणो अट्ठाते मग्गंता तो दिज्जंतं पडिच्छंता जावतियं दिज्जति, जे वि य पावा तेसिं पडिघातो कतो भवति । ते वि जाणंति, जधा तिन्नि दत्तीओ गेण्हंति, सुव्वत्तं गिलाणट्ठाए । से णं एवं वदंतं अलाहि पडिग्गहेहि भंते तुमंपि भोक्खसि वा पाहिसि वा, एवं से कप्पति पडिग्गाहित्तए, नो से कप्पति गिलाणणीस्साए पडिग्गाहित्तए ॥* (कल्पसूत्रम्-२३८) ॥८३॥

(३३) (प्रा०चू०) एवं विगतिट्ठवणा गता । इदाणिं संथारे त्ति-**कारण०** गाथा-

संथारा जे उडुबद्धिया कारणे गहिता ते वोसिरिज्जंति । अन्नेसिं गहणं धारणं च संथारे त्ति गतं ॥८४॥

स्यात् । युक्ता एते ग्लानाय त्रीन् वारान् लान्ति । एवम् अन्य पप्याद्यर्थे (पव्याध्यर्थे ?)त्वमपि भुंज्याः (?) इति गाढाग्रहे अधिकमपि लायाः ॥८३॥

(३३) (अव०) ऋतुबद्धसंस्तारकानां गृहीतान् कारणिकान् त्यक्त्वाऽन्यान् अपरिशाटीन् गृह्णन्ति । गुरोः त्रीन् संस्तारकान् दत्त्वा शेषा यतयः एकैकं गृह्णन्ति ॥८४॥

---

१. वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उच्चारपासवणभूमीओ पडिलेहित्तए, न तहा हेमंतगिम्हासु जहा णं वासासु, से किमाहु भंते ! वासासु णं ओसन्नं पाणा य तणा

३५. धुवलोओ उ जिणाणं, णिच्चं थेराण वासावासासु ।
असहू गिलाणगस्स व, णातिक्कामेज्ज तं रयणिं ॥८६॥[1]

---

(३४) (प्रा०चू०) इदाणिं मत्तएत्ति–**उच्चार०** गाधा । उच्चार–पासवण–मत्तया जे उडुबद्धे कारणेणं गहिता खेलमत्तो य ते वोसरिज्जंति । अन्नेसिं गहणं धारणं च । एक्केक्के तिण्णि तिण्णि उच्चार–पासवण–खेल–मत्तगे गिण्हति, उभओकालंपि पडिलेहिज्जंति, जति वुट्ठी ण पडति ण परिभुंजंति दिया रातो वा, परिभुंजति मासलहुं । जाहे वासं पडति ताहे परिभुंजंति । जेण अभिग्गहो गहितो सो परिट्ठवेति । जदा णत्थि तदा अप्पणा परिट्ठवेति । ताव सो [2]निव्विसितव्वो जाव कज्जं करेति । उल्लतो ण णिखिप्पति विसुयावेत्ता णिक्खिप्पइ, सेह–अपरिणताणं ण दाविज्जति । मत्तए त्ति गतं ॥८५॥

(३५) (प्रा०चू०) धुवलोओ उ० गाहा । धुव–केस–मंसुणा भवितव्वं गच्छनिग्गताणं धुवलोतो निच्चं, गच्छवासीणं पि थेरकप्पियाणं ति वासावासे उस्सग्गेणं धुवलोतो कायव्वो । अध न तरति असहू वा, ताहे सा रयणी णातिक्कमेतव्वा । लोए त्ति गतं ॥८६॥

---

(३४) (अव०) ऋतुबद्धिकान् मात्रकान् त्यक्त्वा वर्षाकालेऽन्यान् उच्चारप्रश्रवणान् खेलार्थं (प्रश्रवणखेलार्थं) त्रीन् मात्रकान् साधवः प्रतिगृह्णन्ति । संयमार्थम् आदेशः=प्राघूर्णः तदर्थम् भुञ्जीत वाशब्दात् कारणे एव न सदा, शेषं कृत्वा उज्झन्ति परिस्थापयन्ति । **सेसमुज्झंति त्ति ।** शेषान्(णि) ऋतुबद्धगृहीतानि मात्रकाणि उज्झन्ति ॥८४॥

(३५) (अव०) ध्रुवलोचः स्यात् जिनानां । नित्यं स्थविराणां वर्षावासे लोचः स्यात् । मस्तकश्मश्रुवोः लोचः कार्यः नान्यत्र । अशक्तस्य पक्षे ततोऽप्यऽसहस्य ग्लानस्य वा तां रजनीं नातिक्रामेत् ॥८६॥

य बीया पणगा य हरियाणि य भवंति ॥ कल्पसूत्र (२८२)

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ मत्तगाइं गिण्हित्तए । तं जहा– उच्चारमत्तए, पासवणमत्तए, खेलमत्तए ॥ कल्पसूत्र (२८३)

१. वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ गोलोमप्पमाणमित्तेऽवि केसे तं रयणिं उवायणावित्तए, अज्जेणं खुरमुंडेण वा लुक्कसिरएण वा होइयव्वं सिया, पक्खिया आरोवणा, मासिए खुरमुंडे, अद्धमासिए कत्तरिमुंडे, छम्मासिए लोए, संवच्छरिए वा थेरकप्पे ॥ कल्पसूत्र (२९२) २. उपभोक्तव्यो रक्षणीयो यावद् वर्षोपरमः ।

३६. मोत्तुं पुराण-भावियसड्ढे संविग्ग सेस पडिसेहो ।
मा निद्दओ भविस्सइ[1], भोयणमोए य उड्डाहो ॥८७॥[2] (दारं)

३७. इरि-एसण-भासाणं, मण-वयसा काइए य दुच्चरिए ।
अहिगरण-कसायाणं, संवच्छरिए विओसवणं ॥८८॥

---

(३६) (प्रा०चू०) मुत्तुं पुराणभा० (गाहा) सचित्तं-सेहं वा सेहीं वा जति पव्वावेति चऊगुरुं आणादिविराहणा । सो ताव जीवे ण सद्दहति, कथं ? जति भण्णति— एते आउक्काइया जीवा, तं च कालं ते पुणो दुक्खं परिहरितुं । ताहे सो भणति-जति एते जीवा, तो तुब्भे णिवयमाणे किं हिंडध, तुब्भे किर अहिंसया ? एवं ण सद्दहति । पादे ण धोव्वंति जति ताहे सो भणति-समल-चिक्खल्लं मद्दिऊण पादे वि ण धोवंति ताहे दुगंछति, किं एतेहिं समं अच्छंतेण असुईहिं ति गच्छेज्जा । अहवा धोवंति सागारियं ति पाउसदोसा । वासे पडंते सो पडिस्सयातो ण णीति, सो य उवस्सगो डहरगो, ताहे जति मंडलीए समुद्दिसंते पासंति तो उड्डाहं करेति, विप्परिणमेति य, अण्णेहि य संसट्ठयं समुद्दिसाविंतो पच्छा वच्चति । अध मंडलीए ण समुद्दिसंति तो सामायारिविराहणा, समता मेरा य ण कता भवति । जति वा णिसग्गमाणा मत्तएसुं उच्चारपासवणाणि आयरंति तं दट्ठूण गतो समाणो उड्डाहं करेज्ज । अध धरंति तो आयविराहणा, अथ निसग्गं ते णिंति तो संजमविराहणा एवमादी दोसा जम्हा, तम्हा ण पव्वावेतव्वो । भवे कारणं पव्वावेज्जा । पुराणो वा अभिगतसड्ढो वा, अधवा कोत्ति राया रायामच्चो वा अतिसेसी वा अव्वोच्छित्ति वा काहिंति त्ति पव्वावेंति । ताधे पुण विचित्ता वसधी महती य घेप्पति । जति जीवे चोदेति तत्थ पण्णविज्जति, पादाण य से कप्पो कीरति, समुद्देसे उच्चारादिसु य जयणाए जतंति आयरिंति, अण्णपडिस्सयं वा घेत्तूण जतणाए उवचरिज्जति ॥८६॥

इदाणिं अच्चित्ताणं गहणं छार-डगलय-मल्लयादीणं उडुबद्धे गहिताणं वासासु

---

(३६) (अव०) कारणे पुराणभावितश्राद्धान् संविग्नान् मुक्त्वा शेषाणां दीक्षायाः प्रतिषेधः, निर्धर्मो माभूत् । भोजने मण्डल्याम् उड्डाहो भवति । रात्रौ मोकस्य परीषहे आचमने उड्डाहः ॥८७॥

(३७) (अव०) ईर्येषणाभाषाग्रहणेनादाननिक्षेपणसमिति-पारिष्ठापनिकसमिती अपि

---

१. मा होहि निद्धम्मो इति निर्युक्तिपञ्चकम् ।
२. डगलच्छारे लेवे छड्डाण गहणे तहेव धरणे य ।
पुंछणगिलाणमत्तग, भायणभंगादिहेऊ से ॥
इति गाथा अधिका निर्युक्तिपञ्चके ।

३८. कामं तु सव्वकालं, पंचसु समितीसु होइ जइयव्वं ।
वासासु अहीगारो, बहुपाणा मेइणी जेणं ॥८९॥[१]

वोसिरणं, [२]वासासु धरणं छारादीणां, जति ण गिण्हति मासलहुं, जा य तेहिं विणा विराधणा गिलाणादीण भविस्सति । भायणविराधणा लेपेण विणा तम्हा घेत्तव्वाणि, छारो एक्के कोणे पुंजो घणो कीरति । तलिया विकिंचिज्जति जदा ण विकिंचिताओ तदा छारपुंजे णिहम्मंति मा [३]पणइज्जिस्सं ति, उभतो काले पडिलेहिज्जंति ताओ छारो य । जता अवगासो भूमीए नत्थि छारस्स तदा कुंडगा भरिज्जंति । लेवो समाणेऊण भाणस्स हेट्ठा कीरति, छारेण उग्गुंडिज्जति, स च भायणेण समं पडिलेहिज्जति । अध अच्छंतयं भायणं णत्थि ताहे मल्लयं लेवेउणं भरिज्जति, [४]पडिहत्थं पडिलेहिज्जति य । एवं एसा सीमा भणिता—काणइ गहणं काणइ धरणं काणइ वोसिरणं काणइ तिण्णि वि ॥ दव्वट्ठवणा गता ॥८७॥

(३७) (प्रा०चू०) इदाणिं भावट्ठवणा । **इरिएसण०** गाहा । इरि-एसण-भासागहणेण आदाण-णिक्खेवणासमिती-परिट्ठावणियासमितीतो वि गहितातो भवंति । एतासु पंचसु वि समितीसु वासासु उवउत्तेण भवितव्वं ॥८८॥

(३८) (प्रा०चू०) एवमुक्तो चोदक आह-उडुबद्धेण किं असमितेण भवितव्वं ? जेणं भण्णति वासासु पंचसु समितीसु उवउत्तेण भवितव्वं ? उच्यते-**कामं०** गाहा ॥

गृहीते स्तः । एतासु पञ्चसु समितिषु वर्षासु उपयुक्तेन भवितव्यम् । मनसा वचसा कायेन गुप्तः स्यात् । दुश्चरितानाम् आलोचनां कुर्यात् । अधिकरणकषायानां सांवत्सरिके व्युत्सृजनं स्यात् । द्वारगाथा । एतानि वाच्यानि ॥८८॥

(३८) (अव०) शिष्यपृच्छा-'ऋतुबद्धे किम् असमितेन भवितव्यम् ?' । यदि एवम् उच्यते-चोयग ! आचार्यः-कामम् अवधृतार्थे यद्यपि सर्वकालं पञ्चसु समितिषु यतितव्यं स्यात्, वर्षासु श्रीकल्पाधिकारः, येन बहुप्राणा मेदिनी ॥८९॥

---

१. वासावासं पज्जोसवियाणं णो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अणभिग्गहिय-सिज्जासणिएणं हुत्तए, आयाणमेयं अणभिग्गहियसिज्जासणियस्स अणुच्चाकूइयस्स अणट्ठाबंधियस्स अमियासणियस्स अणातावियस्स असमियस्स अभिक्खणं अपडिलेहणासीलस्स अपमज्जणासीलस्स तहा तहा णं संजमे दुराराहए भवइ । अणादाणमेयं अभिग्गहियसिज्जासणियस्स उच्चाकुइयस्स अट्ठाबंधियस्स मियासणियस्स आयावियस्स समियस्स अभिक्खणं अभिक्खणं पडिलेहणासीलस्स पमज्जणासीलस्स तहा णं संजमे सुआराहए भवइ ॥ कल्पसूत्र (२८१)

२. वासासु [गहणं] धरणं [य] पु० । ३. मा पनकीभवन्तु । ४ पडहत्थं पु० ।

३९. भासणे संपाइमवहो, दुण्णेओ नेहछेओ तइयाए ।
इरिय चरिमासु दोसु वि, अपेहअपमज्जणे पाणा ॥९०॥

काममनुमतार्थं, यद्यपि सर्वकालं=सदा समितेण होतव्वं, तहावि वासासु विसेसो कीरति । जेणं तदा बहुपाणा पुढवी आगासं च ॥८९॥

(३९) (प्रा०चू०) एवं ताव सव्वासिं सामण्णं भणितं । इदाणिं एक्केक्काए पिधप्पिधं असमितस्स दोसा भण्णंति–**भासणे०** गाहा ।

अणाउत्तं भासं भासंतस्स संपादिमाणं पाणाणं वाघातो भविस्सति । [१]आदिग्गहणेणं आउक्काय–फुसिताओ सचित्तवातो य मुहे पविस्सति, ततिया णाम एसणासमिती अणाउत्तस्स उदउल्लाणं हत्थमत्ताणं छेदो णाम उदतोल्लविभत्ति दुक्खं णज्जति, चरिमातो णाम–आयाणनिक्खेवणासमिती पारिट्ठावणियासमिती य । इरियासमिती–अणुवउत्तो सुहमातो मंडुक्कलियादीओ हरिताणि य न परिहरति । आदाणनिक्खेवणासमितीए पारिट्ठावणियासमितीए य अणुवउत्तो पडिलेहणपमज्जणासु दुप्पडिलेहितं दुप्पमज्जितं करेति, ण वा पमज्जेज्ज पडिलेहिज्ज वा । समितीणं पंचण्हवि उदाहरणाणि । इरियासमितीए उदाहरणं–

एगो साहू इरियासमितीए जुत्तो । सक्कस्स आसणं चलितं । सक्केण देवमज्झे पसंसितो । मिच्छाद्दिट्ठी देवो असद्दहंतो आगतो । मक्खितप्पमाणातो मंडुक्कलियाओ विउव्वति, पिट्ठतो हत्थिभयं, गतिं ण भिंदति । हत्थिणा य उक्खिवितुं पाडितो ण सरीरं पेहति सत्ता मारित त्ति जीवदयापरिणतो । अथवा इरियासमितीए अरहन्नतो–देवताए पादो छिन्नो, अन्नाए संधितो य ।

भासासमितीए–साहू णगररोहए वट्टमाणे भिक्खाए निग्गतो पुच्छितो भणति–'**बहुं सुणेति कन्नेहिं**'

(बहु सुणेति कण्णेहिं बहु अच्छीहिं पेच्छति ।
न य दिट्ठं सुअं सव्वं भिक्खू अक्खाउमरहति ॥ द०वै०८–२०) सिलोगो ।

एसणासमितीए णंदिसेणो, वसुदेवस्स पुव्वभवो कथेतव्वो । अहवा इमं दिट्ठिवातियं–

---

(३९) (अव०) भाषायां सम्पातिमानां जीवानां वधः स्यात् । तृतीयस्यां स्नेहच्छेदे

---

१. अत्र यद्यपि चूर्णिकृता 'आदिग्गहणेणं' इत्याद्युक्तं, किञ्चास्यां गाथायाम् आदिपदमेव नास्तीत्यत्र तद्विदः प्रमाणम् । पाठभेदो वा चूर्णिकृदग्रे भविष्यति, न चोपलब्धः सोऽस्माभिः कुत्रचिदप्यादर्शे । (पु०) ।

४०. मणवयणकायगुत्तो, दुच्चरियाइं तु खिप्पमालोए ।
अहिगरणम्मि दुरूयग, पज्जोए चेव दमए य ॥९१॥[१]

पंच संजता महल्लातो अद्धाणातो तण्हाछुहाकिलंता निग्गया । वियालितं गता पाणियं मग्गंति । अणेसणं लोगो करेति । ण लद्धं । कालगता पंचवि ।

आदाणभंडमत्तनिक्खेवणासमितीए उदाहरणं-आयरिएण साधू भणितो, 'गामं वच्चामो' । उग्गाहिते संते केणवि कारणेण ट्ठिता । एक्को एत्ताहे पडिलेहितं ति कातुं ठवेउमारद्धो । साधूहिं चोदितो भणति, 'किं एत्थ सप्पो भविस्सति ?' । संनिहिताए देवताए सप्पो विगुव्वितो । एस जहन्नो असमितो । अन्नो तेणेव विहिणा पडिलेहित्ता ठवेति, सो उक्कोसतो समितो ।

उदाहरणं-एगस्सायरियस्स पंच सिस्स-सयाइं । एत्थ एगो सेट्ठिसुतो पव्वइतो । सो जो जो साधू एति तस्स दंडयं निक्खिवति । एवं तस्स उट्ठितस्स अच्छंतस्स अन्नो एति अण्णो जाति तहावि सो भगवं अतुरितं अचवलं उवरिं हिट्ठा य पमज्जित्ता ठवेति । एवं बहुणावि कालेणं न परिताम्मति ।

पंचमाए समितीए उदाहरणं धम्मरुई । सक्कासण-चलणं । पसंसा । मिच्छाद्दिट्ठीदेव-आगमणं । पिपीलियाविगुव्वणं । काइयाडा संजता [२]बाहाडितो य मत्ततो । निग्गतो पेच्छति संसत्तं थंडिल्लं । साधू परितावेज्जंति त्ति पपीतो[३] देवेण वारितो । वंदितुं गतो । बितिओ चेल्लतो काइयाडो ण वोसिरति देवताए उज्जोतो कओ एस समितो ।

दुर्ज्ञेयः । ईर्यायां चरिमयोर्द्वयोरप्रेक्षणेऽप्रमाजने प्राणा हन्यन्ते ॥९०॥

(४०) (अव०) मनोवचनकायगुप्तः सन् दुश्चरितानि क्षिप्रमालोचयेत् । अधिकरणे

---

१. वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वइत्तए । जे णं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ से णं अकप्पेणं अज्जो वयसीति वत्तव्वे सिया । जे णं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ से णं निज्जूहियव्वे सिया ॥ कल्पसूत्र (२९३)

वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अज्जेव कक्खडे कडुए वुग्गहे समुप्पज्जिज्जा, सेहे राइणियं खामिज्जा, राइणिएवि सेहं खामिज्जा । खमियव्वं खमावियव्वं उवसमियव्वं उवसमावियव्वं सुमइसंपुच्छणाबहुलेणं होयव्वं । जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा, तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं । से किमाहु भंते ! उवसमसारं खु सामण्णं ॥ कल्पसूत्र (२९४) २. भृतश्च मात्रकः । ३. य पीतो इति कु० ।

४१. एगबइल्ला भंडी, पासह तुब्भे य डज्झ खलहाणे ।
हरणे झामण जत्ता, भाणगमल्लेण घोसणया ॥९२॥

४२. अप्पिणह तं बइल्लं, दुरूतग्ग ! तस्स कुंभयारस्स ।
मा भे डहीहि [1]गामं, अन्नाणि वि सत्त वासाणि ॥९३॥

इमो असमितो-चउव्वीसं उच्चारपासवणभूमीतो तिन्नि य कालभूमितो न पडिलेहेति। चोदितो भणति, 'किं एत्थ उट्टो भविज्जा ? ।' देवता उट्टरूवेण थंडिले ठिता। बितियए गतो तत्थ वि एवं, ततियए वि । ताहे तेण उट्ठवितो । ताहे देवताए पडिचोदितो सम्मं पडिवण्णो ॥९०॥

(४०) (प्रा०चू०) इदाणिं **मणवयसा काइए य दुच्चरिए** त्ति । अस्य व्याख्या **मणु** पुव्वद्धं कंठं। गुत्तीणं उदाहरणाणि-मणोगुत्तीए एगो सेट्ठिसुतो। सुण्णघरे पडिमं ठितो । पुराणभज्जा से सन्निरोहमस्सहमाणी उब्भामइल्लेण समं तं चेव घरमतिगता । पल्लंकखिल्लएण य साधुस्स पादो विद्धो । तत्थ अणायारं आयरति, ण य तस्स भगवतो मणो विणिग्गतो सट्ठाणातो ।

वतिगुत्तीए-सण्णातयसगासं साधू पत्थितो । चोरेहिं गहितो वुत्तो य । मातपितरो से विवाहनिमित्तं एंताणि दिट्ठाणि । तेहिं णियत्तितो । तेण तेसिं वइगुत्तेण ण कहितं । पुणरवि चोरेहिं गहिताणि । साहू य पुणो [2]तेहिं दिट्ठो । स एवायं साधु त्ति भणिऊण मुक्को । इतराण वि तस्स वइगुत्तस्स मातापितरो त्ति काउं मुक्काणि ।

कायगुत्तीए साहू हत्थिसंभमे गतिं ण भिंदति अद्धाणपडिवन्नो वा ॥९१॥

(४१-४२) (प्रा०चू०) इदाणिं अधिकरणे त्ति दारं । असमितस्स वोसिरणं समितत्तणस्स गहणं । अधिकरणं न कातव्वं । पुव्वुप्पन्नं वा न उदीरेतव्वं वितोसवेतव्वं, दिट्ठंतो कुंभकारेण-

एक्को कुंभकारो भंडिं कोलालभंडस्स भरेऊण दुरूतयं नाम पच्चंतगामं गतो । तेहिं

दुरूतकः प्रद्योतश्चैव द्रमकश्चैव दृष्टान्ताः स्युः ॥९१॥

(४१-४२) (अव०) एकबलीवर्दा । भण्डी=गन्त्री । खलधान्यान् दह्यमानान् । यूयमपि पश्यत । हरणे ध्यापनं कृतम् मल्लयुद्धेषु भाणकेन=पाटहिकेन घोषणा कृता ॥९२॥

---

१. **धण्णं**-इति निर्युक्तिपञ्चकम् । २. जेणिं इति कु० ।

४३. चंपा कुमारनंदी, पंचऽच्छर थेरनयण दुमऽवलए ।
विह पासणया सावग, इंगिणि उववाय णंदिसरे ॥९४॥

४४. बोहण पडिमा उदयण, पभावउप्पाय देवदत्ताते ।[१]
मरणुववाए तावस, णयणं तह भीसणा समणा ॥९५॥

४५. गंधार गिरी देवय, पडिमा गुलिया गिलाण पडियरणं ।
पज्जोयहरण पुक्खर, रण गहणा मेऽज्ज ओसवणा ॥९६॥

दुरूतइच्चेहिं गोहेहिं तस्स एगं बइल्लं हरिउकामेहिं वुच्चति, 'पेच्छह इमं अच्छेरं, भंडी एगेण बइल्लेण वच्चति' । तेण भणितं–'पेच्छह इमस्स गामस्स खलधाणाणि डज्झंति त्ति ।' तेहिं तस्स सो बइल्लो हरितो । तेण जाइता–'देह बइल्लं' । ते भणिंति, 'तुमं एक्केणं चेव बइल्लेण आगतो' । जाहे ण दिंति ताहे तेण पतिवरिसं खलीकतं धण्णं सत्तवासाणि झामियं । ताहे दुरूतयगामेल्लएहिं एगंमि महामहे [२]भाणओ भणितो 'उग्घोसेहि, जस्स अवरद्धं तं मरिसावेमो, मा णे सकुले उच्छादेतु[३] । भाणएण उग्घोसितं । ततो कुंभकारो भणति–[४]**अप्पिणध तं बइल्लं** गाहा । पच्छा तेहिं विदिन्नो खामितो । जति ताव तेहिं असंजतेहिं अण्णाणीहिं होंतएहिं खामिता[५] एत्तिया अवराहा, तेणवि य खमियं[६], किमंग पुण संजतेहिं नाणीहिं होंतएहिं जं कतं तं सव्वं पज्जोसवणाए उवसामेतव्वं ॥९२–९३॥

(४३–४६) (प्रा०चू०) अहवा दिट्ठंतो—उद्दायणो राया ।

तारिसे अवराधे पज्जोओ सावगो त्ति काऊण मोत्तूण खामितो । एवं साधुणावि पज्जोसवणाए परलोगभीतेण सव्वस्स खामेयव्वं ॥९४–९५–९६–९७॥ अहवा–

हे दुरतकाः ! तं बलीवर्दम् अर्प्पयत । तस्य=कुम्भकारस्य भे=भवतां अन्यान्यपि सप्तवर्षाणि मा दहिष्यति ॥९३॥

(४३–४६) (अव०) चम्पायां नगर्यां कुमारनन्दी सुवर्णकारः । पञ्चशैलद्वीपः । अप्सरसामागमनम् । स्थविरेण नयनम् । द्रुमे स विलग्नः । वलये प्रवहणं भग्नम् । विहगः । आकाशे वलमानस्यागमनम् । **पासणया**=लोकानां दर्शनम् । श्रावकस्य दीक्षा । सुवर्णकारस्येङ्गिनीमरणम् । उपपाते द्वयोर्देवत्वे । नन्दीश्वरे द्वयोर्मिलनम् ॥९४॥

बोधनम् । देवस्य प्रतिमा । देवेन कृता । उदयनाय प्रेषिता । प्रभावती पूजयति । उत्पातो

---

१. **देवदत्तद्दे**–निर्युक्तिपञ्चकम् । २. भाणकः=उद्घोषकः । ३. उच्छादेसु कु० । ४. अर्पयत । ५. खामितो पु० । ६. खंतं पु० ।

४६. दासो दासीवतितो, छत्तट्ठिय जो घरे य वत्थव्वो ।
आणं कोवेमाणो, हंतव्वो बंधियव्वो य ॥९७॥

४७. खद्धाऽऽदाणियगेहे, पायस दट्ठूण चेडरूवाइं ।[१]
पियरोभासण खीरे, जाइय लद्धे य तेणा उ ॥९८॥

४८. पायसहरणं छेत्ता, पच्चागय दमग असियए सीसं ।
भाउय सेणावति खिंसणा य सरणागतो जत्थ ॥९९॥

(४७-४८) (प्रा०चू०) एगो दमओ पच्चंतगामवासी तेण सरतकाले चेडरूवेहिं जाइज्जंतेण दुद्धं मग्गिउण पायसो रद्धो । तत्थ चोरसेणा पडिया । तेहिं विलोलियं । सो य पायसो [२]सत्थालीतो हरितो तेणेहिं । सो य अडवीतो तणं लुणिऊण 'अज्ज तेहिं समं पायसं भोक्खामि'त्ति जाव इंतस्स चेडरूवेहिं रुयमाणेहिं सिट्ठं । कोधेण गंतुं तेसिं चोराण वक्खेवेणं सेणावइस्स असियएण सीसं छिंदिऊण णट्ठो । ते य चोरा हयसेणावतिया णट्ठा । तेहिं गंतूण पल्लिं तस्स डहरओ भाया सेणावती अभिसित्तो । ताहे ताओ माताभइणीओ तं भणंति, 'तुम्ह अम्हं वइरियं अमारेऊण इच्छसि सेणावइत्तणं काउं ?' तेण गंतूण सो आणितो दमगो जीवगज्झो वराओ । तेसिं पुरओ णिगलियं बंधिऊण भणितो धणुं गहाय 'भणइ कत्थ आहणामि सरेण भाइमारगा ?' तेण भणियं-'जत्थ सरणागया विज्झंति' । तेण चिंतिऊण भणियं-'कइयावि नो सरणागता आहम्मंति' । ताहे सो पूएऊण विसज्जितो । जति ताव तेण

बभूव । देवतापूजावसरे आदर्शेन दासी हता राज्ञ्या । मरणम् । स्वर्गे उपपातः । तापसाऽऽश्रमे नयनम् । तथा भाषणा कृता । तत्र श्रमणानां दर्शनम् ॥९५॥

गन्धारः श्राद्धः । वैताढ्यगिरौ देवतासान्निध्यात् प्रतिमा अवन्दत । तया गुटिका अर्प्पिता । श्राद्धस्य । ग्लानस्य प्रतिचरणम् ॥९६॥

प्रद्योतेन दास्याः प्रतिमायाश्च हरणम् । मार्गे प्रभावत्या पुष्करचुरणम् । प्रद्योतस्य ग्रहः कृतः । दासीपतिः नाम । पर्युषणादिने मुक्तः । दासो, दासी, व्रजिकः, छत्रार्थी, यो गृहे च वास्तव्यः आज्ञां कोपयन् [न] मया हन्तव्यो बन्धितव्यश्च ॥९७॥

(४७-४८) (अव०) खदाणिगेहे=समृद्धगृहे । पायसं दृष्ट्वा । चेटरूपैः पित्रोरवभाषणं कृतम् । क्षीरे=दुग्धे याचिते लब्धे च पायसे राद्धे सति स्तेना आगताः ॥९८॥

स्तेनैः पायसहरणं कृतम् । क्षेत्रात् प्रत्यागतद्रमकेण **असियएत्ति** दात्रेण शीर्षं चिच्छेद । भ्राता

---

१. **दट्ठु दमचेड**-निर्युक्तिपञ्चकम् । २. सस्थालीकः ।

४९. वाओदएण राई, णासइ कालेण सिगयपुढवीणं ।
णासइ उदगस्स राई, पव्वयराती उ जा सेलो ॥१००॥

५०. उदय सरिच्छा पक्खेणऽवेति चउमासिएण [१]सिगयसमा ।
वरिसेण पुढविराई आमरणगती अ पडिलोमा ॥१०१॥

५१. सेलट्ठि थंभ दारुय, लया य वंसी य मिंढ गोमुत्तं ।
अवलेहणीया किमिराग कद्दम कुसुंभय हलिद्दा ॥१०२॥

५२. एमेव थंभकेयण,[२] वत्थेसु परूवणा गईओ य ।
मरूयऽच्चंकारिय पंडुरज्ज मंगू य आहरणा ॥१०३॥[३]

धम्मं अयाणमाणेण मुक्को, किमंग पुण साधुणा परलोगभीतेण ? अब्भुवगतस्स सम्मं सहितव्वं खमियव्वं ॥९९॥

(४९-५२) (प्रा०चू०) इदाणिं कसायत्ति-तेसिं चउक्कओ निक्खेवो जधा नमोक्कार-निज्जुत्तीए[४] तहा परूवेऊण कोधो चउव्विधो उदग-राइ-समाणो वालुग०पुढवि०

सेनापतिः कृतः । मात्रा खिंसना कृता । शरणागतो यत्र हन्यते ॥९९॥

(४९-५२) (अव०) वातोदकाभ्यां सिकता=पृथ्व्या राजिः कालेन नश्यति । दकस्य राजिर्नश्यति । पर्वतराजिस्तु यावत् शैलः स्यात् ॥१००॥

उदकसदृशां राजिं पक्षेन, सिकतासमां चातुर्मासकेन ब्रूतेऽर्हदादिः । वर्षेण पृथ्वीराजिं ब्रूते । पर्वतराजिरामरणं स्यात् । गतिश्च प्रतिलोमा ॥१०१॥

शैल १ अस्थि २ दारुस्तम्भ ३ तृणलता च ४ एते दृष्टान्ता माने स्युः । वंशीय १ मिण्ढशृङ्ग २ गोमूत्रिका ३ अवलेहनिका बो(छो)लपातनं ४ एते दृष्टान्ता मायायाम् । कृमिरागः १ कर्दमः २ कुसम्भकः ३ हलिद्रा ४ एते दृष्टान्ता लोभे स्युः । विपरीतेन विचार्याः ॥१०२॥

---

१. सिकतासमा ।

२. वक्रवस्तु मायार्थम् ।

३. चउसु कसाएसु गती नरयतिरिमाणुसे य देवगती ।
उवसमह निच्चकालं सोग्गइमग्गं वियाणंता ॥
एषा गाथा निर्युक्तिपञ्चके अधिका ।

४. कम्मं कस भवो वा कसमाओ सिं जओ कसाया तो ।
कसमाययंति व जओ गमयंति कसं कसाय त्ति ॥२९७८॥

पव्वय० । जो तद्दिवसं चेव पडिक्कमण-वेलाए उवसमइ जाव पक्खियं ताव उदगराइसमाणो । चाउम्मासिए जो उवसमइ वालुगा-राति-समाणो । सरते जधा पुढवीए फुडिता दालीतो वासेणं संमिलंति एवं जाव देवसिय-पक्खिय-चाउम्मासिएसु ण उवसमति संवच्छरिए उवसमेति तस्स पुढवि-राय-समाणो कोधो । जो पज्जोसमणाए वि ण उवसमति तस्स पव्वय-राई समाणो कोधो। जधा पव्वतराई न संमिलति तधा सो वि । एवं सेसा वि कसाया परूवेतव्वा ॥१००-१०१-१०२-१०३॥

आउ व उवायाणं तेण कसाया जओ कसस्साया ।
जीवपरिणामरूवा जेण उ नामाइनियमोऽयं ॥२९७९॥

नामं ठवणा दविए उप्पत्ती पच्चए य आएसे ।
रस-भाव-कसाए वि य परूवणा तेसिमा होइ ॥२९८०॥

दुविहो दव्वकसाओ कम्मदव्वे य नो व कम्मम्मि ।
कम्मद्दव्वकसाओ चउव्विहा पोग्गलाणुइया ॥२९८१॥

सज्जकसायाइओ नोकम्मदव्वओ कसाओऽयं ।
खेत्ताइ समुप्पत्ती जत्तो प्पभवो कसायाणं ॥२९८२॥

होइ कसायाणं बंधकारणं जं स पच्चयकसाओ ।
सद्दाइउ त्ति केई न समुप्पत्तीए भिन्नो सो ॥२९८३॥

आएसओ कसाओ कइयवकयभिउडिभंगुरागारो ।
केई चित्ताइगओ ठवणाणत्थंतरो सोऽयं ॥२९८४॥

रसओ रसो कसाओ कसायकम्मोदओ य भावम्मि ।
सो कोहाइ चउद्धा नामाइ चउविहेक्केक्को ॥२९८५॥

भावं सद्दाइनया अट्ठविहमसुद्धनेगमाईया ।
णाएसुप्पत्तीओ सेसा जं पच्चयविगप्पा ॥२९८६॥

दुविहो य दव्वकोहो कम्मदव्वे य नोयकम्मम्मि ।
कम्मद्दव्वे कोहो तज्जोग्गा पोग्गला णुइया ॥२९८७॥

नोकम्मदव्वकोवो णेओ चम्मारकोहनीलादि ।
जं कोहवेयणिज्जं समुइण्णं भावकोहो सो ॥२९८८॥

माणादओ वि एवं नामाई चउव्विहा जहाजोग्गं ।
नेया पिहण्णिहा वा सव्वेऽणंताणुबन्धाई ॥२९८९॥

जल-रेणु-भूमि-पव्वयराईसरिसो चउव्विहो कोहो ।
तिणिसलया-कट्ठ-ट्ठियसेलत्थंभोवमो माणो ॥२९९०॥

५३. अवहंत गोण मरुए, चउण्ह वप्पाण उक्करो उवरिं ।
छोढुं मए [1]सुंवट्ठाऽतिकोवे णो देमो पच्छित्तं ॥१०४॥

५४. वणिधूयाऽच्चंकारिय भट्टा अट्ठसुयमग्गओ जाया ।
वरग पडिसेह सचिवे, अणुयत्तीह पयाणं च ॥१०५॥

तत्थ कोहे उदाहरणं एसेव दमतो, अधवा–

(५३) (प्रा०चू०) एक्को मरुतो, तस्स इक्को बइल्लो । सो तं गहाय केयारे मलेऊण गतो । सो सीतयाए ण तरति उट्ठेतुं । ताहे तेण तस्स उवरिं तोत्तओ भग्गो । ण य उट्ठेति ताहे तिण्हं केयाराणं डगलएहिं आहणति, ण य सो उट्ठेति । चउत्थस्स केयारस्स डगलएहिं मतो सो । उवट्ठितो [2]धियारे, तो तेहिं भणितो–णत्थि तुज्झ पच्छित्तं, गोऽवज्झा जेण एरिसा कता । एवं सो [3]सलागपडितो जातो । एवं साहुणावि एरिसो कोहो ण कातव्वो । सिय त्ति–होज्जा ताहे उदगराइसमाणेण होतव्वं । जो पुण पक्खिय–चाउम्मासिय–संवच्छरिएसु ण उवसंतो तस्स विवेगो कीरति ॥१०४॥

एवमेव स्तम्भमानः, केतनः=माया वस्त्रेषु लोभसदृशेषु प्ररूपणा कार्या गतयश्च । बटुः क्रोधे १ अच्चङ्कारिका माने २ पाण्डुरार्या साध्वी मायायां ३ मङ्गुश्च लोभे ४ एतानि उदाहरणानि=दृष्टान्ता स्युः ॥१०३॥

(५३) (अव०) अवहतो गोरुपरि मरुकेन=बटुकेन । चतुर्णां वप्राणाम् उत्करान् क्षिप्त्वा मृते स उपस्थितः । आलोचना याचिता । अतिकोपः । न दद्मः प्रायश्चित्तम् ॥१०४॥

मायावलेह–गोमुत्ति–मेंढसिंग–घणवंसिमूलसमा ।
लोहो हलिद्द–खंजण–कद्दम–किमिरागसामाणो ॥२९९१॥

पक्ख–चउमास–वच्छर–जावज्जीवाणुगामिणो कमसो ।
देव–नर–तिरिय–नारयगइसाहणहेअवो नेया ॥२९९२॥ दारं ॥

रागद्वोस कसाए य इंदियाणि य पंच वि । इति आवश्यकनिर्युक्त्यन्तर्गतनमस्कारनिर्युक्तिगाथा ९१८ गतं 'कसाए' इति पदं व्याख्यानयद्भिः श्रीजिनभद्रगणक्षमाश्रमणपूज्यपादैर्विशेषावश्यकमहाभाष्ये कषायपदं '**नाम ठवणा दविए**' इत्यादि २९८० गाथातः २९८९ पर्यन्त गाथाकदम्बकेन न्यक्षेण निक्षिप्तं वर्तते । (पु.)

१. **मुवट्ठा**–निर्युक्तिपञ्चकम् ।

२. द्विजानिति सम्भाव्यते, 'वियारे' पाठान्तरम् ।

३. शलाका=समाजपङ्क्तिस्ततः पतितः ।

५५. णिवचिंत विकालपडिच्छणा य दारं न देमि निवकहणा ।
खिंसा णिसि निग्गमणं चोरा सेणावईगहणं ॥१०६॥

५६. णेच्छइ जलूगवेज्जगगहण, [१]तम्मि य अणिच्छमाणी उ ।
गिण्हावइ जलूगा, धणभाउग कहण मोयणया ॥१०७॥

(५४-५७) (प्रा०चू०) माणे अच्चंकारियभट्टा । एगा अट्ठण्हं पुत्ताणं अणुमग्गओ जाया सेट्ठिधूता । सा अमच्चेण जाइता । तेहिं भणितं-'जति अवराधे वि न चंकारेसि तो देमो' । तेण पडिसुतं-'आमं ण चंकारेमि' । दिण्णा, तस्स भारिया जाता । सो पुण अमच्चो जामे गते रायकज्जाणि समाणेऊण एति । सा दिवसे दिवसे खिंसति । पच्छा अन्नदा कदापि [२]दारं बंधिऊण अच्छति, अमच्चो आगतो । सो भणति 'उग्घाडेहि दारं' । सा ण उग्घाडेति । ताहे तेण चिरं अच्छिऊण भणिया-'मा तुमं चेव सामिणी होज्जाहि' । सा दारं उग्घाडेऊण अडविहुत्ता माणेण गता । चोरेहिं घेत्तुं चोरसेणावतिस्स उवणीता । तेण भणिता 'महिला मम होहि'त्ति । सा णेच्छति । ते वि बलामोडिए ण गेण्हंति । तेहिं जलोगवेज्जस्स हत्थे विक्कीता । तेण वि भणिता-'मम महिला होहि'त्ति । सा णेच्छति । रोसेण 'जलोगाओ पडिच्छसु'त्ति भणिता । सा तत्थ णवणीतेणं मक्खिया जलोगाओ गिण्हंति । तं असरिसं करेति । ण य इच्छति । अन्न-रूव-लावण्णा जाता । भाउतेण य मग्गमाणेण पच्चभिन्नाया मोएऊण नीता । वमणविरेअणेहि य पुण [३]णवीकाऊण अमच्चेण नेतावित्ता । तीसे य तेल्लं [४]सतसहस्सपागं

(५४-५७) (अव०) वणिक्धूता अच्चंकारिभट्टा अष्ट सुताना(नां) मार्गतः=पृष्ठतो जाता । वराकाणां प्रतिषेधं सा चक्रे । सचिवोऽवक्-'अहम् अनुवर्तिष्ये' । ततः प्रदानं कृतं पितृभिः ॥१०५॥

नृपचिन्तया विकाले=रात्रौ मन्त्रिणोऽतिकाले आगमनम् । तस्याः प्रतीक्षणाऽभूत् । द्वारं न ददे । नृपकार्यकथना कृता तेन स्थितः । अतिकाले आयातः । द्वारं दत्त्वा स्थितायाः तस्याः खिंसां चक्रे । तस्या निशि निर्गमनम् । चौराः । सेनापतेरार्प्पयन् । तेनोक्तं भार्या भवति । कथनं कृतम् ॥१०६॥

नेच्छति । ततो जलौकावैद्येन ग्रहणं कृतम् । सा तस्मिन् पतित्वमनिच्छन्ती जाता । स जलौकां ग्राहयति । व्रणानि जातानि । भ्रात्रा जनकथनेन ज्ञात्वा मोचना कृता । सज्जिता मन्त्रिणा आत्ता ॥१०७॥

---

१. तंपि-निर्युक्तिपञ्चकम् । २. कयादीयि बारं पु० । ३. 'णवा काऊण' पाठान्तरम् । पुणण्णवीकाऊण पु० । ४. 'सतपाग-सहस्सपागं' इति पाठान्तरम् ।

५७. सयगुणसहस्सपागं, वणभेसज्जं जइस्स जायणता ।
तिक्खुत्त दासीभिंदण, ण य कोवो सयं पदाणं च ॥१०८॥

५८. पासत्थि पंडुरज्जा, परिण्ण गुरुमूल णाय अभिओगा ।
पुच्छति य पडिक्कमणे, पुव्वब्भासा चउत्थम्मि ॥१०९॥

५९. अपडिक्कम सोहम्मे अभिओगा देवि सक्कओसरणं ।
हत्थिणि वायणिसग्गो गोतमपुच्छा य वागरणं ॥११०॥

पक्कं । तं च साधुणा मग्गितं । ताए दासी संदिट्ठा 'आणेहि' । ताए आणंतीए भायणं भिन्नं । एवं तिन्नि वारे भिण्णाणि । ण य रुट्ठा तिसु सतसहस्सेसु विणट्ठेसु । चउत्थ वारा अप्पणा उट्ठेतुं दिन्नं । जति ताव ताए मेरुसरिसोवमो माणो निहतो किमंग पुण साधुणा ?, निहणियव्वो चेव ॥१०५-१०६-१०७-१०८॥

(५८-६१) (प्रा०चू०) मायाए **पंडरज्जा** नाम साधुणी । सा विज्जासिद्धा आभिओग्गाणि बहूणि जाणति । जणो से पणय-कर-सिरो अच्छति । सा अण्णदा कदापि आयरियं भणति, 'भत्तं पच्चक्खावेह' । ताहे गुरुहिं सव्वं छड्डाविता पच्चक्खातं । ताहे सा भत्ते पच्चक्खाते एगाणिया अच्छति, ण कोइ तं आढाति । ताहे ताए विज्जाए आवाहितो जणो आगंतुमारद्धो पुप्फगंधाणि घित्तूण । आयरिएहिं दोवि पुच्छिता वग्गा भणंति 'ण याणामो' । सा पुच्छिता भणति-'आमं मए विज्जाए कतं' । तेहिं भणितं-'वोसिर' । ताए वोसट्ठं । ट्ठितो लोगो आगंतुं । सा पुणो एगागी । पुणो आवाहितं सिद्धं (ट्ठं) च । ततियं अणालोइतुं कालगता सोधम्मे कप्पे एरावणस्स अग्गमहिसी जाता । ताहे आगंतूण भगवतो

शतगुणसहस्रपाकं=लक्षपाकम् । व्रणभेषजं तस्या अभूत् । यतेर्याचना अभूत् । त्रिःकृत्वः दास्यास्तैलपात्रं भिन्नम् । न च कोपः कृतः । स्वयं प्रदानं कृतम् ॥१०८॥

(५८-६१) (अव०) पार्श्वस्था पाण्डुरार्या साध्वी । परिज्ञाम्=अनशनं गुरुपादमूले जग्राह । ज्ञातानाम् लोकानां अभियोगः=मन्त्रः कृतः । गुरुः पृच्छति । सा प्रतिक्रामति । पूर्वाभ्यासात् पुनः करोति । एवं चतुर्थे वारे ॥१०९॥

अप्रतिक्रम्य=अनालोच्य सौधर्मे आभियोगिका देव्यभूत् । शक्रस्य ऐरावणस्य पत्नी । अवसरणम् आगमनम् । श्रीवीरस्य पुरतः हस्तिनीरूपेण नाट्यकरणे विरूपो वातनिसर्गः शब्दश्च अभूत् । गौतमेन पृच्छा कृता । श्रीवीरेण च भवान्तरव्याकरणा च । अन्योऽपि साधुः साध्वी च य एवं मायां करोति स एव वातं करोति । तस्मात् माया न कार्या ॥११०॥

६०. महुराए मंगू आगम, बहुसुय वेरग्गी सड्ढपूया य ।
सातादिलोभ णितिए, मरणे जीहा य णिद्धमणे ॥१११॥

६१. अब्भुवगत गतवइरे, णाउं गिहिणो वि मा हु अहिगरणं ।
कुज्जा हु कसाए वा, अविगडितफलं च सिं सोउं ॥११२॥

६२. पच्छित्तं[१] बहुपाणा, कालो बलितो चिरं तु ठायव्वं ।
सज्झाय-संजमतवे, धणियं अप्पा णिओतव्वो ॥११३॥

६३. पुरिमचरिमाण कप्पो, मंगलं वद्धमाणतित्थंमि ।
इह परिकहिया जिण-गणहराइथेरावलि चरित्तं ॥११४॥

पुरतो ठिच्चा हत्थिणी होउं महता सद्देण वाउक्कायं करेति । पुच्छा उट्ठित्ता, वागरितो भगवता पुव्वभवो से । अण्णो वि कोऽपि साधू साधूणी वा माया एवं काहिति । सो वि एरिसं पाविहित्ति [२]मत्तितेण वातं करेति । तम्हा माया ण कायव्वा । लोभे लुद्धणंदो [३]फालइतो जेण अप्पणो पादा भग्गा । तम्हा लोभो ण कातव्वो ॥१०९-११०-१११-११२॥

(६२) (प्रा०चू०) एतेसिं सव्वेसिं पज्जोसवणाए वोसमणत्थं एत्थ वासारत्ते पायच्छित्तं । अट्ठसु उडुबद्धिएसु मासेसु जं पच्छित्तं संचियं तं वोढव्वं । किंनिमित्तं ? तदा बहुपाणं भवति । हिंडंताण य विराहणा तेसिं होति । अवि य बलिओ कालो । सुहं तदा पच्छित्तं वोढुं सक्कइ । चिरं च एगंमि खेत्ते अच्छितव्वं । अवि य सीतलगुणेण बलियाइं इंदियाइं भवंति, तेण दप्पणीहरणत्थं इत्थ वासारत्ते पायच्छित्तं तवो कज्जति । वित्थरेण य सज्झाए संजमे य सत्तरसविधे धणितं अप्पा जोएतव्वो ॥११३॥

मथुरायां मङ्गुसूरिः । आगमबहुश्रुतः वैराग्यवानभूत् । श्राद्धपूजा च । सातादिलोभवानभूत् । नित्यवासं चक्रे । मरणे । निर्द्धमने व्यन्तरीभूतो जिह्वया साधून् बोधयति ॥१११॥

अभ्युपगतवैराग्यान् गृहिणो ज्ञात्वा अधिकरणं मा कार्षुः साधवः । हुर्निश्चितं । कषायान् वा मा कार्षुः । अधिकृतानाम् अनालोचितानां एषां कषायाणां फलं श्रुत्वा ॥११२॥

(६२) (अव०) प्रायश्चित्तं वर्षाकाले ग्राह्यम् । बहुप्राणाश्च स्युः । वर्षासु विराधना-परित्यागः । एवं प्ररूपितः कालो बलवान् । चिरं न स्थातव्यम् । स्वाध्याये संयमे तपसि **धणियं**=अत्यर्थम् आत्मा नियोक्तव्यः ॥११३॥

---

१. पायच्छित्ते (पच्छित्ते) । २. 'मातित्तेण' पाठः सम्भाव्यते तथा च मायित्वेनेत्यर्थः । ३. राज्ञा विदारितः ।

६४. सुत्ते जहा णिबद्धं, वग्घारिय भत्त-पाण अग्गहणं ।
णाणट्ठी तवस्सी अणहियासि वग्घारिए गहणं ॥११५॥

---

(६३) (प्रा०चू०) पुरिमचरिमाण य तित्थगराणं एस मग्गो चेव । जहा-वासावासं पज्जोसवेतव्वं, पडउ वा वासं मा वा । मज्झिमगाणं पुण भयणिज्जं । अवि य वद्धमाणतित्थंमि मंगलनिमित्तं जिण-गणधरावलिया[१] सव्वेसिं च जिणाणं समोसरणाणि परिकहिज्जंति ॥११४॥

(६४) (प्रा०चू०) सुत्ते० गाहा । सुत्ते जहा णिबंधो- *'णो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा वग्घारित-वुट्ठिकायंसि गाथावतिकुलं भत्ताए वा पाणाए वा पविसित्तए वा निक्खमित्तए वा ।'*[२] वग्घारियं नाम जं भिण्णवासं पडति, वासकप्पं भेत्तूण अंतो कायं

---

(६३) (अव०) पूर्वचरमयोरर्हतोः पर्युषणाकल्पः स्यात् । वर्द्धमानतीर्थे मङ्गलमिति मङ्गलार्थं ततो जिनकथा परिकथिताः स्थविरावली वक्ष्ये ॥११४॥

(६४) (अव०) सूत्रे यथा निबद्धं । *णो कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथीण वा वग्घारियवुट्ठि*।०। वग्घारियं नाम यदभिन्नं वर्षं पतति कल्पं भित्त्वा अन्तः कायम् आर्द्रयति इति वघारीवृष्टिरुच्यते । तत्र

---

१. गणहर [राइथेरा] वलिया । २. वासावासं पज्जोसवियस्स णो कप्पइ पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स कणगफुसियमित्तमवि वुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥ कल्पसूत्रं (२५३)

वासावासं पज्जोसवियस्स पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स णो कप्पइ अगिहंसि पिंडवायं पडिगाहित्ता पज्जोसवित्तए, पज्जोसवेमाणस्स सहसा वुट्ठिकाए निवइज्जा देसं भुच्चा देसमादाय से पाणिणा पाणिं परिपिहित्ता उरंसि वा णं निलिज्जिज्जा, कक्खंसि वा णं समाहडिज्जा, अहाछन्नाणि वा लेणाणि वा उवागच्छिज्जा, रुक्खमूलाणि वा उवागच्छिज्जा, जहा से पाणिंसि दए वा दगरए वा दगफुसिआ वा नो परिआवज्जइ ॥ कल्पसूत्र (२५४)

वासावासं पज्जोसवियस्स पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स जं किंचि कणगफुसियमित्तं पि निवडइ णो से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥ कल्पसूत्र (२५५)

वासावासं पज्जोसवियस्स पडिग्गहधारिस्स भिक्खुस्स णो कप्पइ वग्घारियवुट्ठिकायंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायंसि संतरुत्तरंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥ कल्पसूत्र (२५६)

वासावासं पज्जोसविअस्स निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अहे वियडगिहंसि वा अहे रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए ॥ कल्पसूत्र (२५८)

६५. [१]संजमखेत्तचुयाणं, णाणट्ठि-तवस्सि-अणहियासाणं ।
आसज्ज भिक्खकालं, उत्तरकरणेण जतियव्वं ॥११६॥

६६. उण्णियवासाकप्पो, लाउयपायं च लब्भए जत्थ ।
सज्झाएसणसोही, वरिसति काले य तं खित्तं ॥११७॥

तिम्मेति । एवं वग्घारितं तत्थ ण कप्पति, *'कप्पति से अप्पवुट्ठिकायंसि संतरुत्तरस्स०'* जता पुण साधू णाणट्ठी कंचि सुतखंधं [२]दरपढितं, सो य ण तरति विणा आहारेण चाउक्कालं पोरिसिं कातुं, अहवा तवस्सी तेण विगिट्ठं तवोकम्मं कतं, तद्दिवसं च वासं पडति जद्दिवसं पारिततो, अथवा कोइ छुहालुतो अणहियासओ होज्जा, एते तिण्णिवि वग्घारितेवि पडंते हिंडेंति संतरुत्तरा[३] ॥११५॥

(६५-६८) (प्रा०चू०) ते य पुणो कतायि संजमखेत्तचुता णाम-जत्थ वासकप्पा उण्णिया लब्भंति, जत्थ पादाणि अण्णाणि य संजमोवगरणाणि लब्भंति तं संजमखित्तं । ते य तओ संजमखित्ताओ चुया असिवाई कारणेहिं गता अन्नखेत्तं संकंता जत्थ संजमोव-गरणाणि वासकप्पा य दुल्लभा, ताहे जद्दिवसं वासं पडति तद्दिवसं अच्छंतु । जदा नाणट्ठी तवस्सी अणधियासया[४] भवंति, तदा आसज्ज भिक्खाकालं उत्तरकरणेण जतंति ।

जति उन्नियं अत्थि तेण हिंडति, असति उण्णियस्स उट्टयेणं, उट्टियस्स असति कुतवेण । [५]जाहे एवं तिविधंपि वालगं णत्थि ताहे जं सोत्तियं पंडरं घणमसिणं तेण हिंडंति ।

ज्ञानार्थि-तपस्वि-अनध्यासिकानां वघारिवृष्टौ ग्रहणं स्यात् । ज्ञानार्थी आहारं विना चतुःकालं स्वाध्यायं कर्तुं न शक्नोति । विकृष्टतपस्विनः पारणं तदा जातम् । अनध्यासिकः=क्षुधालुः । एवं वघारिए ग्रहणं स्यात् । एते त्रयः वघारीवृष्टौ पतन्त्यामपि संस्तारोत्तरकल्पद्वययुता भिक्षाया ग्रहणं कुर्युः ॥११५॥

(६५-६८) (अव०) संयमक्षेत्रं नाम **यत्र उण्णिय**=यत्र और्णा वर्षाकल्पा लभ्यन्ते । यत्रालाबुपात्राण्यन्यानि च संयमोपकरणानि लभ्यन्ते । स्वाध्यायैषणायाः शुद्धिर्भवति । यत्र=वर्षति

---

१. प्राचीनचूर्णौ संजम ॥११६॥ उण्णिय ॥११७॥ इत्येवं व्याख्याक्रमो दृश्यते, अवचूर्णौ संजम ॥११६॥ पुव्वा ॥११७॥ उण्णिय ॥११८॥ इत्येवं व्याख्याक्रमो दृश्यते । अत्र प्राचीनचूर्णिमनुसृत्य निर्युक्ति-गाथाक्रमो निर्दिष्टः । २. अल्पपठितम् अर्धपठितम् वा । ३. आन्तरः सौत्रः कल्पः, उत्तर और्णिकस्ताभ्यां प्रावृत्ताः । ४. [य] इत्यधिकं पु० । ५. अथ चतुर्थो भेद उच्यते-से किं तमित्यादि । अत्रोत्तरम्, वालयं पंचविहमित्यादि । वालेभ्यः, ऊरणिकादिलोमभ्यो जातं वालजम् । तत्पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा, ऊर्णाया इदमौर्णिकम्, उष्ट्राणामिदमौष्ट्रिकम्, एते द्वे अपि प्रतीते । ये मृगेभ्यो ह्रस्वका मृगाकृतयो बृहत्पुच्छा आटविकजीवविशेषास्तल्लोमनिष्पन्नं मृगलोमिकम् । उन्दुरोमनिष्पन्नं कौतवम् । ऊर्णादीनां यदुद्वरितं किट्टिसं

६७. पुव्वाहीयं नासइ, नवं च छातो अपच्चलो[१] घेत्तुं ।
खमगस्स य पारणए वरिसति असहू य बालाई ॥११८॥

६८. वाले सुत्ते सुई कुडसीसग छत्तए अपच्छिमए[२] ।
णाणट्ठी तवस्सी अणहियासि अह उत्तरविसेसो ॥११९॥

सुत्तियस्स असतीए ताहे तलसूचीं तालसूचीं वा उवरिं काउं, जाधे सूचीवि णत्थि, ताहे [३]कुडसीसयं सागस्स पलासस्स वा पत्तेहिं काऊण सीसे च्छुभित्ता हिंडंति । कुडसीसयस्स असतीए छत्तएण हिंडंति । एस नाणट्ठी-तवस्सि-अणधियासाण य उत्तरविसेसो भणितो । एवं पज्जोसवणाए विही भणितो ॥११५-११९॥

काले च तत् संयमक्षेत्रं स्यात् । ते तस्माच्च्युताः=संयमक्षेत्रच्युता अशिवादिकारणैरन्यक्षेत्रसङ्क्रान्ताः । यत्र संयमोपकरणानि वर्षाकल्पाश्च दुर्लभाः । यस्मिन् दिने वर्षाः पतन्ति तस्मिन् दिने बहिर्मा यान्तु । तत्रापि यदि तेषां मध्ये ज्ञानार्थि-तपस्वि-अनध्यासिकाः स्युः तदा भिक्षाकालमासाद्य=प्राप्य वग्घारिवृष्टौ वक्ष्यमाणे । तु उत्तरकरणेन यतितव्यम् ॥११६॥

उण्णिय० वाले० ॥ यदि उर्णिकः कल्पोऽस्ति तदा तेन हिण्डते । असति औष्ट्रिकेन तस्याभावे कुतपेन उदरामामजेन हिण्डते ॥११७॥

तत्र हेतुमाह-**पुव्वा०** । बुभुक्षितस्य पूर्वाधीतं नश्यति, नष्टं च श्रुतं छाओ=ग्रहीतुम् अप्रत्यलोऽक्षमः स्यात् । क्षपकस्य=तपस्विनश्च पारणके मेघो वर्षति । बालश्च असहः क्षुधं न सहते । अथ उत्तरकरणम् ॥११८॥

एतत्त्रयं वालजं स्यात् । तस्याभावे सौत्रेण श्वेतेन दृढेनोपरिप्रावृतेन हिण्डते । तदभावे सुच्या ताल(तालपत्र)खूंपकेन तदभावे कुडसि-सकेत-शाकपत्र-पलाशपत्रखूंपकेन शीर्षोपरिदत्तेन । तदभावे छत्रकेन हिण्डते । अत्र छत्रमपश्चिमम्=अन्त्यम् उत्तरकरणम् एवं ज्ञानार्थि-तपस्वि-अनध्यासिकानाम् । अथ प्रकारान्तरे उत्तरणविशेषः स्यात् ॥११९॥

॥ इति श्री कल्पनिर्युक्तिः सम्पूर्णाऽवचूरिः श्री माणिक्यशेखरसूरीन्द्रविरचिता ॥

तन्निष्पन्नं सूत्रमपि किट्टिसम्, अथवैतेषामेवोर्णादीनां द्विकादिसंयोगतो निष्पन्नं सूत्रं किट्टिसम्, अथवोक्तशेषश्वादिलोमनिष्पन्नं किट्टिसं से तमित्यादि निगमनम् ॥४४॥ अथ पञ्चमो भेदोऽभिधीयते, से किं तमित्यादि । वल्काज्जातं वल्कजं तच्च सणप्रभृति । क्वचित्पुनरतस्यादीति पाठः । तत्रातसीसूत्रं मालवकादिदेशप्रसिद्धम् । से तमित्यादि निगमनम् । उक्तं पञ्चविधमण्डजादिसूत्रं तद्भणने चोक्तं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतमतस्तदपि निगमयति-से तं जाणगेत्यादि ।

१. 'न पच्चलो' पाठान्तरम् । २. कुडसीसग-(कुण्डशीर्षक) वंशनिर्मितं शिरस्त्राणम् । ३. पर्णनिष्पन्नम् ।

परिशिष्ट-१

छाया एवं अनुवाद[१]

द० नि० की गाथाओं में प्रयुक्त छन्दों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—**द० नि०,** प्राकृत के मात्रिक छन्द 'गाथा' में निबद्ध है । 'गाथा सामान्य' के रूप में जानी जाने वाली यह संस्कृत छन्द आर्या के समान है। '**छन्दोऽनुशासन**' की वृत्ति में उल्लिखित भी है—'आर्येव संस्कृतेतरभाषासु गाथासञ्ज्ञेति गाथालक्षणानि' अर्थात् संस्कृत का आर्या छन्द ही दूसरी भाषाओं में गाथा के रूप में जाना जाता है । दोनों—गाथा सामान्य और आर्या में कुल मिलाकर ५७ मात्रायें होती हैं। गाथा में चरणों में मात्रायें क्रमशः इस प्रकार हैं—१२, १८, १२ और १५ । अर्थात् पूर्वार्द्ध के दोनों चरणों में मात्राओं का योग ३० और उत्तरार्द्ध के दोनों चरणों का योग २७ है ।

'आर्या' और 'गाथा सामान्य' में अन्तर यह है कि आर्या में अनिवार्य रूप से ५७ मात्रायें ही होती हैं, इसमें कोई अपवाद नहीं होता, जबकि गाथा में ५७ से अधिक-कम मात्रा भी हो सकती है, जैसे ५४ मात्राओं की गाहू, ६० मात्राओं की उद्गाथा और ६२ मात्राओं की गाहिनी भी पायी जाती है । मात्रावृत्तों की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके चरणों में लघु या गुरु वर्ण का क्रम और उनकी संख्या नियत नहीं है । प्रत्येक गाथा में गुरु और लघु की संख्या न्यूनाधिक होने के कारण 'गाथा सामान्य' के बहुत से उपभेद हो जाते हैं ।

द० नि० में 'गाथा सामान्य' के प्रयोग का बाहुल्य है । कुछ गाथायें गाहू, उद्गाथा और गाहिनी में भी निबद्ध हैं । सामान्य लक्षण वाली गाथाओं (५७ मात्रा) में बुद्धि, लज्जा, विद्या, क्षमा, देही, गौरी, धात्री, चूर्णा, छाया, कान्ति और महामाया का प्रयोग हुआ है ।

गाथा सामान्य के उपभेदों की दृष्टि से अलग-अलग गाथावृत्तों में निबद्ध श्लोकों की संख्या इसप्रकार है—बुद्धि-१, लज्जा-४, विद्या-११, क्षमा-९, देही-२८, गौरी-२२, धात्री-२३, चूर्णा-१५, छाया-८, कान्ति-३, महामाया-३, उद्गाथा-९ और अन्य-४ ।

यह बताना आवश्यक है कि सभी गाथाओं में छन्द लक्षण घटित नहीं होते हैं।

---

१. सन्दर्भः दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्तिः एक अध्ययन । सं० डॉ० अशोक कुमार सिंह ।

पज्जोसमणाए अक्खराइं होंति उ इमाइ गोण्णाइं ।
परियायववत्थवणा पज्जोसमणा य पागइया ॥५२॥ (उद्गाथा)

परिवसणा पज्जुसणा पज्जोसवणा य वासवासो वा ।
पढमसमोसरणं ति य ठवणा जेट्ठोग्गहेगट्ठा ॥५३॥ (चूर्णा)

ठवणाए निक्खेवो छक्को दव्वं च दव्वनिक्खेवो ।
खेत्तं तु जम्मि खेत्ते काले कालो जहिं जो उ ॥५४॥ (लज्जा)

ओदइयाईयाणं भावाणं जा जहिं भवे ठवणा ।
भावेण जेण य पुणो ठविज्जए भावठवणा उ ॥५५॥ (देही)

पर्युपशमनायाः अक्षराणि भवन्ति तु इमानि गौणानि ।
पर्यायव्यवस्थापना पर्युपशमना च प्राकृतिका ॥५२॥

परिवसना, पर्युषणा, पर्युपशमना, च वर्षावासश्च ।
प्रथमसमवसरणमिति च स्थापना ज्येष्ठावग्रह एकार्थाः ॥५३॥

स्थापनायाः निक्षेपः षट्कः द्रव्यं च द्रव्यनिक्षेपः ।
क्षेत्रं तु यस्मिन् क्षेत्रे काले कालो यस्मिन् यस्तु ॥५४॥

औदयिकादिकानां भावानां या यत्र भवेत् स्थापना ।
भावेन येन च पुनः स्थाप्यते भावस्थापना तु ॥५५॥

पर्युपशमना ये अक्षरादि तो गुण-निष्पन्न होते हैं, श्रमणों की पर्यायव्यवस्थापना पर्युपशमना से व्यक्त होती है ॥५२॥

परिवसना—चारमास तक एक स्थान पर रहना, पर्युषणा—किसी भी दिशा में परिभ्रमण नहीं करना, पर्युपशमना—कषायों से सर्वथा उपशान्त रहना, वर्षावास-वर्षाकाल में चार मास तक एक स्थान पर रहना, प्रथम समवसरण—नियत वर्षावास क्षेत्र में प्रथम आगमन, स्थापना—वर्षावास के क्रम में ऋतुबद्ध काल के अतिरिक्त काल की मर्यादा स्थापित करना और ज्येष्ठावग्रह—चार मास तक एक क्षेत्र का उत्तम आश्रय आदि—इनमें व्यञ्जनों का अन्तर है अर्थभेद नहीं है ॥५३॥

(पर्युषणावाची उपरोक्त शब्दों में से स्थापना का निक्षेप दृष्टि से कथन)—स्थापना निक्षेप छः प्रकार का होता है (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्वामित्व एवं करण), द्रव्य-स्थापनानिक्षेप (अर्थात् पर्युषण करने वाले का द्रव्य शरीर और उसके द्वारा उपभोग योग्य एवं त्याज्य अचित-सचित्तादि) द्रव्य, क्षेत्र (स्थापना-निक्षेप), जिस क्षेत्र में स्थापना (पर्युषणा की जाती है) और काल (स्थापना-निक्षेप) जिस काल में स्थापना की जाती है ॥५४॥

औदयिक आदि भावों की जिस में स्थापना की जाती है या भाव से स्थापना की जाती है, वह भाव स्थापना-पर्युषणा है ॥५५॥

सामित्ते करणम्मि य अहिगरणे चेव होंति छब्भेया ।
एगत्तपुहुत्तेहिं दव्वे खेत्तऽद्धभावे य ॥५६॥ (देही)

कालो समयादीओ पगयं समयम्मि तं परूवेस्सं ।
निक्खमणे य पवेसे, पाउस-सरए य वोच्छामि ॥५७॥ (गौरी)

ऊणाइरित्त मासे अट्ठ विहरिऊण गिम्हहेमंते ।
एगाहं पंचाहं मासं च जहा समाहीए ॥५८॥ (विद्या)

काऊण मासकप्पं तत्थेव उवागयाण ऊणा ते ।
चिक्खल्ल-वास-रोहेण वावि तेण ट्ठिया ऊणा ॥५९॥ (विद्या)

स्वामित्वे करणे चाधिकरणे चैव भवन्ति षड्भेदाः ।
एकत्वपृथक्त्वाभ्यां द्रव्ये क्षेत्रकालभावेषु च ॥५६॥

कालः समयादिकः प्रकृतं समये तत्प्ररूपयिष्यामि ।
निष्क्रमणे च प्रवेशे प्रावृट्-शरदोः च वक्ष्यामि ॥५७॥

ऊनातिरिक्तमासान्, अष्टौ विहृत्य ग्रीष्महेमन्तयोः ।
एकाहं पञ्चाहं मासं च यथासमाधिना ॥५८॥

कृत्वा मासकल्पं तत्रैवोपागतानामूना ते ।
कर्दमवर्षारोधेन वापि तेन स्थिता न्यूनाः ॥५९॥

एकत्व एवं पृथक्त्व के आधार पर द्रव्य के स्वामित्व, करण और अधिकरण की दृष्टि से छः भेद होते हैं, इसी प्रकार क्षेत्र, काल और भाव के भेदों के विषय में (कथन करना चाहिए) ॥५६॥

प्रस्तुत समय अधिकार में उस काल अर्थात् समयादिक का निरूपण करूँगा, 'ऋतुबद्ध क्षेत्र से वर्षा ऋतु में', और शरद ऋतु में यह कहता हूँ ॥५७॥

ग्रीष्म (के चार मास) और हेमन्त (शीतऋतु के चार मास) में अर्थात् आठ माह से कम या अधिक विहार करना चाहिए । यह विहार आठ महीने से एक दिन, पाँच दिन और मास पर्यन्त जिस प्रकार कम या अधिक होता है (उसे कहता हूँ) ॥५८॥

एक मास (आषाढ मास) का कल्प वास कर (वर्षावास के लिए योग्य स्थान न मिलने पर) उसी स्थान पर वर्षावास करना यह (आठ मास से) कम विहार है । कीचड़ बरसात अथवा नगरादि के घेरे के कारण भी वही वास करने से (आठ माह से) कम विहार है ॥५९॥

वासाखेत्तालंभे अद्धाणादीसु पत्तमहिगा तु ।
साहगवाघाएण व अप्पडिक्कमितुं जइ वयंति ॥६०॥ (देही)

पडिमापडिवन्नाणं एगाहं पंच होंतऽहालंदे ।
जिणसुद्धाणं मासो निक्कारणओ य थेराणं ॥६१॥ (विद्या)

ऊणाइरित्त मासा एवं थेराण अट्ठ णायव्वा ।
इयरे अट्ठ विहरिउं णियमा चत्तारि अच्छन्ति ॥६२॥ (देही)

आसाढपुण्णिमाए वासावासं तु होति गंतव्वं ।
मग्गसिरबहुलदसमीउ जाव एक्कम्मि खेत्तम्मि ॥६३॥ (विद्या)

वर्षाक्षेत्रालब्धौ अध्वादिषु प्राप्तमधिकाः तु ।
साधकव्याघातेन वा, अप्रतिक्रम्य यदि व्रजन्ति ॥६०॥

प्रतिमाप्रतिपन्नानां एकाहः पञ्चाहानि यथालन्दे ।
जिनशुद्धानां मासः निष्कारणिकश्च स्थविराणाम् ॥६१॥

ऊनातिरिक्तमासा एवं स्थविराणामष्टौ ज्ञातव्याः ।
इतरे अष्टौ विहृत्य नियमेन चत्वारि आसते ॥६२॥

आषाढपूर्णिमायां वर्षावासे तु भवति गन्तव्यम् ।
मार्गशीर्षबहुलदशम्याः यावद् एकस्मिन् क्षेत्रे ॥६३॥

चातुर्मास क्षेत्र प्राप्त न होने पर, मार्ग आदि में ही अधिक दिन प्राप्त (व्यतीत) होने पर एवं सिद्धि में बाधक (नक्षत्र) होने से यदि प्रतिक्रमण न करने का निर्देश हो तो आठ माह से अधिक विहार होता है ॥६०॥

प्रतिमाधारी मुनि एक अहोरात्रि, यथालन्दिक मुनि पाँच अहोरात्रि, जिनकल्पी और स्थविरकल्पी साधु एक मास निष्कारण (सामान्य स्थिति में) एक क्षेत्र मे न रहें अर्थात् कारणवश उक्त अवधि घट बढ़ सकती है ॥६१॥

उक्तरीति से स्थविरकल्पियों का आठ माह से कम और अधिक विहार जानना चाहिए । इन (स्थविरकल्पियों) से भिन्न (प्रतिमाप्रतिपन्न, यथालन्दिक) आठ महीने विहार कर नियमपूर्वक चार महीने वर्षावास करते हैं ॥६२॥

आषाढ़ पूर्णिमा तक वर्षावास के लिए चला जाना चाहिए और मार्गशीर्ष के कृष्णपक्ष की दशमी तिथि तक एक क्षेत्र में निवास करना चाहिए ॥६३॥

बाहिं ठित्तति वसभेहिं खेत्तं गाहेत्तु वासपाओग्गं ।
कप्पं कहेत्तु ठवणा सावणऽसुद्धस्स पंचाहे ॥६४॥ (क्षमा)

एत्थ तु अणभिग्गहिअं वीसतिरायं सवीसतीमासं ।
तेण परमभिग्गहिअं गिहिणातं कत्तिओ जाव ॥६५॥ (धात्री)

असिवाइकारणेहिं अहवा वासं ण सुट्ठु आरद्धं ।
अहिवड्ढियम्मि वीसा इयरेसु सवीसई मासो ॥६६॥ (गौरी)

एत्थ तु पणगं पणगं कारणियं जा सवीसतीमासो ।
सुद्धदसमीट्ठियाण व आसाढीपुण्णिमोसरणं ॥६७॥ (धात्री)

बहिःस्थिताः ऋषभैः क्षेत्रं ग्राहयित्वा वासप्रायोग्यम् ।
कल्पं कथयित्वा स्थापना श्रावणाशुद्धस्य पञ्चमेऽहनि ॥६४॥

अत्र त्वनभिगृहीतं विंशतिरात्रं सविंशतिमासम् ।
तेन परमभिगृहीतं गृहिज्ञातं कार्त्तिकं यावत् ॥६५॥

अशिवादिकारणैरथवा वर्षणं न सुष्ठ्वारब्धम् ।
अभिवर्द्धिते विंशतयः इतरेषु सविंशतिर्मासः ॥६६॥

अत्र तु पञ्चकं पञ्चकं कारणिकं यावत् सविंशतिर्मासः ।
शुद्धदशमीस्थितानां च आषाढीपूर्णिमावसरणम् ॥६७॥

(वर्षावास क्षेत्र से) बाहर (नियत स्थान पर) स्थित श्रेष्ठ साधुओं को वर्षावास योग्य क्षेत्र (स्थान) ग्रहण कर, कल्प (वर्षावास) की घोषणा कर श्रावण–कृष्ण पक्ष पञ्चमी से वर्षावास की स्थापना करनी चाहिए ॥६४॥

(चातुर्मास हेतु नियत क्षेत्र के बाहर स्थित होने पर गृहस्थों द्वारा पूछे जाने पर कि, 'आर्य ! यहाँ वर्षावास करेंगे ?' साधु को 'अभी निश्चय नहीं किया है,' ऐसा उत्तर देना चाहिए), यदि अभिवर्द्धित वर्ष है, तो आषाढ़ पूर्णिमा के पश्चात् बीस दिन तक और (यदि चन्द्रवर्ष है, तो) पचास दिन तक इसके पश्चात्- 'निश्चय कर लिया है, ग्रहण कर लिया है–कार्तिक मास पर्यन्त ।' (ऐसा उत्तर देना चाहिए) ॥६५॥

कदाचित् अकल्याणकारी कारणों (के उत्पन्न होने से साधु के विहार करने पर) अथवा अच्छी वर्षा प्रारम्भ न होने पर (साधु के वर्षावास की स्वीकृति से अच्छी वर्षा का अनुमान लगाकर तदनुसार कृषिकार्य में प्रवृत्त कृषकादि उसके प्रति कटु होंगे इस कारण गृहस्थ द्वारा वर्षावास के विषय में पूछने पर) 'अभिवर्द्धित संवत्सर में आषाढ़ पूर्णिमा से २० दिन और सामान्य संवत्सर में एक मास और बीस दिन अर्थात् ५० दिन तक ।' (ऐसा अनिश्चयात्मक उत्तर देना चाहिए) ॥६६॥

आषाढ़ पूर्णिमा को नियत स्थान पर प्रवेश कर (वहाँ रहते हुए वर्षावास के योग्य क्षेत्र न मिलने की स्थिति में योग्य क्षेत्र प्राप्त करने हेतु) पाँच-पाँच दिन करके पचास दिन तक (योग्य क्षेत्र प्राप्त होने की) प्रतीक्षा करना चाहिए। और आषाढ शुक्ला दशमी को जहाँ प्रवेश किया है (वहाँ भी यही नियम है) ॥६७॥

इय सत्तरी जहण्णा असीति णउती दसुत्तरसयं च ।
जइ वासति मग्गसिरे दसराया तिण्णि उक्कोसा ॥६८॥ (चूर्णा)

काऊण मासकप्पं तत्थेव ठियाणऽतीए मग्गसीरे ।
सालंबणाण छम्मासितो तु जेट्ठोग्गहो होति ॥६९॥ (देही)

जइ अत्थि पयविहारो चउपडिवयम्मि होइ गंतव्वं ।
अहवावि अणिंतस्सा आरोवण पुव्वनिद्दिट्ठा ॥७०॥ (चूर्णा)

काईयभूमी संथारए य संसत्त दुल्लहे भिक्खे ।
एएहिं कारणेहिं अपत्ते होइ निग्गमणं ॥७१॥ (विद्या)

इति सप्ततिर्जघन्याऽशीतिर्नवतिर्दशोत्तरशतं च ।
यदि वर्षति मार्गशीर्षे दशरात्रयः तिस्त्र उत्कृष्टाः ॥६८॥

कृत्वा मासकल्पं तत्रैव स्थितानामतीते मार्गशीर्षे ।
सालम्बनानां षाण्मासिकस्तु ज्येष्ठावग्रहो भवति ॥६९॥

यद्यस्ति पदविहारः चतुःप्रतिपत्सु भवति गन्तव्यम् ।
अथवाऽपि अगच्छतः आरोपणा पूर्वनिर्दिष्टा ॥७०॥

कायिकभूमिः संस्तारकश्च संसक्तः दुर्लभा भिक्षा ।
एतैः कारणैरप्राप्ते भवति निर्गमनम् ॥७१॥

इस प्रकार सत्तर दिन का वर्षावास जघन्य, अस्सी, नब्बे और एक सौ दस दिन, तथा यदि मार्गशीर्ष में (अनवरत) वर्षा हो तो तीन दसरात्रि (तीस दिन) तक (सामान्य चार मास के अतिरिक्त) और अधिकतम वर्षावास कर सकता है ॥६८॥

जिस स्थान पर मासकल्प किया हो उसी स्थान पर वर्षावास करते हुए कारणपूर्वक मार्गशीर्ष भी व्यतीत हो जाने पर छः मास का ज्येष्ठावग्रह या वर्षावास होता है ॥६९॥

यदि (वर्षावास कर रहे साधु को चातुर्मास के मध्य) सकारण पदविहार करना पड़े तो चार पर्वतिथियों को ही प्रस्थान करना चाहिए अथवा न जाने का भी (कुछ ने) पहले निर्देश किया है ॥७०॥

जीवों से युक्त भूमि, संस्तारक भी जीवों से युक्त हो, भिक्षा दुर्लभ हो, इन कारणों से चातुर्मास पूर्ण न होने पर भी विहार करना चाहिए ॥७१॥

राया सप्पे कुंथू अगणि गिलाणे य थंडिलस्सऽसति ।
एएहिं कारणेहिं अपत्ते होइ निग्गमणं ॥७२॥ (क्षमा)

वासं व न ओरमई पंथा वा दुग्गमा सचिक्खल्ला ।
एएहिं कारणेहिं (उ) अइक्कंते होइ निग्गमणं ॥७३॥ (उद्गाथा)

असिवे ओमोयरिए (उ) राया दुट्ठे भए व गेलण्णे ।
एएहिं कारणेहिं अइकंते होति निग्गमणं ॥७४॥ (क्षमा)

उभओवि अद्धजोयण सअद्धकोसं च तं हवति खेत्तं ।
होइ सकोसं जोयण, मोत्तूण कारणज्जाए ॥७५॥ (गौरी)

राजा सर्पः कुन्थुरग्निः ग्लाने च स्थण्डिलस्यासति ।
एभिः कारणैरप्राप्ते भवति निर्गमनम् ॥७२॥

वर्षा वा नोपरमति पन्थानो वा दुर्गमाः सकर्दमाः ।
एतैः कारणैरतिक्रान्ते भवति निर्गमनम् ॥७३॥

अशिवेऽवमौदर्ये राजद्विष्टे भये ग्लानत्वे वा ।
एतैः कारणैरतिक्रान्ते भवति निर्गमनम् ॥७४॥

उभयतोऽपि अर्द्धयोजनं सार्द्धक्रोशं च तद् भवति क्षेत्रम् ।
भवति सक्रोशं योजनं, मुक्त्वा कारणजातम् ॥७५॥

राजा, सर्प, कुन्थु (त्रीन्द्रिय जीव-विशेष), अग्नि से भय, रुग्ण होने और स्थण्डिल (उच्चार-प्रस्रवण के योग्य भूमि) न रहने—इन कारणों से चातुर्मास पूर्ण न होने पर भी विहार करना चाहिए ॥७२॥

अथवा वर्षा न रुके, मार्ग दुर्गम और पङ्कयुक्त हो, इन कारणों से चातुर्मास व्यतीत होने के पश्चात् विहार करना चाहिए ॥७३॥

अमङ्गल होने पर, अवमौदर्य व्रत धारण करने पर, राजा के दुष्ट (होने) पर, भय (उपस्थित होने) पर तथा रोग होने पर—इन कारणों से चातुर्मास व्यतीत हो जाने के कुछ काल बाद भी विहार होता है ॥७४॥

चारों तरफ ढाई कोस (की निर्धारित सीमा तक क्षेत्र होता है, आगमन और प्रत्यागमन के संयोग से) पाँच कोस क्षेत्र होता है । कारण होने पर क्षेत्र की मर्यादा से मुक्त होकर भी गमन हो सकता है ॥७५॥

उड्ढमहे तिरियम्मि य, सकोसयं सव्वतो हवति खेत्तं ।
इंदपयमाइएसुं छद्दिसि इयरेसु चउ पंच ॥७६॥ (छाया)

तिण्णि दुवे एक्का वा वाघाएणं दिसा हवइ खेत्तं ।
उज्जाणाओ परेणं छिण्णमंडबं तु अखेत्तं ॥७७॥ (विद्या)

दगघट्ट तिण्णि सत्त व उडुवासासु ण हणंति तं खेत्तं ।
चउरद्धाति हणंति जंघद्धे कोवि उ परेणं ॥७८॥ (धात्री)

दव्वट्ठवणाऽऽहारे १ विगई २ संथार ३ मत्तए ४ लोए ५ ।
सच्चित्ते ६ अचित्ते ७ (य) वोसिरणं गहण-धरणाइं ॥७९॥ (देही)

ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च, सक्रोशकं सर्वतो भवति क्षेत्रम् ।
इन्द्रपदादिकेषु षड्दिक्षु इतरेषु चतस्रः पञ्च ॥७६॥

तिस्रो द्वे एका वा व्याघातेन दिशा भवति क्षेत्रम् ।
उद्यानात् परेण छिन्नमडम्बं त्वक्षेत्रम् ॥७७॥

दकघट्टानि त्रीणि सप्त च ऋतुवासयोः न घ्नन्ति तत्क्षेत्रम् ।
चतुरष्टौ इति घ्नन्ति जङ्घार्द्धं कोऽपि तु परेण ॥७८॥

द्रव्यस्थापनाऽऽहारे विकृतौ संस्तारकमात्रकलोचेषु ।
सचित्ते अचित्ते व्युत्सर्जनग्रहणधारणानि ॥७९॥

ऊपर-नीचे और तिरछे एक कोस तक चारों ओर क्षेत्र होता है । (पर्वत पर ऊपर और नीचे भी ग्राम होता है अतः पर्वत पर मध्य स्थित ग्राम की दृष्टि से) छः दिशायें होती है । अन्य स्थितियों में क्षेत्र के चार, पाँच, तीन, दो अथवा एक दिशा व्याघात से होती है । उपवन आदि के परे जिन ग्रामों और नगरों के सभी दिशाओं में ग्राम और नगर नहीं होते हैं, ये छिन्नमडंबा अक्षेत्र होते हैं ॥७६-७७॥

जहाँ जङ्घे की आधी ऊँचाई तक जल हो, वहाँ ऋतुकाल में तीन बार (आना-जाना ६ बार और वर्षाकाल में ७ बार (आना-जाना १४ बार) गमन से क्षेत्र का उपघात नहीं होता है । (जबकि ऋतुकाल में) ४ बार (आना-जाना ८ बार और वर्षाकाल में) आठ बार (आना-जाना १६ बार) गमन से क्षेत्र का उपघात होता है । जहाँ जाँघ से ऊपर जल है, वहाँ (ऋतुकाल और वर्षाकाल में) एक बार भी गमन से कोई क्षेत्रमर्यादा का अतिक्रमण करता है ॥७८॥

द्रव्यस्थापना में आहार, विकृति, संस्तारक, मात्रक, लोच, सचित्त और अचित्त का परित्याग, ग्रहण, धारण आदि आते हैं ॥७९॥

पुव्वाहारोसवण जोगविवड्ढी य सत्तिउग्गहणं ।
संचइय असंचइए दव्वविवड्ढी पसत्था उ ॥८०॥ (धात्री)

विगतिं विगतीभीओ विगइगयं जो उ भुंजए भिक्खू ।
विगई विगयसभावं (उ) विगती विगतिं बला नेइ ॥८१॥ (छाया)

पसत्थविगईगहणं गरहियविगतिग्गहो य कज्जम्मि ।
गरहा लाभपमाणे पच्चय पावप्पडीघाओ ॥८२॥ (चूर्णा)

कारणओ(कारणे) उडुगहिते उज्झिऊण गेण्हंति अण्णपरिसाडी ।
दाउं गुरुस्स तिण्णि उ सेसा गेण्हंति एक्केक्कं ॥८३॥ (देही)

पूर्वाहारोत्सर्जनं योगविवृद्धिश्च शक्तितो ग्रहणम् ।
सञ्चितासञ्चिते द्रव्यविवृद्धिः प्रशस्ता तु ॥८०॥

विकृतिं विकृतिभीतः (विगतिभीतः) विकृतिगतं यत्तु भुङ्क्ते भिक्षुः ।
विकृतिः विकृतस्वभावा विकृतिर्विकृतिं बलान्नयति ॥८१॥

प्रशस्तविकृतिग्रहणं गर्हितविकृतिग्रहश्च कार्ये ।
गर्हा लाभप्रमाणे प्रत्ययः पापप्रतिघातः ॥८२॥

कारणत ऋतुगृहीते उज्झित्वा गृह्णन्ति अन्यापरिशाटीन् ।
दत्त्वा गुरोः त्रीन् शेषाः गृह्णन्ति एकैकम् ॥८३॥

पूर्व अर्थात् ऋतुकाल—शीत और ग्रीष्म काल—में ग्रहण किये गये आहार का यथाशक्ति सामर्थ्य बढ़ाकर त्याग करना चाहिए, (विकृति) स्थापना—सञ्चयिक और असञ्चयिक दो प्रकार की है, प्रशस्त कारणों से गृहीत द्रव्य विवृद्धिकृत है ॥८०॥

विविधगति (संसार) से भयभीत या विगति अर्थात् कुगति से भयभीत जो श्रमण विकृति (विकार) जनित वस्तु और विकृति को प्राप्त भोजन-पान आदि ग्रहण करता है, उसे विकार स्वभाव वाली विकृति बलपूर्वक विकृति (असंयम या दुर्गति) की ओर ले जाती है ।

प्रशस्तविकृति ग्रहण और अप्रशस्त विकृति ग्रहण, कार्य या प्रयोजन वश करना चाहिए। अप्रशस्त विकृति के ग्रहण की मात्रा का निश्चय (जितने प्रमाण में बाल, वृद्ध या ग्लान के लिए आवश्यक हो) उससे करना चाहिए। कारण पूर्ण होने पर अप्रशस्त पाप की आलोचना करनी चाहिए ॥८२॥

कारणवश ऋतुकाल (शीत एवं ग्रीष्म काल) में ग्रहण किये गये संस्तारक को त्यागकर अन्य को ग्रहण करते हैं । दूसरे साधुओं को प्रदान करने के लिए गुरु तीन धारण करते हैं, जबकि शेष एक-एक ग्रहण करते हैं ॥८३॥

उच्चार-पासवण-खेलमत्तए (उ) तिण्णि तिण्णि गेण्हंति ।
संजय-आएसट्ठा भुंजेज्जऽवसेस उज्झंति ॥८४॥ (देही)

धुवलोओ उ जिणाणं णिच्चं थेराण वासवासासु ।
असहू (तु) गिलाणस्स व, णातिक्कामेज्ज तं रयणिं ॥८५॥ (देही)

मोत्तुं पुराण-भावियसड्ढे संविग्ग सेसपडिसेहो ।
मा निद्दओ भविस्सइ भोयणमोए य उड्डाहो ॥८६॥ (देही)

इरिएसण-भासाणं मण-वयसा-काइए य दुच्चरिए ।
अहिगरणकसायाणं संवच्छरिए विओसवणं ॥८७॥ (छाया)

उच्चारप्रस्त्रवणश्लेष्ममात्रकानि त्रीणि त्रीणि गृह्णन्ति ।
संयमादेशार्थं भुञ्जीरन् अवशेषमुज्झन्ति ॥८४॥

ध्रुवलोचस्तु जिनानां नित्यं स्थविराणां वर्षावासेषु ।
असहुग्लानस्य च, नातिक्रामेत् तां रजनीम् ॥८५॥

मुक्त्वा पुराणभावितश्राद्धौ संविग्नं शेषप्रतिषेधः ।
मा निर्दयो भविष्यति भोजनमोचयोश्च उड्डाहः ॥८६॥

ईर्यैषणाभाषाणां मनोवचोभ्यां कायेन च दुश्चरितानाम् ।
अधिकरणकषायानां सांवत्सिरके व्युत्सर्जनम् ॥८७॥

प्रत्येक साधु मलोत्सर्ग, मूत्रोत्सर्ग और श्लेष्म के निमित्त तीन-तीन पात्र ग्रहण करते हैं । साधु (आचार्य की) आज्ञा होने पर (आहार) ग्रहण करते हैं, (वे) बचे हुए आहार का त्याग करते हैं ॥८४॥

जिनकल्पी साधुओं को नियमित लोच करना चाहिए, स्थविर-कल्पियों को चातुर्मास में नियमित लोच करना चाहिए । असमर्थ एवं ग्लान के लोच के लिए पर्युषणा की अन्तिम रात्रि का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए ॥८५॥

पुराने शिष्य (जिसको पूर्व में दीक्षा दी जा चुकी हो), श्रद्धायुक्त अन्तःकरणवाले श्रावक एवं मुमुक्षु को छोड़कर अन्य को चातुर्मास में (दीक्षा देने का) निषेध है । (वर्षाकाल में दीक्षा से) वह निर्दय न हो जाए तथा भोजनत्याग से श्रमणधर्म के प्रति दुःखाग्नि न दीप्त हो ॥८६॥

ईर्या, एषणा, भाषा (आदान-निक्षेप, परिष्ठापना इन पाँच समितियों) का मन, वचन और शरीर से पालन करना चाहिए । कुत्सित आचरण, पापकर्म और कषायों को संवत्सरी में उपशान्त करना चाहिए ॥८७॥

कामं तु सव्वकालं पंचसु समितीसु होइ जइयव्वं ।
वासासु अहीगारो बहुपाणा मेइणी जेणं ॥८८॥ (देही)

भासणे संपाइम(संपाति)वहो दुण्णेओ नेहछेओ(छेदु) तइयाए ।
इरियचरिमासु दोसु वि अपेहअपमज्जणे पाणा ॥८९॥ (धात्री)

मणवयणकायगुत्तो दुच्चरियाइं तु खिप्पमालोए ।
अहिगरणम्मि दुरूयग पज्जोए चेव दमए य ॥९०॥ (चूर्णा)

एगबइल्ला भंडी पासह तुब्भे य डज्झ खलहाणे ।
हरणे झामण जत्ता, भाणगमल्लेण घोसणया ॥९१॥ (गौरी)

कामं तु सर्वकालं पञ्चसु समितिषु भवति यतितव्यम् ।
वर्षासु अधिकारः बहुप्राणा मेदिनी येन ॥८८॥

भाषणे सम्पातिमवधो दुर्ज्ञेयः स्नेहछेदस्तृतीये ।
ईर्याचरिमयोर्द्वयोरपि अप्रेक्षाप्रमार्जने प्राणाः ॥८९॥

मनोवचनकायगुप्तः दुश्चरितानि तु क्षिप्रमालोचयेत् ।
अधिकरणे दुरूतकः प्रद्योतश्चैव द्रमकश्च ॥९०॥

एकबलीवर्दा गन्त्री पश्यत, यूयमपि दह्यमानखलधान्यान् ।
हरणे ध्यापनं (दहनं) भाणकमल्लेन घोषणका ॥९१॥

सभी श्रमणों को पाँच समितियों का सर्वदा यत्नपूर्वक आचरण करना चाहिए, पृथ्वी वर्षाऋतु में बहुत प्राणों की सत्ता वाली हो जाती है (इसलिए वर्षाऋतु में श्रमण को अत्यधिक यत्नपूर्वक संयम-पालन करना चाहिए) ॥८८॥

भाषण समिति से (युक्त न होने पर) उड़ने वाले दुर्ज्ञेय (जीवाणुओं) का वध, तृतीय (एषणा समिति से युक्त न होने पर) दुर्ज्ञेय अप्काय जीवों का वध, ईर्यासमिति और अन्तिम दो (आदान-निक्षेप और परिष्ठापना समिति से युक्त न होने पर) बिना देखे, प्रमार्जित किये आचरण करने पर जीवों का वध होता है ॥८९॥

जो कुत्सित आचरण है उनकी शीघ्र आलोचना मन, वचन और काय गुप्ति से करना चाहिए, पापजनक क्रिया या असंयमित आचरण में द्विरुक्तक, राजाप्रद्योत और द्रमक का दृष्टान्त (दिया जाता है) ॥९०॥

(द्विरुक्तक का कथन) ''देखो ! एक बैलवाली गाड़ी !'' (कुम्भकार का प्रत्युत्तर) ''तुम लोग भी जल रहे खलिहान (को देखो) ।'' (बैल) हरने पर प्रयत्न से (खलिहान) जला दिया, (ग्रामवासियों

अप्पिणह तं बइल्लं दुरूतग्ग(तग्गो) ! तस्स कुंभयारस्स ।
मा भे डहीहि गामं अन्नाणि वि सत्त वासाणि ॥९२॥ (देही)

चंपा कुमारनंदी पंचऽच्छर थेरनयण दुमऽवलए ।
विह पासणया सावग इंगिणि उववाय णंदिसरे ॥९३॥ (कान्ति)

बोहण पडिमा उदयण पभाव उप्पाय देवदत्ताते । (देवजत्ताते)
मरणुववाए तावस णयणं तह भीसणा समणा ॥९४॥ (कान्ति)

गंधारगिरी देवय पडिमा गुलिया गिलाण पडियरणं ।
पज्जोयहरण पुक्खर रण गहणा मेऽज्ज ओसवणा ॥९५॥ (महामाया)

अर्पयत तं बलीवर्दं, दुरूत्तक ! तस्मै कुम्भकाराय ।
मा भोः ! दह ग्रामम्, अन्यान्यपि सप्तवर्षाणि ॥९२॥

चम्पा कुमारनन्दी, पञ्चाप्सरःस्थविरनयनद्रुमवलयाः ।
विहगदर्शनके श्रावकः, इङ्गिनी उपपातः नन्दीश्वरे ॥९३॥

बोधनं प्रतिमा उदयनः प्रभावः उत्पातो देवदत्तायः ।
मरणोपपातौ तापसः नयनं तथा भीषणाः श्रमणाः ॥९४॥

गन्धारगिरिः दैवतं प्रतिमा गुलिका ग्लानप्रतिचरणम् ।
प्रद्योतहरणं पुष्कररणगहणानि मेऽद्य उत्सवः ॥९५॥

ने) उद्घोषक से घोषणा करवायी, ''हे द्विरुक्तक ! उस कुम्भकार को बैल दे दो ।'' (''हे कुम्भकार !) सात वर्ष तक हमारे ग्राम (के खलिहान) को जलाने के बाद पुनः मत जलाना !'' ॥९१-९२॥

चम्पा (नगरी में स्वर्णकार) कुमारनन्दी, पञ्चशैलद्वीप पर स्थविर द्वारा ले जाना, वटवृक्ष पर बसेरा, भारण्ड पक्षी के पैरों से स्वयं को बाँधकर पञ्चशैल पहुँचना, श्रावक नागिल (द्वारा मना करना), इङ्गिनीमरण (द्वारा शरीर-त्याग) (पञ्चशैल पर विद्युन्माली यक्ष रूप में) उत्पन्न, (पटह गले में बाँधकर बजाता हुआ) नन्दीश्वर गमन, (श्रावक नागिल द्वारा) बोध पाकर महावीर प्रतिमा निर्मित कराकर उपासना, राजा उदायन (के पास देवाधिदेव की प्रतिमा कराने का निवेदन) रानी प्रभावती के प्रहार से दासी देवदत्ता का वध, (प्रायश्चित्तवश) मरण के पश्चात् देवलोक में उत्पन्न, तपस्वी वेश में (राजा उदायन को उद्बोधन), अलौकिक फल के बहाने (जिनवर साधुओं के पास ले जाना), जैन श्रमण द्वारा उद्बोधन, गान्धार (जनपद से मुमुक्षु श्रावक का वैताढ्यगिरि (गमन एवं उपवास), देवता द्वारा (सन्तुष्ट हो) स्वर्ण प्रतिमा और गुलिकायें देना, (महावीर प्रतिमा की वन्दना हेतु आना), ग्लान–अस्वस्थ हो जाने पर (दासी द्वारा) परिचर्या (से प्रसन्न श्रावक द्वारा प्रदत्त गुटिका से दासी का रूपवती बनना व राजा प्रद्योत की

दासो दासीवतितो छत्तट्ठिय जो घरे य वत्थव्वो ।
आणं कोवेमाणो हंतव्वो बंधियव्वो य ॥९६॥ (बुद्धि)

खद्धाऽऽदाणियगेहे पायस दट्ठुण चेडरूवाइं ।
पियरोभासण खीरे जाइय लद्धे य तेणा उ ॥९७॥ (क्षमा)

पायसहरणं छेत्ता पच्चागय दमग असियए सीसं ।
भाउय सेणावति खिंसणा (खिंसणाहिं) सरणागतो जत्थ ॥९८॥ (चूर्णा)

वाओदएण राई णासइ कालेण सिगय पुढवीणं ।
णासइ उदगस्स सती, पव्वयराती उ जा सेलो ॥९९॥ (धात्री)

दासो दासीपतिकः छत्रस्थितको यः गृहे च वास्तव्यः ।
आज्ञां कोपमानः हन्तव्यः बन्धितव्यश्च ॥९६॥

ऋद्ध्यादानिकस्य गृहे, पायसं दृष्ट्वा चेटरूपाणि ।
पित्रवभाषणं क्षीरं याचितः राद्धे च स्तेनास्तु ॥९७॥

पायसहरणं क्षेत्रात् प्रत्यागतद्रमकोऽसिना शीर्षम् ।
भ्राता सेनापतिः खिंसना च शरणागतो यत्र ॥९८॥

वातोदकाभ्यां राजिर्नश्यति कालेन सिकतापृथ्वीनाम् ।
नश्यति उदके सति, पर्वतराजिस्तु यावत् शैलः ॥९९॥

कामना), प्रद्योत द्वारा (प्रतिमा सहित दासी) हरण, (उदायन और प्रद्योत के मध्य) भयङ्कर युद्ध, (पराजित प्रद्योत को बन्दी बनाना, पर्युषणा के दिन बन्दी राजा प्रद्योत द्वारा कहना) आज मेरा उपवास है, (बन्दी बनाते समय उसके मस्तक पर अङ्कित) दासीपति (के स्थान पर सुवर्णपट्ट बाँध देने से) पट्टबद्ध राजा हो गया, जिस प्रकार घर पर उपस्थित को क्षमा कर देता है, उसी प्रकार क्रोधित होकर हनन और बन्धन नहीं करना चाहिए ॥९३-९६॥

समृद्ध व्यक्ति के घर में क्षीरान्न देखकर नौकर रूप द्रमक के पुत्र द्वारा, पिता से क्षीरान्न खाने के लिए कहना, माँगने पर उस (पिता के द्वारा) प्राप्त किया गया । चोरों द्वारा क्षीरान्न हरण, (तृण-पुल आदि काटकर) वापस लौटा हुआ द्रमक (चोरों के सेनापति का) सिर काट लेता है । (सेनापति का) भाई सेनापति नियुक्त किया गया, (सेनापति की मृत्यु का प्रतिशोध न लेने पर आत्मीय जनों का) कुपित होना, (सेनापति द्वारा द्रमक को बाँधना, उससे पूछने पर कि उसे किस प्रकार मारा जाय द्रमक कहता है) जिस प्रकार शरणागत को (मारा जाता है) ॥९७-९८॥

बालू में (खींची गई) लकीर हवा और जल से नष्ट हो जाती है, पृथ्वी में (शरद् ऋतु में) पड़ी हुई दरार वर्षा होने पर नष्ट हो जाती है, परन्तु पर्वत में पड़ी हुई दरार शैल (की स्थिति) पर्यन्त बनी रहती है ॥९९॥

उदय सरिच्छा पक्खेणऽवेति चउमासिएण सिगयसमा ।
वरिसेण पुढविराई आमरण गती उ पडिलोमा ॥१००॥ (महामाया)

सेलट्ठि थंभ दारूय लया य वंसी य मिंढगोमुत्तं ।
अवलेहणीया किमिराग कद्दम कुसुंभय हलिद्दा ॥१०१॥ (धात्री)
(अवलेहणि किमिकद्दम कुसुंभ रागे हलिद्दा य)

एमेव थंभकेयण, वत्थेसु परूवणा गईओ य ।
मरूयऽच्चंकारिय पंडुरज्ज मंगू य आहरणा ॥१०२॥ (गौरी)

उदकसदृक्षाः पक्षेणापैति चातुर्मासिकेन सिकतासमाः ।
वर्षेण पृथिवीराजिः आमरणं गतयस्तु प्रतिलोमा ॥१००॥

शैलाऽस्थिस्तम्भदारुकलताश्च वंशश्च मेण्ढः गोमूत्रम् ॥१०१॥

(अवलेखनी-कृतिकर्दम-कुसुम्भरागश्च हरिद्रा च ।)

एवमेव स्तम्भकेतन वस्त्रेषु प्ररूपणा गतयश्च ।
मरुत् अत्यहङ्कारिता पाण्डुरार्या मङ्कुश्च आहरणाः ॥१०२॥

जो क्रोध जल में खींची रेखा सदृश एक पक्ष में नष्ट हो जाता है, बालू (रेत में) में (खींची रेखा) सदृश चार मास में उपशान्त हो जाता है, पृथ्वी में पड़ी दरार के समान एक वर्ष में समाप्त हो जाता है । (जिस प्रकार पर्वत में पड़ी रेखा कभी नहीं मिटती उसी प्रकार जीवन पर्यन्त यह क्रोध नहीं) शान्त होता है । गति की दृष्टि से इनका सङ्क्रमण प्रतिलोम अर्थात् विपर्यय क्रम से होना चाहिए । (कषाय प्रथम-गतिचतुर्थ, संज्वलन कषायी-देवगति, प्रत्याख्यानकषायी-मनुष्य गति, अप्रत्याख्यान-कषायी तिर्यञ्चगति और अनन्तानुबन्धी कषायी-नरकगति को प्राप्त होता है) ॥१००॥

मान पर्वतस्तम्भ, अस्थिस्तम्भ, काष्ठस्तम्भ और लता समान होता है । माया कषाय जैसे बाँस की जड़ (जिसका टेढ़ापन दूर होना अतिदुष्कर), भेड़े की सींग-दुष्कर, गोमूत्र-सरल और बाँस का छिलका अतिसरल है । लोभकषाय जैसे कृमिराग सदृश लोभ (दूर होना असम्भव), कर्दमराग सदृश लोभ (दूर होना दुष्कर), पुष्पराग सदृश लोभ (दूर होना सरल) जैसे हल्दी का रङ्ग दूर होना (अति सरल) ॥१०१॥

इसी प्रकार स्तम्भ, वक्रता और वस्त्रों में गतियों की प्ररूपणा की गई है और कषायों के निरूपण में मरुत्, अत्यहङ्कारिणी भट्टा, पाण्डुरार्या और मङ्कु का दृष्टान्त दिया गया है ॥१०२॥

अवहंत गोण मरूए चउण्ह वप्पाण उक्करो उवरिं ।
छोढुं मएसुंवट्टाऽतिकोवे ण देमो पच्छित्तं ॥१०३॥ (देही)

वणिधूयाऽच्चंकारिय भट्टा अट्ठसुयमग्गओ जाया ।
वरगपडिसेह सचिवे, अणुयत्तीहि पयाणं च ॥१०४॥ (धात्री)

णिवचिंत विगालपडिच्छणा य दारं न देमि निवकहणा ।
खिंसा णिसि निग्गमणं चोरा सेणावई गहणं ॥१०५॥ (चूर्णा)

नेच्छइ जलूगवेज्जगगहणं तम्मि य अणिच्छमाणम्मि ।
गाहावइ जलूगा धण भाउग कहण मोयणया ॥१०६॥ (कान्ति)

अवधीत् गां मरुत् चतुष्कवप्राणां उत्कर उपरि ।
क्षिप्त्वा मृते उपस्थितोऽतिकोपे न दद्यः प्रायश्चित्तम् ॥१०३॥

वणिग्दुहिताऽत्यहङ्कारिता भट्टा अष्टसुताग्रतः जाता ।
वरकप्रतिषेधः सचिवः अनुवृत्तिभिः प्रदानं च ॥१०४॥

नृपचिन्ता विकालप्रतीक्षणं च द्वारं न ददामि नृपकथनात् ।
खिंसा (निन्दा) निशि निर्गमनं चौराः सेनापतिः ग्रहणम् ॥१०५॥

नेच्छति जलौका वैद्यकग्रहणं तस्मिन् च अनीच्छन्ती तु ।
ग्राहयति जलौका धन(जन)भ्रातृककथनमोचनके ॥१०६॥

मरुत् ने बैल का वध किया, चार खेतों की मिट्टी के ढेर से मारने पर वह मर गया, उसके मर जाने पर भी वह अत्यधिक क्रोध में स्थित रहा, (प्रायश्चित्त माँगने पर) प्रायश्चित्त नहीं देगें—(ऐसा कहा गया) ॥१०३॥

आठ पुत्रों के पश्चात् उत्पन्न हुई अत्यहङ्कारिणी वणिक्पुत्री भट्टा के वरों को (उद्दण्डता करने पर भी भर्त्सना न करने वाले को देने की इच्छा वाले पिता द्वारा) अस्वीकार कर दिया गया । अमात्य द्वारा (शर्त) स्वीकार करने पर भट्टा प्रदत्त, राज्यकार्य के कारण (अमात्य का) कुसमय घर लौटना, भट्टा द्वारा प्रतीक्षा, (भट्टा के द्वार खोलने से मना करने पर समय से आना), राजाज्ञा से अमात्य के लौटने में विलम्ब, (द्वार न खोलने पर सचिव द्वारा भर्त्सना), रुष्ट भट्टा का रात्रि में ही घर से निकल जाना, चोरों द्वारा चोर सेनापति (के पास ले जाना), सेनापति द्वारा पत्नी बनाने की इच्छा, भट्टा का न चाहना, सेनापति द्वारा जलूक वैद्य को विक्रय, उसको भी न चाहना, (जलूक वैद्य जलूकों को) पकड़वाता था । धन देकर भट्टा के भाई द्वारा उसे मुक्त किया गया । उसके घर में सैंकड़ों प्रकार के भैषज तेल थे, साधु द्वारा माँगे जाने पर (दासी को आदेश), दासी द्वारा तीन बार पात्र तोड़ देने

सयगुणसहस्सपागं, वणभेसज्जं वतीसु जायणता ।
तिक्खुत्त दासीभिंदण ण य कोवो सयं पदाणं च ॥१०७॥ (चूर्णा)

पासत्थि पंडुरज्जा परिण्ण गुरुमूल णाय अभिओगा ।
पुच्छति पडिक्कमणे, पुव्वब्भासा चउत्थम्मि ॥१०८॥ (गौरी)

अपडिक्कम सोहम्मे अभिओगा देवि सक्कओसरणं ।
हत्थिणि वायणिसग्गो गोतमपुच्छा य वागरणं ॥१०९॥ (धात्री)

महूरा मंगू आगम बहुसुय वेरग्ग सड्ढपूया य ।
सातादिलोभ णितिए, मरणे जीहा य णिद्धमणे ॥११०॥ (धात्री)

शतगुणसहस्त्रपाकं व्रणभैषज्यं यतेर्याचना ।
त्रिःकृत्वः दासीभेदनं न च कोपः स्वयं प्रदानं च ॥१०७॥

पार्श्वस्था पाण्डुरार्या परिज्ञा गुरुमूलं ज्ञाताभियोगा ।
पृच्छत्रि प्रतिक्रमणे पूर्वाभ्यासाच्चतुर्थे ॥१०८॥

अप्रतिक्रम्य सौधर्मे अभियोगा देवी शक्रावसरणम् ।
हस्तिनी वातनिसर्गो गौतमपृच्छा च व्याकरणम् ॥१०९॥

मथुरायां मङ्गुः आगमबहुश्रुतः वैराग्यं श्राद्धपूजा च ।
सातादिलोभः नित्यः, मरणे जिह्वया निर्धमनम् ॥११०॥

पर भी उसका कुपित न होना, बल्कि स्वयं प्रदान करना ॥१०४-१०७॥

शिथिलाचारिणी पाण्डुरार्या (सदा श्वेतवस्त्रधारिणी होने से प्रदत्त नाम) को उसके माँगने पर गुरु द्वारा भक्त प्रत्याख्यान दिया गया । (विद्यामन्त्र के बल से पाण्डुरार्या के आह्वान करने से लोगों के आने पर) गुरु द्वारा प्रतिक्रमण के समय तीन बार कारण पूछने पर आह्वान की बात स्वीकार करती है, परन्तु चौथी बार पूछने पर कहती है कि पहले के अभ्यास के कारण आते हैं । प्रतिक्रमण न करने के कारण समय आने पर पाण्डुरार्या सौधर्मकल्प में ऐरावत की अग्रमहिषी हुई । समवसरण में भगवान् के आगे स्थित होकर उसके उच्च स्वर करने पर, गौतम द्वारा पूछने पर (भगवान् महावीर द्वारा इस कथा का) व्याख्यान किया जाता है ॥१०८-१०९॥

आर्यमङ्गु (विहार करते हुए) मथुरा गये, आगम बहुश्रुत एवं वैराग्ययुक्त होने से लोग श्रद्धा से पूजा करते थे, सातादि लोभ के कारण (वे विहार नहीं करते थे), नियमतः (शेष साधु विहार किये), श्रमणाचार की विराधना के कारण वे मरकर (व्यन्तर हुए, साधुओं के उस प्रदेश से निर्गमन करने पर यक्ष प्रतिमा में प्रविष्ट होकर) जिह्वादि निकालकर (अपने यक्ष होने का वृत्तान्त बताकर लोभ कषाय न करने का उपदेश देते थे) ॥११०॥

अब्भुवगत गतवेरे णाउं गिहिणो वि मा हु अहिगरणं ।
कुज्जा हु कसाए वा अविगडितफलं च सिं सोउं ॥१११॥ (छाया)

पच्छित्ते बहुपाणो कालो बलितो चिरं तु ठायव्वं ।
सज्झाय-संजमतवे धणियं अप्पा णिओतव्वो ॥११२॥ (क्षमा)

पुरिमचरिमाण कप्पो मंगल्लं (तु मंगलं) वद्धमाणतित्थंमि ।
इह परिकहिया जिण-गणहराइथेरावलिचरित्तं ॥११३॥ (छाया)

सुत्ते जहा निबद्धं वग्घारिय भत्त-पाण अग्गहणे ।
णाणट्ठि तवस्सी अणहियासि वग्घारिए गहणं ॥११४॥ (गौरी)

अभ्युपगतगतवैरान्, ज्ञात्वा गृहिणोऽपि मा खलु अधिकरणम् ।
कुर्यात् खलु कषाये वा अविगणितफलं चैषां श्रुत्वा ॥१११॥

प्रायश्चित्तं बहुप्राणः कालः बलितः चिरं तु (न) स्थातव्यम् ।
स्वाध्यायसंयमतपःसु अत्यर्थम् आत्मा नियोक्तव्यः ॥११२॥

पूर्वचरमयोः कल्पः माङ्गल्यं वर्धमानतीर्थे ।
इह परिकथिता जिनगणधरादिस्थविरावलिचरित्रम् ॥११३॥

सूत्रे यथानिबद्धं प्रलम्बितभक्तपानाग्रहणे ।
ज्ञानार्थी तपस्वी अनध्यासी प्रलम्बिते ग्रहणम् ॥११४॥

कषाय-दोषों को जानकर, वैर त्यागकर, गृहस्थों के प्रति भी अधिकरण नहीं करना चाहिए अथवा कषायों के परिणाम का विचार किये बिना कषाय भी नहीं करना चाहिए ॥१११॥

(ऋतुबद्धकाल के आठ महीनें में प्रायश्चित्त न कर पाने के कारण सञ्चित) प्रायश्चित्त के लिए, वर्षाऋतु में पृथ्वी के बहुप्राणों वाली होने के कारण तथा प्रायश्चित्त ग्रहण करने की दृष्टि से अनुकूल काल होने के कारण, (एक स्थान पर) दीर्घकाल तक वास करना चाहिए । आत्मा को सद्ध्यान, संयम और तप में भलीभाँति योजित करना चाहिए ॥११२॥

प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के समय में कल्प अर्थात् वर्षावास अवश्य होता है, (मध्य के तीर्थंकरों के समय वर्षावास विकल्प से होता है), कल्याण के लिए वर्धमान तीर्थ में जिनों का चरित्र और गणधरों की स्थविरावली वर्णित है ॥११३॥

जिस प्रकार कल्पसूत्र में अनवरत वर्षा होने पर भक्त-पान का अग्रहण वर्णित है, ज्ञानार्थी, तपस्वी और (भूख सहन करने में) असमर्थ को (अनवरत वर्षा में) भिक्षा ग्रहण का कथन है ॥११४॥

संजमखेत्तचुयाणं णाणट्ठि-तवस्सि-अणहियासाणं ।
आसज्ज भिक्खकालं, उत्तरकरणेण जतियव्वं ॥११५॥ (धात्री)

उण्णियवासाकप्पो लाउयपायं च लब्भए जत्थ ।
सज्झाएसणसोही वरिसति काले य तं खित्तं ॥११६॥ (क्षमा)

पुव्वाहीयं नासइ, नवं च छातो अपच्चलो घेत्तुं ।
खमगस्स य पारणए वरिसति असहू व बालाई ॥११७॥ (धात्री)

वाले सुत्ते सुई कुडसीसग छत्तए अपच्छिमए ।
णाणट्ठि तवस्सी अणहियासि अह उत्तरविसेसो ॥११८॥ (धात्री)

संयमक्षेत्रच्युतानां ज्ञानार्थि-तपस्वि-अनध्यासिकानाम् ।
आसाद्य भिक्षाकालं उत्तरकरणेन यतितव्यम् ॥११५॥

और्णिकं वर्षाकल्पं अलाबूपात्रं च लभ्यते यत्र ।
स्वाध्यायैषणाशुद्धिः वर्षति काले च तत् क्षेत्रम् ॥११६॥

पूर्वाधीतं नश्यति, नवं च बुभुक्षितः अप्रत्यलः ग्रहीतुम् ।
क्षपकस्य च पारणकं वर्षति असहश्च बालादिः ॥११७॥

वालः सौत्रं सूचिः कुटशीर्षकछत्रकोऽपश्चिमकः ।
ज्ञानार्थी तपस्वी अनध्यासी अथ उत्तरविशेषः ॥११८॥

संयम क्षेत्र का त्याग किये हुए, ज्ञानार्थी, तपस्वी और (भूख को) सहन न कर सकने वाले साधु को (निरन्तर वर्षा होते रहने पर) भिक्षाकाल आने पर हाथ से ढ़ककर भिक्षा माँगनी चाहिए ॥११५॥

जहाँ ऊनी वस्त्र, तुम्बीपात्र आदि प्राप्त होता है, स्वाध्याय एवं भिक्षा होती है और समय पर वर्षा होती है, वह क्षेत्र होता है ॥११६॥

क्षुधा को सहन न कर सकने वाले का पूर्व में अध्ययन किया नष्ट हो जाता है, वह नये विषय को ग्रहण करने में भी असमर्थ हो जाता है । तपस्वी व्रत के उपरान्त पारणा करने वाला तपस्वी बालादि वर्षा होने पर भूख को सहने में असमर्थ है ॥११७॥

(यदि ऊन निर्मित वस्त्र है तो उससे सिर ढ़ककर भ्रमण करते हैं । नहीं तो) केश निर्मित, सूत्र निर्मित, ताड़पत्र, बाँस की बनी हुई सिरत्राण और अन्ततः छत्र से (सिर ढ़ककर) भ्रमण करते हैं। ज्ञानार्थी, तपस्वी और भूख न सहन करने वाले के लिए प्रधान और विशेष रूप से उत्तरकरण कहा गया है ॥११८॥

परिशिष्ट-२

कल्पनिर्युक्तिः- पाठान्तरसहित मूलपाठः[१]

५३. पज्जोसमणाए[१] अक्खराइं, होंति उ इमाइ गोण्णाइं ।
परियायववत्थवणा, पज्जोसमणा य पागइया ॥

५४. परिवसणा पज्जुसणा, पज्जोसमणा[२] य वासवासो य ।
पढमसमोसरणं ति य, ठवणा जेट्ठोग्गहेगट्ठा ॥

५५. ठवणाए निक्खेवो छक्को दव्वं च दव्वनिक्खेवे ।
'खेत्तं तु'[३] जम्मि खेत्ते, काले कालो जहिं जो उ[४] ॥

५६. ओदइयादीयाणं[५], भावाणं जा[६] जहिं भवे ठवणा ।
भावेण जेण य पुणो, ठविज्जए[७] भावठवणा तु[८] ॥

५७. सामित्ते करणम्मि य अहिगरणे चेव होंति छब्भेया ।
एगत्त-पुहत्तेहिं,[९] दव्वे खेत्तऽद्ध[१०] भावे य ॥

५८. कालो समयादीओ, पगयं समयम्मि[११] तं परूवेस्सं ।
निक्खमणे य पवेसे, पाउस-सरए य वोच्छामि ॥

५९. उणातिरित्तमासे, अट्ठ विहरिऊण गिम्ह-हेमंते ।

---

१. ०सवणाए (बी, निभा ३१३८) सर्वत्र ।
२. ०सवणा (निभा, ३१३९) ।
३. खेतम्मि (ला) ।
४. निभा ३१४० ।
५. उदइयाई (अ), उदइयाणं (ब) ।
६. जो (निभा) ।
७. ०वेज्जते (निभा, ठविज्जइ (ब) ।
८. निभा ३१४१ ।
९. पुहुत्तेहिं (अ) ।
१०. खेत्ते य (निभा ३१४२) ।
११. कालम्मि (निभा ३१४३) ।

---

१. संदर्भ-निर्युक्तिपञ्चक ।

एगाहं पंचाहं, मासं च जहासमाहीए[१] ॥

६०. काऊण मासकप्पं, तत्थेव उवागयाण ऊणा ते[२] ।
चिक्खल्ल[३] वास रोहेण, 'वावि तेण' [४]ट्ठिया ऊणा ॥

६१. वासाखेत्तालंभे, अद्धाणादीसु 'पत्तमहिगा तु'[५] ।
साधगवाघातेण[६] व, अपडिक्कमित्तु[७] जइ वयंति ॥

६२. पडिमापडिवन्नाणं,[८] एगाहं[९] पंच होंतऽहालंदे[१०] ।
जिण-सुद्धाणं मासो, निक्कारणतो य थेराणं ॥

६३. ऊणातिरित्तमासा, एवं थेराण अट्ठ[११] नायव्वा ।
'इतरे अट्ठ विहरिउं,'[१२] णियमा चत्तारि अच्छंति[१३] ॥

६४. आसाढपुण्णिमाए, वासावासम्मि[१४] होति ठातव्वं[१५] ।
मग्गसिरबहुलदसमीओ, जाव एक्कम्मि खेत्तम्मि ॥

६४।१. विज्जो ओसह निवयाहिवई पासंड भिक्ख सज्झाए ।
चिक्खल्ल[१६] पाणथंडिल्ल, वसही गोरसजणाउलो[१७] ॥

६५. 'बाहिं ठिता'[१८] वसभेहिं, खेत्तं गाहेत्तु वासपाओग्गं ।
कप्पं कहेत्तु ठवणा, सावणऽसुद्धस्स[१९] पंचाहे ॥

६६. एत्थं तु[१] अणभिग्गहियं, वीसतिराइं[२] सवीसती[३] मासं ।

---

१. निभा ३१४४ ।
२. उ (निभा ३१४५) ।
३. चिक्खिल्ल (ब) ।
४. वावि तीए (निभा), दोवि तेणं बी) ।
५. ०महिगातो (चू) ।
६. सावग० (ब) ।
७. अप्पडिकम्म तं (निभा ३१४६) ।
८. ०पडिवन्नगाणं (अ) ।
९. एगाहो (निभा ३१४७) ।
१०. हुंतिहालंदे (ब) ।
११. हुंति (ब) ।
१२. इतरेसु अट्ठ रियितूं (ब) ।
१३. निभा ३१४८ ।
१४. ०वासं तु (मु), ०वासासु (निभा ३१४९) ।
१५. अतिगमणं (बृभा ४२८०) ।
१६. चिक्खिल्ल (ब) ।
१७. प्रस्तुत गाथा चूर्णि में व्याख्यात नहीं है। किन्तु आदर्शो में प्राप्त है । निशीथ भाष्य में दशाश्रुतस्कन्ध के पज्जोसवणाकप्प की सभी निर्युक्ति-गाथाएँ उद्धृत है। चालू क्रम में यह गाथा निशीथ में भी नहीं मिलती है, तथा विषयानुसार प्रासंगिक भी नहीं है इसलिए हमने इसे निर्युक्तिगाथा के क्रम में नहीं जोड़ा है। आदर्शों में पूर्वार्ध चिक्खल्ल....है तथा उत्तरार्ध विज्जो... है । किन्तु छंद की दृष्टि से क्रमव्यत्यय होना चाहिए । (आ. श्री माणिक्यशेखर सू० के अवचूर्णि में इसकी व्याख्या की है।
१८. बाहिट्ठिता (निभा), वसहिट्ठिया (बी) ।
१९. सावणबहुलस्स (निभा ३१५०, बभा ४२८१) ।

तेण परमभिग्गहियं,[४] गिहिणातं कत्तिओ जाव ॥

६७. असिवादिकारणेहिं, अहवा[५] वासं न सुट्ठु आरद्धं ।
अहिवड्ढियम्मि वीसा, इयरेसु सवीसती मासो ॥

६८. एत्थ तु पणगं पणगं, कारणियं जा सवीसती मासो ।
सुद्धदसमीट्ठियाण[६] व, आसाढीपुण्णिमोसरणं[७] ॥

६९. 'इय सत्तरी'[८] जहण्णा, असीति नउती दसुत्तरसयं च ।
जइ वासति मग्गसिरे,[९] दस राया[१०] तिन्नि उक्कोसा[११] ॥

७०. काऊण मासकप्पं, तत्थेव 'ठियाणऽतीए मग्गसिरे'[१२] ।
सालंबणाण छम्मासितो तु जेट्ठोग्गहो होति[१३] ॥

७१. जदि[१४] अत्थि पदविहारो, 'चउपाडिवयम्मि होइ गंतव्वं[१५] ।
अहवा वि 'अणिंतस्सा, आरोवण'[१६] पुव्वनिद्दिट्ठा ॥

७२. काइयभूमी संथारए य संसत्त[१७] दुल्लहे भिक्खे ।
एतेहिं कारणेहिं, अप्पत्ते होति निग्गमणं[१८] ॥

७३. राया 'सप्पे कुंथू',[१९] अगणि-गिलाणे य थंडिलस्सऽसती ।
एतेहिं कारणेहिं, अप्पत्ते होति निग्गमणं ॥ दारं ॥

७४. वासं[१] व 'न उवरमती',[२] पंथा वा दुग्गमा सचिक्खिल्ला ।

---

१. य (ब, बृभा ४२८२) ।
२. ०रायं (मु, बृभा) ।
३. सवीसतिं (निभा ३१५१), सवीसगं (बृभा)।
४. ०गहीयं (ब) ।
५. अहव न (निभा ३१५२), बृभा ४२८३) ।
६. ०दसमिट्ठियाण (ब, मु) ।
७. ०मोसवणा (निभा ३१५३), बृभा ४२८४) ।
८. ईय सत्तरि (ब) ।
९. मिग्ग० (मु) ।
१०. रायं (बी, ला) ।
११. निभा ३१५४, बृभा ४२८५ । निशीथ भाष्य में पर्युषणाकल्प की सभी निर्युक्तिगाथाएँ उद्धृत हैं। गाथा ६९ के बाद निभा (३१५५) में निम्न गाथा मिलती है । यह गाथा दशाश्रुतस्कन्ध की प्रतियों में उपलब्ध नहीं है। चूर्णिकार ने भी इसका गाथा के रूप में कोई उल्लेख नहीं किया है।
पण्णासा पाडिज्जति, चउण्ह मासाण मज्झओ ।
ततो उ सत्तरी होइ, जहण्णो वासुवग्गहो ॥
१२. ठियाण तीतमग्ग० (निभा ३१५६), ठियाण जाव मग्ग० (ला) ।
१३. भणितो (निभा), बृभा ४२८६ ।
१४. अह (बृभा ४२८७) ।
१५. चउपडिवयम्मि होइ णिग्गमणं (निभा ३१५७, बृभा) ।
१६. अणिंतस्स आरोवणा (निभा), यह गाथा ला और बी प्रति में अनुपलब्ध है ।
१७. संसत्तं (निभा ३१५९) ।
१८. निशीथ भाष्य में ७२ और ७३ की गाथा में क्रमव्यत्यय है ।
१९. कुंथू सप्पे (निभा ३१५८) ।

एतेहिं कारणेहिं, अइक्कंते होति निग्गमणं[३] ॥

७५. असिवे ओमोयरिए, रायादुट्ठे[४] भए व गेलण्णे ।
एतेहिं कारणेहिं, अइक्कंते होयऽनिग्गमणं[५] ॥

७६. उभओ[६] वि अद्धजोयण, सअद्धकोसं[७] च तं हवति खेत्तं ।
होति सकोसं जोयण, मोत्तूणं कारणज्जाए ॥

७७. उड्ढमहे तिरियम्मि य, 'सकोसयं सव्वतो हवति'[८] खेत्तं ।
इंदपदमाइएसुं,[९] छिद्दिसि सेसेसु[१०] चउ पंच[११] ॥

७८. तिण्णि दुवे एगा वा, वाघातेणं दिसा हवति खेत्तं[१२] ।
उज्जाणाउ परेणं, छिण्णमडंबं तु अक्खेत्तं ॥

७९. दगघट्ट तिण्णि सत्त व, उडुवासासु ण हणंति तं खेत्तं ।
चउरट्ठाति हणंति, 'जंघद्धेक्को वि तु परेणं[१३] ॥

८०. दव्वद्धवणाहारे विगती-संथार-मत्तए लोए ।
सच्चित्ते अच्चित्ते, वोसिरणं गहण-धरणादी ॥

८१. पुव्वाहारोसवणं,[१४] जोगविवड्ढी य सत्तिउग्गहणं[१५] ।
'संचइय असंचइए',[१६] दव्वविवड्ढी पसत्थाओ[१७] ॥

८२. विगतिं विगतीभीतो, विगतिगयं जो उ भुंजते[१८] भिक्खू ।
विगती विगयसभावं[१९] विगती विगतिं बला नेइ ॥

८२।१. पसत्थविगतिग्गहणं, तत्थ वि य असंचइय उ जा उत्ता ।

---

१. वासा (बी) ।
२. न ओरमती (मु), णो रमई (ला) ।
३. निभा ३१६० ।
४. रायदुट्ठे (अ, निभा ३१६१) ।
५. होइ निग्गमणं (मु), कुछ प्रतियों में इस गाथा के पश्चात् 'काऊण मासकप्पं' (गा. ७१) वाली गाथा है ।
६. दुहओ (व) ।
७. अद्ध० (निभा ३१६२) ।
८. सक्कोसं हवंति सव्वतो (निभा ३१६३), सकोसं होइ सव्वओ (ला) ।
९. ०एसू (निभा) ।
१०. इयरेसु (अ) ।
११. खेत्ते (निभा ३१६४) ।
१२. ते (निभा ३१६५) ।
१३. निभा ३१६६ ।
१४. ०समणं (ला) ।
१५. सत्तिओगहणं (निभा ३१६७) ।
१६. ०इयमसंच० (निभा) ।
१७. पसत्था उ (मु) ।
१८. गिण्हए (अ, ब, बी, सा) ।
१९. विगतिसहावा (निभा ३१६८) ।

संचइय ण गेण्हंती, गिलाणमादीण कज्जट्ठा[१] ॥

८३. पसत्थविगतिग्गहणं,[२] गरहितविगतिग्गहो य[३] कज्जम्मि ।
गरहा लाभपमाणे, पच्चयपावप्पडीघातो ॥

८४. कारणओ[४] उडुगहिते, उज्झिऊण गेण्हंति अण्णपरिसाडी[५] ।
दाउं गुरुस्स तिण्णि उ, सेसा गेण्हंति एक्केक्कं ॥

८५. उच्चार-पासवण-खेलमत्तए तिण्णि तिण्णि गेण्हंति ।
संजय[६] आएसट्ठा 'भुंजेज्जऽवसेस उज्झंति ॥

८६. धुवलोओ उ[७] जिणाणं, निच्चं थेराण वासवासासु[८] ।
असहू गिलाणयस्स व, 'नातिक्कामेज्ज तं रयणि[९] ॥

८७. मोत्तुं पुराण-भावितसड्ढे, संविग्ग सेसपडिसेहो[१०] ।
'मा होहिति निद्धम्मो',[११] भोयणमोए य उड्डाहो ॥ दारं ॥

८८. डगलच्छारे लेवे, छड्डुण गहणे तहेव धरणे य ।
पुंछण-गिंलाण मत्तग, भायणभंगादिहेतू से[१२] ॥

८९. इरिएसण-भासाणं, मण-वयसा-काइए[१३] य दुच्चरिते ।
अहिकरण-कसायाणं, संवच्छरिए विओसवणं ॥

९०. कामं तु सव्वकालं, पंचसु समितीसु होति जतियव्वं ।
'वासासु अहीगारो',[१४] बहुपाणा मेदिणी जेणं[१५] ॥

९१. भासणे[१] संपातिवहो,[२] दुण्णेओ नेहछेए[३] ततियाए ।

---

१. ८२।१ की गाथा निभा ३१६९ में ही मिलती है। आयारदशा की हस्तप्रतियों में यह गाथा अप्राप्त है। चूर्णि में भी इस गाथा की व्याख्या नहीं मिलती है। इस गाथा के सम्बन्ध में दो बातें सम्भव है। प्रथमा तो स्वयं निशीथ भाष्यकर ने स्पष्टता के लिए यह गाथा लिख दी हो। दूसरा यह भी सम्भव है कि आयारदशा निर्युक्ति के लिपिकारों द्वारा यह गाथा छूट गई हो। पुष्ट प्रमाण के अभाव में इसे निर्युक्ति गाथा के क्रम में नहीं रखा है।

२. विगतीए गहणम्मि वि (निभा ३१७०) ।

३. व (निभा, ब) ।

४. कारणे (निभा ३१७१) ।

५. ०सार्डि (निभा), ०परिपाडी (बी) ।

६. संजम (ला, निभा ३१७२) ।

७. य (अ, निभा ३१७३) ।

८. ०वासा उ (बी) ।

९. तं रयणिं तू णऽतिक्कामे (निभा) । नातिकमेज्जा तं० (बी) ।

१०. सच्चित्त से० (ला निभा ३१७४) ।

११. मा निद्दओ भविस्सइ (मु. अ) ।

१२. प्रस्तुत गाथा आयारदशा की चूर्णि की मुद्रित पुस्तक में तथा कुछ आदर्शो में नहीं मिलती है। किन्तु चूर्णि में इसकी व्याख्या मिलती है। इसके अतिरिक्त निशीथ भाष्य (३१७५) में भी इस क्रम में यह गाथा उपलब्ध है। हमने इसे निर्युक्ति गाथा के क्रम में सम्मिलित किया है।

१३. कायए (निभा ३१७६) ।

१४. वासावासं अहिगारो (ब) ।

१५. निभा ३१७७ ।

इरियचरिमासु दोसु वि, अपेह 'अपमज्जणे पाणा[४] ॥

९२. मण-वयण-कायगुत्तो, दुच्चरियाइं तु[५] खिप्पमालोए[६] ।
'अहिकरणम्मि दुरूयग',[७] पज्जोए चेव दमए य ॥

९३. एगबइल्ला भंडी[८] पासह तुब्भे वि 'डज्झ खलहाणे'[९] ।
'हरणे झामणजत्ता, भाणगमल्लेण घोसणया'[१०] ॥

९४. अप्पिणह तं बइल्लं, दुरूतगा ![११] तस्स ! कुंभकारस्स ।
मा भे डहीहि[१२] धण्णं,[१३] अन्नाणि वि सत्तवासाणि[१४] ॥

९५. चंपा 'कुमार नंदी',[१५] पंचऽच्छर थेर नयण दुमऽवलए ।
विह[१६] 'पास णयण'[१७] सावग, इंगिणि उववाय णंदिसेरे[१८] ॥

९६. बोहण पडिमोद्दायण,[१९] पभावउप्पाय देवदत्तद्दे[२०] ।
मरणुववाते तावस, नयणं 'तह भीसणा'[२१] समणा ॥

९७. गंधारगिरी देवय, पडिमा गुलिया गिलाण-पडियरणं[२२] ।
पज्जोयहरण पुक्खर,[२३] 'रणगहणे मेऽज्ज ओसवणा'[२४] ॥

९८. दासो दासीवतिओ, छत्तट्ठो[२५] जो घरे य वत्थव्वो[२६] ।
आणं कोवेमाणे, हंतव्वो बंधियव्वो य ॥

९९. खद्धाऽऽदाणिय गेहे, पायस 'दट्ठु दमचेडरूवाइं'[१] ।

---

१. भासण (अ) ।
२. संपाइम अहो (मु) ।
३. ०छेदु (निभा ३१७८), नेहच्छेओ (ब) ।
४. अपमज्ज पाणाणं (बी) ।
५. च (बी, अ), व (अ, निभा) ।
६. णिच्चमालोए (ब, निभा ३१७९) ।
७. अहिकरणे तु दुरूवग (निभा) गरणे य० (अ, बी) ।
८. एगबतिल्लं भंडि (निभा ३१८०), ०ल्ला गड्डी (अ) ।
९. डज्झंतख० (निभा), सत्तख० (बी) ।
१०. हरणेज्झामण भाणग, घोसणता मल्लजुद्धेसु (बी, निभा) ।
११. दुरूवगा (निभा ३१८१), दुरुवतग (बी) ।
१२. डइहिति (निभा) ।
१३. गामं (अ, मु) ।
१४. ०वरिसाणि (निभा) ।
१५. अणंगसेणो (निभा ३१८२) ।
१६. विहि (ला) ।
१७. पासणया (मु) ।
१८. णंदिवरे (निभा ३१८२) ।
१९. पडिमा उदयणं (अ) ।
२०. देवदत्ताते (अ, चू), देवया अद्दे (ला, बी) ।
२१. तहा भेयणं (ला, बी) ।
२२. ०यरेणं (अ) ।
२३. दोक्खर (अ, मु) ।
२४. रणगहणे णामओसवणा (निभा ३१८४), करणं गहणेण ओसवणा (ला, बी) ।
२५. छेत्तट्ठी (निभा ३१८५), छत्तट्ठिय (अ) ।
२६. वत्तव्वो (निभा) ।

पितरोभासण खीरे, जाइय 'रद्धेण सेणा उ'[२] ॥

१००. पायसहरणं छेत्ता, 'पच्चागय दमग असियए[३] सीसं'[४] ।
भाउय सेणाहिवखिंसणा,[५] य सरणागतो जत्थ ॥

१०१. वाओदएणं[६] राई, नासति कालेण सिगय पुढवीणं[७] ।
नासति दगस्सराई,[८] पव्वयराई तु जा सेलो ॥

१०२. उदगसरिच्छा[९] पक्खेणऽवेति चतुमासिएण सिगयसमा ।
वरिसेण पुढविराई, आमरणगती उ[१०] पडिलोमा ॥

१०३. सेलऽट्ठि-थंभ-दारुय, लता य वंसी[११] य 'मिंढ गोमुत्तं'[१२] ।
अवलेहणिया किमिराग-कद्दम-कुसुंभय-हलिद्दा[१३] ॥

१०४. एमेव थंभकेयण, वत्थेसु परूवणा गतीओ य ।
'मरुय-अचंकारिय'[१४] पंडरज्ज-मंगू य आहरणा[१५] ॥

१०४।१. चउसु कसाएसु गती, नरयतिरियमाणसे य देवगती ।
उवसमह णिच्चकालं, सोग्गइमग्गं वियाणंता[१६] ॥

१०५. अवहंत गोण मरुए, चउण्ह वप्पाण उक्करो उवरिं ।
'छोढुं मए मुवट्ठाऽतिकोवे'[१७] ण[१८] देमु[१९] पच्छित्तं ॥

१०६. वणिधूयाऽच्चंकारियभट्टा[१] अट्ठसुयमग्गतो जाया ।

---

१. दमचेडरूवगा दट्ठुं (निभा ३१८६) दट्ठुण चेड० (अ, मु) ।
२. लद्धे य तेणा उ (अ, मु), रद्धे य तेणा तो (निभा) ।
३. मसियए (बी) ।
४. पच्छागय असियएण सीसं तु (निभा ३१८७)।
५. ०खिंसणाहिं (निभा), सेणावतिखिं० (मु) ।
६. वाओदएहि (निभा ३१८८) ।
७. सिगइपु० (ला, बी), ।
८. उदगस्स सतिं (निभा), उदगस्स सती (मु) ।
९. ०सरिच्छी (ला, बी) ।
१०. य (ल, बी, निभा ३१८९) ।
११. वंसे (निभा) ।
१२. मेंढ गोमुत्ती (निभा) ।
१३. निभा (३१९१) में गाथा का, उत्तरार्ध इस प्रकार है—अवलेहणि किमि कद्दम कुसुंभरागे हलिद्दा य ।
१४. मरुयऽच्चंकारिय (ब, मु) ।
१५. निभा ३१९० ।
निशीथ भाष्य में १०३ और १०४ की गाथा में क्रमव्यत्यय है । निभा में एमेव थंभ (३१९०) के बाद सेलऽट्ठि (३१९१) की गाथा है । लेकिन विषय वस्तु की दृष्टि यह क्रम संगत नहीं लगता ।
१६. गाथाओं के चालू क्रम में प्रस्तुत गाथा केवल निशीथ भाष्य (३१९२) में मिलती है । आयारदशा की निर्युक्ति में यह गाथा अप्राप्त है । संभव है यह निशीथ भाष्यकार द्वारा भाष्य में बाद में जोड़ दी गई हो ।
१७. छूढो मओ उवट्ठा अति० (निभा ३१९३), ०सुवट्ठाति० (मु) ।
१८. णो (अ) ।
१९. देसु (ला, बी) ।

'वरग पडिसेह'[२] सचिवे, अणुयत्तीह[३] पदाणं च ॥

१०७. निवचिंत विकालपडिच्छणा य दारं[४] न देमि निवकहणा[५] ।
खिंसा निसिनिग्गमणं, चोरा सेणावतीगहणं[६] ॥

१०८. नेच्छति जलूगवेज्जगगहणं 'तं पि य अणिच्छमाणी उ'[७] ।
'गिण्हावेइ जलूगा, धणभाउग कहण मोयणया'[८] ॥

१०९. सयगुणसहस्सपागं, वणभेसज्जं जतिस्स[९] जायणता ।
तिक्खुत्त दासिभिंदण, न य कोव सयंपदाणं च[१०] ॥

११०. पासत्थि पंडरज्जा, परिण्ण गुरुमूल णातअभियोगा ।
'पुच्छा तिपडिक्कमणे',[११] पुव्वब्भासा चउत्थम्मि[१२] ॥

१११. अपडिक्कमसोहम्मे, 'अभिओगा, देवि'[१३] सक्कओसरणे ।
हत्थिणि वायणिसग्गो,[१४] गोतमपुच्छा य[१५] वागरणं ॥

११२. महूरा मंगू आगम, बहुसुत वेरग्ग सड्ढपूया[१६] य ।
सातादिलोभ णितिए, मरणे 'जीहा य'[१७] णिद्धमणे[१८] ॥

११३. अब्भुवगत गतवेरे, णातुं गिहिणो वि मा हु अधिगरणं ।
कुज्जा हु[१९] कसाए वा, अविगडितफलं च सि सोउ ॥

११४. पच्छित्तं[२०] बहुपाणा, कालो बलिओ चिरं तु[२१] ठायव्वं ।
सज्झाय-संजम-तवे, 'धणियं अप्पा'[२२] नियोतव्वो ॥

११५. पुरिम-चरिमाण[१] कप्पो, मंगल्लं[२] वद्धमाणतित्थम्मि ।

---

१. ०धूय अचंका० (अ), ०धूयाच्चं० (मु), ०धूय अचं (ला, बी), धणधूयमच्चंका० (निभा ३१९४) ।
२. चरणपडिसेव (निभा) ।
३. ०यत्तीहिं (निभा) ।
४. दाणं (बी, निभा ३१९५) ।
५. ०कहणं (निभा) ।
६. गमणं (ब), ।
७. तम्मि य अणिच्छमाणम्मि (अ, मु) ।
८. गिण्हावे जलूगवणा भाउयदूए कहण मोए (निभा ३१९६), गाहावइ जलूगा० (मु) ।
९. वतीसु (अ, मु) ।
१०. कोवो सय० (अ), कोहो सयं च दाणं च (निभा ३१९७) ।
११. पुच्छति य पडि० (मु, ब, अ) ।
१२. चउत्थं पि (निभा, ३१९८) ।
१३. अभिउग्गा देव (निभा ३१९९) ।
१४. वाउस्सग्गे (निभा), वाउनि० (ला, बी) ।
१५. तु (निभा) ।
१६. सद्धपूया (अ) ।
१७. जीहाइ (निभा ३२००) ।
१८. णिद्धिमणे (मु) ।
१९. हि (निभा ३२०१) ।
२०. पच्छित्ते बहुपाणो (मु, बी) ।
२१. च (निभा ३२०२) ।
२२. धणियप्पा (व) ।

ता[३] परिकहिया जिण-गणहराइथेरावलिचरित्तं[४] ॥

११६. सुत्ते जहा निबद्धं,[५] वग्घारिय भत्त-पाण अग्गहणं[६] ।
णाणट्ठि[७] तवस्सी, अणहियासि वग्घारिए गहणं[८] ॥

११७. संजमखेत्तचुयाणं, णाणट्ठि-तवस्सि-अणहियासाणं ।
आसज्ज भिक्खकालं, उत्तरकरणेण जतितव्वं[९] ॥

११८. उण्णियवासाकप्पो, लाउयपायं च लब्भए[१०] जत्थ ।
सज्झाएसणसोही, वरिसति[११] काले य तं खेत्तं ॥

११९. पुव्वाधीतं नासति, नवं च छातो अपच्चलो[१२] घेत्तुं ।
खमगस्स य पारणए, वरिसति[१३] असहू य बालादी ॥

१२०. वाले सुत्तं सुई, कुडसीसग छत्तए[१४] 'य पंचमए'[१५] ।
णाणट्ठि-तवस्सी अणहियासि अह उत्तरविसेसो[१६] ॥

पज्जोसवणाकप्पस्स निज्जुत्ती समत्ता ॥

• • •

१. चरमाण (बी) ।
२. तु मंगलं (निभा ३२०३) ।
३. इह (अ.मु.) ।
४. जिणपरिकहा य थेरावळी वोच्छं (अ,ब) ।
५. णिबंधी (निभा, चू) ।
६. ०मग्गहणं (निभा ३२०४) ०अग्गहणे (मु) ।
७. णाणट्ठी (मु) ।
८. यऽणहि० (निभा) ।
९. निभा ३२०५ ।
१०. लब्भती (निभा ३२०६) ।
११. वासति (आ, ला, बी) ।
१२. ण पच्चलो (निभा ३२०७) ।
१३. बरसति (ल, बी, निभा) ।
१४. छित्तए (ब), य पच्छि० (निभा ३२०८) ।
१५. अपच्छिमए (अ, भु) ।
१६. ०विसेसा (निभा) ।

परिशिष्ट-३
पदानुक्रमः

गाथा	क.नि.	दशा.नि.
अपडिक्कम सोहम्मे	५९	११०
अप्पिणह तं बइल्लं	४२	९३
अब्भुवगत गतवेरे	६१	११२
अवहंत गोण मरूए	५३	१०४
असिवाइकारणेहिं	१६	६७
असिवे ओमोयरिए	२४	७५
आसाढपुण्णिमाए	१२	६३
इय सत्तरि जहण्णा	१८	६९
इरिएसणभासाणं	३७	८८
उच्चार-पासवण-खेलमत्तए	३४	८५
उड्ढमहे तिरियम्मि य	२६	७६
उणाइरित्तमासा	११	६२
उण्णियवासाकप्पो	६६	११७
उदयसरिच्छा पक्खेण	५०	१०१
उभओ उ अद्धजोयण	२५	७५
ऊणाइरित्तमासे	८७	५८
एगबइल्ला भंडी	४१	९२
एत्थ तु अणभिग्गहियं	२५	६६
एत्थ तु पणगं पणगं	२७	६८
एमेव थंभकेयण	५२	१०३
ओदइयाईयाणं	४	५५
काईयभुमी संथारए य	२१	७२

काऊण मासकप्पं	८	५९
काऊण मासकप्पं	१९	७०
कामं तु सव्वकाल	३८	८९
कारणओ उडुगहिते	३३	८४
कालो समयादीओ	६	५७
खद्धादाणिय गेहे	४७	९८
गंधार गिरी देवय	४५	९६
चंपाकुमारनंदी	४३	९४
चिक्खल्ल पाण	१३	६४
जइ अत्थि पयविहारो	२०	७१
ठवणाए निक्खेवो	३	५४
णिवचिंत विगाल	५५	१०६
तिण्णि दुवे एक्का	२७	७८
दगघट्ट तिन्नि सत्त व	२८	७९
दव्वट्ठवणाऽऽहारे	२९	८०
दासो दासवतितो	४६	९७
धुवलोओ उ जिणाणं	३५	८६
नेच्छइ जलूगवेज्जग	५६	१०७
पच्छितं बहूपाणा	६२	११३
पज्जोसमणाए अक्खराइं	१	५२
पडिमापडिवन्नाणं	१०	६१
परिवसणा जुसणा	२	५३
पसत्थविगईगहणं	३२	८३
पायसहरणं छेत्ता	४८	९९
पासत्थि पंडुरज्जा	५८	१०९
पुरिमचरिमाण कप्पो	६३	११४
पुव्वाहारोसवणं	३०	८१
पुव्वाहीयं नासइ	६७	११८
बाहिं ठिता	१४	६५
बोहण पडिमा उदयण	४४	९५

भासणे संपाइमवहो	३९	९०
मणवयणकायगुत्तो	४०	९१
महुराए मंगू आगम	६०	१११
मोत्तुं पुराण-भाविय	३६	८७
राया सप्पे कुंथू	२२	७३
वणिधूयाऽच्चंकारियभट्टा	५४	१०५
वाओदएण राई	४९	१००
वाले सुत्ते सुई	६८	११९
वासं वा न ओरमई	२३	७४
वासाखेत्तालंभे	९	६०
विगतिं विगतीभीओ	३१	८२
संजमखेत्तचुआणं	६५	११६
सयगुणसहस्सपागं	५७	१०८
सामित्ते करणम्मि य	५	५६
सुत्ते जहा निबद्धं	६४	११५
सेलट्ठि थंभ दारुय	५१	१०२

• • •

परिशिष्ट-४
निशीथसूत्रचूर्णि तुलना[१]

निशीथसूत्रम् :–

जे भिक्खू अपज्जोसवणाए पज्जोसवेति, पज्जोसवेंतं वा सातिज्जति ॥४२॥
जे भिक्खू पज्जोसवणाए ण पज्जोसवेइ, ण पज्जोसवेंतं वा सातिज्जति ॥४३॥

इमो सुत्तत्थो–

पज्जोसवणाकाले, पत्ते जे भिक्खू णोसवेज्जाहि ।
अप्पत्तमतीते वा, सो पावति आणमादीणि ॥३१३७॥

जे भिक्खू पज्जोसवणाकाले पत्ते ण पज्जोसवति । ''अपज्जोसवणाए'' त्ति अपत्ते समतीते वा जो पज्जोसवति तस्स आणादिया दोसा चउगुरुं पच्छित्तं ॥३१३७॥ एस सुत्तत्थो ॥

इमा णिज्जुती–

पज्जोसवणाए अक्खराइ होंति उ इमाइं गोण्णाइं ।
परियायवत्थवणा, पज्जोसवणा य पागइता ॥३१३८॥

परिवसणा पज्जुसणा, पज्जोसवणा य वासवासो य ।
पढमसमोसरणं ति य, ठवणा जेट्ठोग्गहेगट्ठा ॥३१३९॥

''पज्जोसवण'' त्ति एतेसिं अक्खराणि इमाणि एगट्ठिताणि गोण्णणामाणि अट्ठ भवंति । तं जहा–परियायवत्थवणा, पज्जोसवणा य, परिसवणा, पज्जुसणा, वासावासो, पढमसमोसरणं, ठवणा जेट्ठोग्गहो त्ति, एते एगट्ठिता ।

१ एतेसिं इमो अत्थो–जम्हा पज्जोसवणादिवसे पव्वज्जापरियागो व्यपदिश्यते–व्यवस्थाप्यते संखा–''एत्तिया वरिसा मम उवट्ठावियस्स'' त्ति तम्हा परियायवत्थवणा भण्णति ।

२ जम्हा उदुबद्धिया दव्व-खेत्त-काल-भावा पज्जाया, एत्थ परि समंता ओसविज्जंति–परित्यजन्तीत्यर्थः, अण्णे य दव्वादिया वरिसकाल-पायोग्गा घेत्तुं आयरिज्जति तम्हा पज्जोसवणा भण्णति । ''पागय'' त्ति सव्वलोगपसिद्धेण पागतभिधाणेण पज्जोसवणा भण्णति ।

३ जम्हा एगखेत्ते चत्तारि मासा परिवसंतीति तम्हा परिवसणा भण्णति ।

४ उदुबद्धिया वाससमीवातो जम्हा पगरिसेण ओसंति सव्वदिसासु परिमाणपरिच्छिन्नं तम्हा पज्जुस्सणा भण्णति । पज्जोसवणा इति गतार्थम् ।

५ वर्ष इति वर्षाकालः, तस्मिन् वासः वासावासः ।

६ प्रथमं आद्यं बहूण समवातो समोसरणं । ते य दो समोसरणा–एगं वासासु, बितियं उदुबद्धे । जतो पज्जोसवणातो वरिसं आढप्पति अतो पढमं समोसरणं भण्णति ।

७ वासकप्पातो जम्हा अण्णा वासकप्पमेरा ठविज्जति तम्हा ठवणा भण्णति ।

---

१. चूर्णिकर्ताः–श्रीजिनदासगणि महत्तर । सम्पादक – उपा. अमरमुनि ।

८ जम्हा उदुबद्धे एक्कं मासं खेत्तोग्गहो भवति, वासावासासु चत्तारि मासा, तम्हा उदुबद्धियाओ वासे उग्गहो जेट्ठो भवति । एषां व्यंजनतो नानात्वं, न त्वर्थतः ॥३१३९॥

एतेसिं एगट्ठियाणं एगं ठवणापदं परिगृह्यते तम्मि णिक्खित्ते सव्वे णिक्खित्ता भवंति—

ठवणाए णिक्खेवो, छक्को दव्वं च दव्वणिक्खेवे ।
खेत्तं तु जम्मि खेत्ते, काले कालो जहिं जो उ ॥३१४०॥

ठवणाए छव्विहो णिक्खेवो तं जहा—णामठवणा ठवणठवणा दव्वठवणा खेत्तठवणा कालठवणा भावठवणा । णाम-ट्ठवण-ठवणातो गयाओ । दव्वट्ठवणा दुविधा—आगमतो णोआगमतो य । आगमतो जाणए अणुवउत्ते । णोआगमतो तिविधा—तं जहा जाणगसरीरट्ठवणा भवियसरीरट्ठवणा जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्ता ॥३१४०॥ वतिरित्ता दव्वट्ठवणा इमा—

ओदइयादीयाणं, भावाणं जो जहिं भवे ठवणा ।
भावेण जेण य पुणो, ठवेज्ज ते भावठवणा तु ॥३१४१॥

"दव्वं च दव्वणिक्खेवो" दव्वपरिमाणेण स्थाप्यमाना दव्वट्ठवणा भण्णति, च सद्दोऽणुकरिसणे, किं अणुकरिसयति ? भण्णते—इमं दव्वं वा णिक्खिप्पमाणं, दव्वस्स वा जो निक्खेवो सा ठवणा भण्णति ॥३१४१॥ अस्येमा व्याख्या—

सामित्ते करणम्मि य, अहिकरणे चेव होंति छब्भेया ।
एगत्त-पुहुत्तेहिं, दव्वे खेत्ते य भावे य ॥३१४२॥

सामित्ते पडिवसभगामस्स अंतरपल्लियाए य, करणे खेत्तेण एगत्त-बहुमिते दव्वस्स ठवणा दव्वाण वा ठवणा दव्वठवणा ।

तत्थ दव्वस्स ठवणा जहा कोइ साहू एगसंथाराभिग्गहणं ठवेति—गृह्णातीत्यर्थः ।

दव्वाण ठवणा जहा—संथारगतिग-पडोआरग्गहणाभिग्गहणं आत्मनि ठवेति । करणे जहा दव्वेण ठवणा, दव्वेहिं वा ठवणा । तत्थ दव्वेण आयंबिलदव्वेण चाउम्मासं जावेति । दव्वेहिं कूरकुसणेहिं वा चाउम्मासं जावेति ।

अहवा—चउसु मासेसु एक्कं आयंबिलं पारेत्ता सेसकालं अभत्तट्ठं करेति, एवमात्मानं स्थापयतीत्यर्थः । दव्वेहिं दोहिं आयंबिलेहिं चाउम्मासं ठावेति । अधिकरणे दव्वे ठवणा, दव्वेसु वा ठवणा । तत्थ दव्वे जहा एगंगिए फलहिए मए सुवियव्वं, दव्वेसु अणेगंगिए संथारए मए सुवियव्वंति एवं छब्भेया । एगत्त-पुहत्तेहिं दव्वे भणिता ।

इदाणिं खेत्तठवणा "[१]खेत्तं तु जम्मि खेत्ते" त्ति । क्षेत्रं यत् परिभोगेन परित्यागेन वा स्थाप्यते, जम्मि वा खेत्ते ठवणा ठविज्जति सा खेत्तठवणा । सा य सामित्तकरण-अधिकरणेहिं एगत्त-पुहुत्तेहिं छब्भेया भाणियव्वा ।

इयाणिं कालठवणा—"[२]काले कालो जहिं जो उ" त्ति । 'काले कालो' एतेसु जहासंखं इमे पदा जहिं जो उ", काले जहिं ठवणा ठविज्जति, कालो वा जो उ ठविज्जति सा कालठवणा । अद्ध

---

१. गा० ३१४० । २. गा० ३१४० ।

इति कालो । तत्थ वि सामित्तकरण-अधिकरणेहिं एगत्त-पुहुत्तेहिं छब्भेया भवंति । भावे छब्भेया ।

सामित्ते-खेत्तस्स एगगामस्स परिभोगो, खेत्ताणं सीमातीणं मूलगामस्स पडिवसभगामस्स अंतरपल्लियाए य । करणे खेत्तेण एगत्ते पुहुत्तेण, एत्थ ण किं चि संभवति । अधिकरणे—एगत्तं परं अद्धजोयणमेराए गंतु पडियत्तए, पुहत्ते कारणे दुगादी अद्धजोयणे गंतुं पडियत्तए । कालस्स ठवणा उदुबद्धे जा मेरा सा वज्जिज्जति—स्थाप्यते इत्यर्थः । कालाणं चउण्हं मासाणं ठवणा ठविज्जति, आचरणत्वेनेत्यर्थः । कालेणं आसाढपुण्णिमाकालेणं ठायंति । कालेहिं बहूहिं पंचाहेहिं गतेहिं ठायंति । कालम्मि पाउसे ठायंति । कालेसु कारणे आसाढपुण्णिमातो सवीसइमासदिवसेसु गतेसु ठायंति । भावस्सोदतियस्स ठवणा, भावाणं कोह-माण-माया-लोभातीणं । अहवा—णाणमादीणं गहणं । अहवा—खाइयं भावं संकामंतस्स सेसाणं भावाणं परिवज्जणं भवति । भावेण णिज्जरट्ठताए एगखेत्ते ठायंति णो अडंति । भावेहिं संगह-उवग्गह-णिज्जरणिमित्तं वा णो अडंति । भावम्मि खयोवसमिए खतिए वा ठवणा भवति । भावेसु णत्थि ठवणा ।

अहवा—खओवसमिए भावे सुद्धातो भावातो सुद्धतरं भावं संकमंतस्स भावेसु ठवणा भवति । एवं दव्वाति-ठवणा समासेण भणिता ॥३१४२॥

इयाणिं एते चेव वित्थारेण भणीहामि । तत्थ पढमं कालठवणं भणामि । किं कारणं ? जेण एयं सुत्तं कालठवणाए गतं । एत्थ भणति—

कालो समयादीयो, पगयं कालम्मि तं परूवेस्सं ।
णिक्खमणे य पवेसे, पाउस-सरए य वोच्छामि ॥३१४३॥

कलनं कालः, कालेज्जतीति वा कालः, कालसमूहो वा कालः, सो य समयादी, समयो पट्टसाडियाफाडणादिट्ठंतेणं सुत्ताएसेणं परूवेयव्वो । आतिग्गहणातो आवलिया मुहुत्तो पक्खो मासो उदू अयणं संवच्छरो जुगं एवमाइ । एत्थ जं "पगयं" ति—अधिकारसमयेन सिद्धंतेन तमहं परूवेस्सं । उदुबद्धियमासकप्पखेत्तातो पाउसे णिक्खमणं, वासाखेत्ते य पाउसे चेव पवेसं वोच्छं । वासाखेत्तातो सरए णिक्खमणं, उदुबद्धियखेत्ते पवेसं सरए चेव वोच्छामि । अहवा—सरए णिग्गमणं पाउसे पवेसं वोच्छामीत्यर्थः ॥३१४३॥

ऊणातिरित्तमासे, अट्ठ विहरिऊण गिम्ह-हेमंते ।
एगाहं पंचाहं, मासं च जहा समाहीए ॥३१४४॥

चत्तारि हेमंतिया मासा, चत्तारि गिम्हिया मासा, एते अट्ठ ऊणातिरित्ता वा विहरिता । कहं विहरित्ता ? भण्णति—पडिमापडिवण्णाणं एगाहो । अहालंदियाणं पंचाहो । जिणकप्पियाण सुद्धपरिहारियाण थेराण य मासो । जस्स जहा णाण-दंसण-चरित्तसमाही भवति सो तहा विहरित्ता वासाखेत्तं उवेति ॥३१४४॥ कहं पुण ऊणातिरित्ता वा उदुबद्धिया मासा भवंति ? तत्थ ऊणा—

काऊण मासकप्पं, तत्थेव उवागयाण ऊणा उ ।
चिक्खल्लवासरोहेण वा बितीए ठिता णूणं ॥३१४५॥

जत्थ खेत्ते आसाढमासकप्पो कतो तत्थेव खेत्ते वासावासत्तेण उवगया, एवं ऊणा अट्ठ मासा। आसाढमासे अनिर्गच्छतां सप्त विहरणकाला भवन्तीत्यर्थः । अधवा—इमेहिं पगारेहिं ऊणा अट्ठ

मासा हवेज्ज—सचिक्खल्ला पंथा, वासं वा अज्ज वि णोवरमते, णयरं वा रोहितं बाहिं वा असिवादि कारणा, तेण मग्गसिरे सव्वे ठिया, अतो पोसादिया आसाढंता सत्त विहरणकाला भवंति ॥३१४५॥ इयाणिं जहा अतिरित्ता अट्ठ मासा विहारो तहा भण्णति—

वासाखेत्तालंभे, अद्धणादीसु पत्तमहिगा तु ।
साधग-वाघातेण व, अप्पडिकमितुं जति वयंति ॥३१४६॥

आसाढे सुद्धवासावासपाउग्गं खेत्तं मग्गतेहिं ण लद्धं ताव जाव आसाढचाउम्मासातो परतो सवीसतिराते मासे अतिक्कंते लद्धं, ताहे भद्दवया जोण्हस्स पंचमीए पज्जोसवंति, एवं णव मासा सवीसतिराता विहरणकालो दिट्ठो, एवं अतिरित्ता अट्ठ मासा । अहवा—साहू अद्धाणपडिवण्णा सत्थवसेणं आसाढचाउम्मासातो परेण पंचाहेण वा दसाहेण वा पक्खेण वा जाव वीसतिराते वा मासे वासाखेत्तं पत्ताणं अतिरित्ता अट्ठ-मासा विहारो भवति । अहवा—वासवाघाए अणावुट्ठीए आसोए कत्तिए णिग्गयाण अट्ठ अतिरित्ता भवंति । वसहिवाघाते वा कत्तियचाउम्मासिय आरतो चेव णिग्गया । अहवा—आयरियाणं कत्तियपोण्णिमाए परतो वा साहगं णक्खत्तं ण भवति, अण्णं वा रोहगादिकं वि, एस वाघायं जाणिऊण कत्तियचाउम्मासियं अपडिक्कमिय जया वयंति तता अतिरित्ता अट्ठ—मासा भवंति ॥३१४६॥ ''[1]एगाहं पंचाहं मासं च जहा समाहीए'' अस्य व्याख्या—

पडिमापडिवण्णाणं, एगाहो पंच होतऽहालंदे ।
जिण-सुद्धाणं मासो, णिक्कारणतो य थेराणं ॥३१४७॥

''जिण'' त्ति जिणकप्पिया । सुद्धाणं त्ति सुद्धपरिहारियाणं, एतेसिं मासकप्पविहारो । णिव्वाघायं कारणाभावे ॥३१४७॥ वाघाते पुण थेरकप्पिया ऊणं अतिरित्तं वा मासं अच्छंति—

ऊणातिरित्तमासा, एवं थेराण अट्ठ णायव्वा ।
इयरेसु अट्ठ रियितुं, णियमा चत्तारि अच्छंति ॥३१४८॥

एवं ऊणातिरित्ता थेराणं अट्ठ मासा णायव्वा । इतरे णाम पडिमापडिवण्णा अहालंदिया विसुद्धपरिहारिया जिणकप्पिया य जहाविहारेण अट्ठ रीइतुं वासारत्तिया चउरो मासा सव्वे णियमा अच्छंति ॥३१४८॥ वासावासे कम्मि खेत्ते कम्मि काले पविसियव्वं अतो भण्णति—

आसाढपुण्णिमाए, वासावासासु होइ ठायव्वं ।
मग्गसिरबहुलदसमी तो जाव एक्कम्मि खेत्तम्मि ॥३१४९॥

''ठायव्वं'' त्ति उस्सग्गेण पज्जोसवेयव्वं, अहवा—प्रवेष्टव्यं, तम्मि पविट्ठा उस्सग्गेण कत्तियपुण्णिमं जाव अच्छंति । अववादेण मग्गसिरबहुलदसमी जाव ताव तम्मि एगखेत्ते अच्छंति । दसरायग्गहणातो अववातो दंसितो—अण्णे वि दो दसराता अच्छेज्जा । अववातेण मग्गसिरमासं तत्रैवास्ते इत्यर्थः ॥३१४६॥ कहं पुण वासापाउग्गं खेत्तं पविसंति ? इमेण विहिणा—

बाहिट्ठिया वसभेहिं, खेत्तं गाहेत्तु वासपाऊग्गं ।
कप्पं कहेत्तु ठवणा, सावणबहुलस्स पंचाहे ॥३१५०॥

---

१. गा० ३१४४ ।

बाहिट्ठिय त्ति । जत्थ आसाढमासकप्पो कतो, अण्णत्थ वा आसण्णे ठिता वाससामायारीखेत्तं वसभेहिं गाहेंति—भावयन्तीत्यर्थः । आसाढपुण्णिमाए पविट्ठा, पडिवयाओ आरब्भ पंचदिणाइं संथारग तण-डगल-च्छार-मल्लादीयं गेण्हंति । तम्मि चेव पणगरातीए पज्जोसवणाकप्पं कहेंति, ताहे सावणबहुलपंचमीए वासकालसामायारिं ठवेंति ॥३१५०॥

एत्थ उ अणभिग्गहियं, वीसतीराइं सवीसतिं मासं ।
तेण परमभिग्गहियं, गिहिणातं कत्तिओ जाव ॥३१५१॥

"एत्थं" त्ति । एत्थ आसाढपुण्णिमाए सावणबहुलपंचमीए वासपज्जोसविए वि अप्पणो अणभिग्गहियं । अहवा—जति गिहत्था पुच्छंति—"अज्जो तुब्भे एत्थ वरिसाकालं ठिया अह ण ठिया ?", एवं पुच्छिएहिं "अणभिग्गहियं" त्ति संदिग्धं वक्तव्यं, इह अन्यत्र वाद्यापि निश्चयो न भवतीत्यर्थः । एवं संदिग्धं कियत्कालं वक्तव्यं ? उच्यते—वीसतिरायं, सवीसतिरायं मासं । जति अभिवड्ढियवरिसं तो वीसतिरातं जावं अणभिग्गहियं । अह चंदवरिसं तो सवीसतिरायं मासं जाव अणभिग्गहियं भवति । "तेण" त्ति तत्कालात् परतः अप्पणो, अभिरामुख्येन गृहीतं अभिगृहीतं, इह व्यवस्थितिः इति, गिहीण य पुच्छंताण कहेंति—"इह ठितामो वरिसाकालं" ति ॥३१५१॥ किं पुण कारणं वीसतिराते सवीसतिराते वा मासे वागते अप्पणो अभिग्गहियं गिहिणातं वा कहेंति, आरतो ण कहेंति ? उच्यते—

असिवाइकारणेहिं, अहव न वासं च सुट्ठु आरद्धं ।
अहिवड्ढियम्मि वीसा, इयरेसु सवीसतीमासो ॥३१५२॥

कयाइ असिवं भवे, आदिग्गहणातो रायदुट्ठाइ, वासावासं ण सुट्ठु आरद्धं वासितुं, एवमादीहिं कारणेहिं जइ अच्छंति तो आणातिता दोसा । अह गच्छति तो गिहत्था भणंति—एते सव्वण्णुपुत्तगा ण किं चि जाणंति, मुसावायं च भासंति । "ठितामो" त्ति भणित्ता जेण णिग्गता लोगो य भणेज्ज—साहू एत्थं वरिसारत्तं ठिता अवस्सं वासं भविस्सति, ततो धण्णं विक्किणंति, लोगो घरातीणि छादेति, हलादिकम्माणि वा संठवेति । अभिग्गहिते गिहिणाते य आरतो कए जम्हा एवमादिया अधिकरणदोसा तम्हा अभिवड्ढियवरिसे वीसतिराते गते गिहिणातं करेंति, तिसु चंदवरिसे सवीसतिराते मासे गते गिहिणातं करेंति । जत्थ अधिकमासो पडति वरिसे तं अभिवड्ढियवरिसं भण्णति । जत्थ ण पडति तं चंदवरिसं । सो य अधिमासगो जुगस्स अंते मज्झे वा भवति । जति अंते तो णियमा दो आसाढा भवंति । अह मज्झे तो दो पोसा । सीसो पुच्छति—"कम्हा अभिवड्ढियवरिसे वीसतिरातं, चंदवरिसे सवीसतिमासो ?" उच्यते—जम्हा अभिवड्ढियवरिसे गिम्हे चेव सो मासो अतिक्कंतो तम्हा वीसदिणा अणभिग्गहियं तं कीरति, इयरेसु तीसु चंदवरिसेसु सवीसतिमासा इत्यर्थः ॥३१५२॥

एत्थ उ पणगं पणगं, कारणियं जाव सवीसतीमासो ।
सुद्धदसमीठियाण व, आसाढी पुण्णिमोसवणा ॥३१५३॥

एत्थ उ आसाढे पुण्णिमाए ठिया डगलादीयं गेण्हंति, पज्जोसवणकप्पं च कहेंति पंचदिणा, ततो सावणबहुलपंचमीए पज्जोसवेंति । खेत्ताभावे कारणे पणगे संवुड्ढे दसमीए पज्जोसवेंति, एवं पण्णरसीए । एवं पणगवुड्ढी ताव कज्जति जाव सवीसतिमासो पुण्णो । सो य सवीसतिमासो च भद्दवयसुद्धपंचमीए युज्जति । अह आसाढसुद्धदसमीए वासाखेत्तं पविट्ठा । अहवा—जत्थ आसाढ-

मासकप्पो कओ तं वासपाउग्गं खेत्तं, अण्णं च णत्थि वासपाउग्गं ताहे तत्थेव पज्जोसवेंति । वासं च गाढं अणुवरयं आढत्तं, ताहे तत्थेव पज्जोवसेंति । एक्कारसीओ आढवेउं डगलादीतं गेण्हंति, पज्जोसवणाकप्पं कहेंति, ताहे आसाढपुण्णिमाए पज्जोसवेंति । एस उस्सग्गो । सेसकालं पज्जोसवेंताणं अववातो । अववाते वि सवीसतिरातमासाती परेण अतिक्कमेउं ण वट्टति । सवीसतिराते मासे पुण्णे जति वासखेत्तं ण लब्भति तो रुक्खहेट्ठा वि पज्जोसवेयव्वं । तं च पुण्णिमाए पंचमीए दसमीए एवमादिपव्वेसु पज्जोसवेयव्वं णो अपव्वेसु । सीसो पुच्छति ''इयाणिं कहं चउत्थीए—अपव्वे पज्जोसविज्जति ?''

आयरिओ भणति—''कारणिया चउत्थी अज्जकालगायरिएण पवत्तिया । कहं ? भण्णते कारणं—कालगायरिओ विहरंतो 'उज्जेणिं' गतो । तत्थ वासावासं ठिओ । तत्थ णगरीए 'बलमित्तो' राया। तस्स कणिट्ठो भाया 'भाणुमित्तो' जुवराया । तेसिं भगिणी 'भाणुसिरी' णाम । तिसे पुत्तो 'बलभाणू' णाम । सो पगितिभद्दविणीययाए साहू पज्जुवासति । आयरिएहिं से धम्मो कहितो—पडिबद्धो [१]पव्वाविओ य । तेहि य बलमित्त-भाणुमित्तेहिं रुट्ठेहिं कालगज्जो पज्जोसविते णिव्विसतो कतो ।

केति आयरिया भणंति—जहा बलमित्त-भाणुमित्ता कालगायरियाणं भागिणेज्जा भवंति । ''माउलो'' त्ति काउं महंतं आयरं करेंति, अब्भुट्ठाणादियं । तं च पुरोहियस्स अप्पत्तियं, भणाति य एस सुद्दपासंडो वेतादिबाहिरो, रण्णो अग्गतो पुणो पुणो उल्लावेंतो आयरिएण णिप्पिट्ठप्पसिणवागरणो कतो । ताहे सो पुरोहितो आयरियस्स पदुट्ठो रायाणं अणुलोमेहिं विप्परिणामेति । एते रिसितो महाणुभावा, एते जेण पहेणं गच्छंति तेण पहेणं जति रण्णो जणो गच्छति पताणिं वा अक्कमइ तो असिवं भवति, तम्हा विसज्जेहि, ताहे विसज्जिता । अण्णे भणंति—

रण्णा उवाएण विसज्जिता । कहं ? सव्वम्मि णगरे किल रण्णा अणेसणा करावित, ताहे से णिग्गता । एवमादियाण कारणाण अण्णतमेण णिग्गता विहरंता ''पतिट्ठाणं'' णगरं तेण पट्ठिता । पतिट्ठाणसमणसंघस्स य अज्जकालगेहिं संदिट्ठ-जावाहं आगच्छामि ताव तुब्भेहिं णो पज्जोसवियव्वं । तत्थ य 'सायवाहणो' राया सावतो, सो य कालगज्जं एंतं सोउं णिग्गतो अभिमुहो समणसंघो य, महाविभूईए पविट्ठो कालगज्जो । पविट्ठेहिं य भणियं—''भद्दवयसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जति'', समणसंघेण पडिवण्णं । ताहे रण्णा भणियं—तद्दिवसं मम लोगाणुवत्तीए इंदो अणुजाएयव्वो होहीति, साहूचेतिते ण पज्जुवासेस्सं, तो छट्ठीए पज्जोसवणा कज्जउ । आयरिएहिं भणियं—ण वट्टइ अतिकामेउं। ताहे रण्णा भणियं—अणागयं चउत्थीए पज्जोसविज्जति । आयरिएण भणियं—एवं भवउ। ताहे चउत्थीए पज्जोसवियं । एवं जुगप्पहाणेहिं चउत्थी कारणे पवत्तिता । सच्चेवाणुमता सव्वसाधूणं । रण्णा अंतेपुरियाओ भणिता—तुब्भे अमावासाए उववासं काउं पडिवयाए सव्वखज्ज-भोज्जविहीहिं साधू उत्तरपारणए पडिलाभेत्ता पारेह, पज्जोवसणाए अट्ठमं ति काउं पडिवयाए उत्तरपारणयं भवति, तं च सव्वलोगेण वि कयं, ततो पभिति 'मरहट्ठविसए' 'समणपूय' त्ति छणो पवत्तो ॥३१५४॥ इयाणिं पंचगपरिहाणिमधिकृत्य कालावग्रह उच्यते—

---

१. राजपुत्रत्वात् ।

इय सत्तरी जहण्णा, असति नउती दसुत्तरसयं च ।
जति वासति मग्गसिरे, दसरायं तिन्नि उक्कोसा ॥३१५४॥

पण्णासा पाडिज्जति, चउण्ह मासाण मज्झओ ।
ततो उ सत्तरी होइ, जहण्णो वासुवग्गहो ॥३१५५॥

इय इति उपप्रदर्शने, जे आसाढचाउम्मासियातो सवीसतिमासे गते पज्जोसवेंति तेसिं सत्तरि दिवसा जहण्णो वासकालोग्गहो भवति । कहं सत्तरी ? उच्यते—चउण्हं मासाणं वीसुत्तरं दिवससयं भवति—सवीसतिमासो पण्णासं दिवसा, ते वीसुत्तरसयमज्झाओ सोहिया, सेसा सत्तरी । जे भद्दवयबहुलदसमीए पज्जोसवेंति तेसि असीतिदिवसा मज्झिओ वासकालोग्गहो भवति । जे सावणपुण्णिमाए पज्जोसवेंति तेसिं णउतिं चेव दिवसा मज्झिओ चेव वासकालोग्गहो भवति । जे सावणबहुलदसमीए पज्जोसवेंति तेसिं दसुत्तरं दिवससयं मज्झिमो चेव वासकालोग्गहो भवति । जे आसाढपुण्णिमाए पज्जोसविंति तेसिं वीसुत्तरं दिवससयं जेट्ठो वासुग्गहो भवति । सेसंतरेसु दिवसपमाणं वत्तव्वं । एवमादिपगारेहिं वरिसारत्तं एगखेत्ते अच्छिता कत्तियचाउम्मासियपडिवयाए अवस्सं णिग्गंतव्वं। अह मग्गसिरमासे वासति चिक्खल्लजलाउला पंथा तो अववातेण एक्कं उक्कोसेणं तिण्णि वा—दास राया जाव तम्मि खेत्ते अच्छंति, मार्गसिरपौर्णमासी यावदित्यर्थः । मग्गसिरपुण्णिमाए जं परतो जति वि णिग्गच्छंति तो चउगुरुगा । एवं पंचमासितो जेट्ठोग्गहो जातो ॥३१५५॥

काऊण मासकप्पं, तत्थेव ठियाण तीतमग्गसिरे ।
सालंबणाण छम्मासिओ उ जेट्ठोग्गहो भणितो ॥३१५६॥

जम्मि खेत्ते कतो आसाढमासकप्पो, तं च वासावासपाउग्गं खेत्तं, अण्णम्मि अलद्धे वासपाउग्गे खेत्ते जत्थ आसाढमासकप्पो कतो तत्थेव वासावासं ठिता, तीसे वासवासे चिक्खल्लाइएहिं कारणेहिं तत्थेव मग्गसिरं ठिता, एवं सालंबणाण कारणे अववातेण छम्मासितो जेट्ठोग्गहो भवतीत्यर्थः ॥३१५६॥

जइ अत्थि पयविहारो, चउपडिवयम्मि होइ णिग्गमणं ।
अहवा वि अणिंतस्स, आरोवणा पुव्वनिद्दिट्ठा ॥३१५७॥

वासाखेत्ते णिव्विग्घेण चउरो मासा अच्छिउं कत्तियचाउम्मासं पडिक्कमिउं मग्गसिरबहुल-पाडिवयाए णिग्गंतव्वं एस चेव चउपाडिवओ । चउपाडिवए अणिंताणं चउलहुगा पच्छित्तं । अहवा—अणिंताण । अविसद्दातो एसेव चउलहु सवित्थारो जहा पुव्वं वण्णिओ णितीयसुत्ते संभोगसुत्ते वा तहा दायव्वो ॥३१५७॥ चउपाडिवए अप्पत्ते अतिक्कंते वा णिंते कारणे निद्दोसा । तत्थ अपत्ते इमे कारणा—

राया कुंथू सप्पे, अगणिगिलाणे य थंडिलस्सऽसती ।
एएहिं कारणेहिं, अप्पत्ते होइ णिग्गमणं ॥३१५८॥

राया दुट्ठो, सप्पो वा वसहिं पविट्ठो, कुंथूहि वा वसही संसत्ता, अगणिणा वा वसही दड्ढा, गिलाणस्स पडिचरणट्ठा, गिलाणस्स वा ओसहहेउं, थंडिलस्स वा असतीते एतेहिं कारणेहिं अप्पत्ते चउपाडिवए णिग्गमणं भवति ॥३१५८॥ अहवा—इमे कारणा—

काइयभूमी संथारए य संसत्तं दुल्लभे भिक्खे ।
एएहिं कारणेहिं, अप्पत्ते होति णिग्गमणं ॥३१५९॥

काइयभूमी संसत्ता, संथारगा वा संसत्ता, दुल्लभं वा भिक्खं जातं, आयपरसमुत्थेहिं वा दोसेहिं मोहोदओ जाओ, असिवं वा उप्पण्णं, एतेहिं कारणेहिं अप्पत्ते णिग्गमणं भवति ॥३१५९॥ चउप्पाडिवए अइक्कंते निग्गमो इमेहिं कारणेहिं–

वासं न उवरमती, पंथा वा दुग्गमा सचिक्खिला ।
एएहिं कारणेहिं, अइक्कंते होइ णिग्गमणं ॥३१६०॥

अइक्कंते वासाकाले वासं नोवरमइ, पंथो वा दुग्गमो, अइजलेण सचिक्खल्लो य, एवमाइएहिं कारणेहिं चउपाडिवए अइक्कंते णिग्गमणं ण भवति ॥३१६०॥ अहवा–इमे कारणा–

असिवे ओमोयरिए, रायदुट्ठे भए व गेलण्णे ।
एतेहिं कारणेहिं, अइक्कंते होयऽनिग्गमणं ॥३१६१॥

बाहिं असिवं ओमं वा, बाहिं वा रायदुट्ठं, बोहिगादिभयं वा आगाढं, आगाढकारणेण वा ण णिग्गच्छंति । एतेहिं कारणेहिं चउपाडिवए अतिक्कंते अणिग्गमणं भवति ॥३१६१॥ एसा कालठवणा ।

इयाणिं [१]खेत्तठवणा–

उभओ वि अद्धजोयण, अद्धकोसं च तं हवति खेत्तं ।
होति सकोसं जोयण, मोत्तूणं कारणज्जाए ॥३१६२॥

"उभओ" त्ति पुव्वावरेण, दक्खिणुत्तरेण वा । अहवा–उभओ त्ति सव्वओ समंता । अद्धजोयणं सह अद्धकोसेण एगदिसाए खेत्तपमाणं भवति । उभयतो वि मेलितं गतागतेण वा सकोसजोयणं भवति । अववायकारणं मोत्तूण एरिसं उस्सग्गेण खेत्तं भवइ । तं वासासु एरिसं खेत्तठवणं ठवेइ–क्षेत्रावग्रहं गृह्णातीत्यर्थः ॥३१६२॥

सो य खेत्तावग्गहो संववहारं पडुच्च छद्दिसिं भवति । जओ भण्णति–

उड्ढमहे तिरियम्मि य, सक्कोसं हवति सव्वतो खेत्तं ।
इंदपदमादिएसु, छद्दिसि सेसेसु चउ पंच ॥३१६३॥

उड्ढं, अहो, पुव्वादीयाओ य तिरियदिसाओ चउरो, एतासु छसु दिसासु गिरिमज्झट्ठिताण सव्वतो समंता सकोसं जोयणं खेत्तं भवति । तं च इंदपयपव्वते छद्दिसिं संभवति । इंदपयपव्वतो–गयग्गपव्वतो भण्णति । तस्स उवरिं गामो, अधे वि गामो, मज्झिमसेढीए वि गामो । मज्झिमसेढी ठिताण य चउद्दिसं पि गामो, एवं छदिसिं पि गामाण संभवो भवति । आतिग्गहणातो अण्णो वि जो एरिसो पव्वतो भवति तस्स वि छद्दिसाओ संभवति । सेसेसु पव्वतेसु चउदिसं पंचदिसं वा भवति । समभूमीए वा णिव्वाघाएण चउद्दिसिं संभवति ॥३१६३॥ वाघायं पुण पडुच्च–

तिण्णि दुवे एक्का वा, वाघाएणं दिसा हवति खेत्तं ।
उज्जाणाउ परेणं, छिण्णमडंबं तु अक्खेत्तं ॥३१६४॥

एगदिसाए वाघाते तिसु दिसासु खेत्तं भवति, दोसु दिसासु वाघाते दोसु दिसासु खेत्तं भवति,

---

१. गा० ३१४० ।

तिसु दिसासु वाघाते एगदिसं खेत्तं भवइ । को पुण वाघातो ? महाडवी पव्वतादिविसमं वा समुद्दादि जलं वा, एतेहिं कारणेहिं ताओ चउदिसाओ रुद्धाओ, जेण ततो गामगोकुलादी णत्थि । जं दिसं वाघातो तं दिसं अग्गुज्झाणं जाव खेत्तं भवइ परमो अखेत्तं । जं छिण्णमडंबं तं अखेत्तं । छिण्णमडंबं णाम जस्स गामस्स णगरस्स वा उग्गहे सव्वासु दिसासु अण्णो गामो णत्थि गोकुलं वा तं छिण्णमडंबं, तं च अखेत्तं भवति ॥३१६४॥ णतिमातिजलेसु इमा विही—

दगघट्टतिण्णि सत्त व, उडुवासासु ण हणंति ते खेत्तं ।
चउरट्ठाति हणंती, जंघद्धेक्को वि तु परेण ॥३१६५॥

दगघट्टो णाम जत्थ अद्धजंघा जाव उदगं । उदुबद्धे तिण्णि दगसंघट्टा खेत्तोवघातं ण करेंति, ते भिक्खायरियाए गयागएण छ भवंति, ण हणंति य खेत्तं । वासासु सत्त दगसंघट्टा ण हणंति खेत्तं, ते गतागतेण चोद्दस । उडुबद्धे चउरो दगसंघट्टा उवहणंति खेत्तं, ते गयागतेण अट्ठ । वासासु अट्ठ दगसंघट्टा उवहणंति खेत्तं, ते गतागतेण सोलस । जत्थ जंघद्धातो परतो उदगं तेण एगेण वि उडुबद्धे वासासु उवहम्मति खेत्तं, सो य लेवो भण्णति ॥३१६५॥ गता खित्तट्ठवणा ।

इयाणिं ''[१]दव्वट्ठवणा''

दव्वट्ठवणाहारे[१], विगती[२] संथार[३] मत्तए[४] लोए[५] ।
सच्चित्ते[६] अच्चित्ते[७], वोसिरणं गहणधरणादी ॥३१६६॥

आहारे, विगतीसु, संथारगो, मत्तगो, लोयकरणं, सचित्तो सेहो, डगलादियाण य अचित्ताणं उडुबद्धे गहियाणं वोसिरणं, वासावासपाउग्गाण संथारादियाण गहणं, उडुबद्धे वि गहियाण वत्थपायादीण धरणं डगलगादियाण य कारणेण ॥३१६६॥

तत्थ—''[२]आहारे'' त्ति पढमद्दारं अस्य व्याख्या—

पुव्वाहारोसवणं, जोगविवड्ढी य सत्तिओ गहणं ।
संचइयमसंचइए, दव्वविवड्ढी पसत्थाओ ॥३१६७॥

जो उडुबद्धितो आहारो सो ओसवेयव्वो ओसारेयव्वो—परित्यागेत्यर्थः । जइ से आवसग्गपरिहाणी ण भवति तो चउरो मासा उववासी अच्छउ । अह ण तरति तो चत्तारि मासा एगदिवसूणा, एवं तिण्णि मासा अच्छित्ता पारेउ, एवं जइ जोगपरिहाणी तो दो मासा अच्छउ, मासं वा, अतो परं दिवसहाणी, जाव दिणे दिणे आहारेउ जोगवुड्ढीए । इमा जोगवुड्ढी जो नमोक्कारइत्तो सो पोरसीए पारेउ, जो पोरिसित्तो सो पुरिमड्ढेण पारेउ, जो पुरिमड्ढइत्तो सो एक्कासणयं करेतु । एवं जहासत्तीए जोगवुड्ढी कायव्वा । किं कारणं ? वासासु चिक्खलचिलिविले दुक्खं भिक्खागहणं कज्जति, सण्णाभूमिं च दुक्खं गम्मति, थंडिला हरियमातिएहिं दुव्विसोज्झा भवंति । ''आहारट्ठवण'' त्ति गयं । इदाणि ''[३]विगतिट्ठवण'' त्ति दारं—''संचइय'' त्ति पच्छद्धं । विगती दुविहा—संचतिया असंचितिया य । तत्थ असंचइया—खीरं दधी मंसं णवणीअं, केति ओगाहिमगा य । सेसा उ घय-गुल-मधु-मज्ज-खज्जगविहाणा व संचतिगाओ । तत्थ मधु-मंस-मज्जविहाणा य अप्पसत्थाओ, सेसा

१. गा० ३१४० । २. गा० ३१६६ । ३. गा० ३१६६ ।

खीरातिया पसत्थाओ । पसत्थासु वा कारणे पमाणपत्तासु घेप्पमाणीसु दव्वविवड्ढी कता भवति ॥३१६७॥ णिक्कारणे अण्णतरविगतीगहणे दोष उच्यते—

विगतिं विगतीभीतो, वियतिगयं जो उ भुंजए भिक्खू ।
विगती विगतिसहावा, विगती विगतिं बला नेइ ॥३१६८॥

विगतिं खीरातियं । विभत्सा विकृता वा गती विगती, सा य तिरियगती णरगगती कुमाणुसत्तं कुदेवत्तं च । अहवा—विविधा गती संसार इत्यर्थः । अहवा—संजमो, असंजमो विगती, तस्स भीतो । "विगतिगयं"—त्ति विगतिप्रतिकारमित्यर्थः । विगती वा जम्मि वा दव्वे गता तं विगतिगतं भण्णति तं पुण भत्तं पाणं वा । जो तं विगतिं विगतिगतं वा भुंजति तस्स इमो दोसो—"विगती विगतिसभाव" त्ति, खीरातिया भुत्ता जम्हा संजमसभावातो विगतिसभावं करेति, कारणे—कज्जं उवचरित्ता पढिज्जति, विगती विगतिसभावा । अहवा—विगयसभावा, विकृतस्वभावं विगतसभावं वा जो भुंजति तं सा बला णरगातियं विगतिं णेति प्रापयतीत्यर्थः । जम्हा एते दोसा तम्हा विगतीतो णाहारेयव्वातो उड्डबद्धे, वासासु विसेसेण। जम्हा साधारणे काले अतीवमोहुब्भवो भवति, विज्जुगज्जियाइएहिं य तम्मि काले मोहो दिप्पति । कारणे बितियपदेण—गेण्हेज्जा आहारेज्ज वा—गेलाणो वा आहारेज्ज । एवं आयरिय-बाल-वुड्ढ-दुब्बलस्स वा गच्छोवग्गहट्ठा घेप्पेज्जा ॥३१६८॥ अधवा—सड्ढा णिब्बंधेण णिमंतेज्जा पसत्थाहिं विगतीहिं तत्थिमा विधी—

पसत्थविगतिग्गहणं, तत्थ वि य असंचइय उ जा उत्ता ।
संचतिय ण गेण्हंति, गिलाणमादीण कज्जट्ठा ॥३१६९॥

पसत्थविगतीतो खीरं दहिं णवणीयं घयं गुलो तेल्लं ओगाहिगं च, अप्पसत्थाओ महु-मज्ज-मंसा । आयरिय-बाल-वुड्ढाइयाणं कज्जेसु पसत्था असंचइयाओ खीराइया घेप्पंति, संचतियाओ घयाइया ण घेप्पंति, तासु खीणासु जया कज्जं तया ण लब्भति, तेण तातो ण घेप्पंति । अह सड्ढा णिब्बंधेण भणेज्ज ताहे ते वत्तव्वा—"जया गिलाणाति कज्जं भविस्सति तया घेच्छामो, बाल-वुड्ढ-सेहाण य बहूणि कज्जाणि उप्पज्जंते, महंतो य कालो अच्छियव्वो, तम्मि उपण्णे कज्जे घेच्छामो" त्ति। ताहे सड्ढा भणंति—अम्ह घरे अत्थि वित्तं विगतिदव्वं च पभूतमत्थि, जाविच्छा ताव गेण्हह, गिलाणकज्जे वि दाहामो", एवं भणिता संचइयं पि गेण्हंति । गिण्हंताण य अवोच्छिण्णे भावे भणंति—अलाहि पज्जतं । सा य गहिता बाल-वुड्ढ-दुब्बलाणं दिज्जति, बलिय-तरुणाणं ण दिज्जति । एवं पसत्थविगतिग्गहणं ॥३१६९॥

विगतीए गहणम्मि वि, गरहितविगतिग्गहो व कज्जम्मि ।
गरहा लाभपमाणे, पच्चयपावप्पडीघातो ॥३१७०॥

महु-मज्ज-मंसा गरहियविगतीणं गहणं आगाढे गिलाणकज्जं "गरहालाभपमाणे" त्ति गरहंतो गेण्हति, अहो ! अकज्जमिणं किं कुणिमो, अण्णहा गिलाणो ण पण्णप्पइ, गरहियविगतिलाभे य पमाणपत्तं गेण्हंति, णो अपरिमितमित्यर्थः, जावतिता गिलाणस्स उवउज्जति तंमत्ताए घेप्पमाणीए दातारस्स पच्चयो भवति, पावं अप्पणो अभिलासो तस्स य पडिघाओ कओ भवति, पावदिट्ठीणं वा

पडिघाओ कओ भवति, सुवत्तं एते गिलाणट्ठा गेण्हंति ण जीहलोलयाए त्ति ॥३१७०॥ एवं विगतिट्ठवणा गता । इयाणिं ''[१]संथारग'' त्ति दारं–

कारणे उडुगहिते उज्झिऊण गेण्हंति अण्णपरिसाडिं ।
दाउं गुरुस्स तिण्णि उ, सेसा गेण्हंति एक्केक्कं ॥३१७१॥

उडुबद्धकाले जे संथारगा कारणे गहिता ते वोसिरित्ता अण्णे संथारगा अपरिसाडी वासाजोग्गे गेण्हंति, गुरुस्स तिण्णि दाउं णिवाते पवाते णिवायपवाए । सेसा साधू अहाराइणिया एक्केक्कं गेण्हंति ॥३१७१॥ इयाणिं ''[२]मत्तए'' त्ति दारं–

उच्चारपासवणखेलमत्तए तिण्णि तिण्णि गेण्हंति ।
संजमआएसट्ठा, भिज्जेज्ज व सेस उज्झंति ॥३१७२॥

वरिसाकाले उच्चारमत्तया तिण्णि, पासवणमत्तया तिण्णि, तिण्णि खेलमत्तया । एवं णव घेत्तव्वा । इमं कारणं–जं संजमणिमित्तं वरिसंते एगम्मि वाहडिते बितिएसु कज्जं करेति, असिवादिकारणिएसु अट्ठजायकारणिसु वा आएसिए आगतेसु दलएज्जा, सेसेहिं अप्पणो कज्जं करेंति। एगमादिभिण्णेण वा सेसेहिं कज्जं करेंति । (एस सा) जे उडुबद्धगहिया ते उज्झंति । उभयो कालं पडिलेहणा कज्जति । दिया रातो वा अवासंते जति परिभुंजति तो मासलहुं, जाहे वासं पडति ताहे परिभुंजंति, जेण अभिग्गहो गहितो सो परिट्ठवेति, उल्लो ण णिक्खिवियव्वो, अपरिणयसेहाणं ण वाइज्जति ॥३१७२॥ ''मत्तए'' त्ति गयं । इयाणिं ''[३]लोए'' त्ति–

धुवलोओ य जिणाणं, णिच्चं थेराण वासवासासु ।
असहू गिलाणस्स व, तं रयणिं तू णऽतिक्कामे ॥३१७३॥

उडुबद्धे वासावासासु वा जिणकप्पियाणं धुवलोओ दिने दिने कुर्वन्तीत्यर्थः । थेराण वि वासासु धुवलोओ चेव । असहुगिलाणा पज्जोसवणरातिं णातिक्कमंति । आउक्काइयविराहणाभया संसज्जणभया य वासासु धुवलोओ कज्जति ॥३१७३॥ ''लोए'' त्ति गतं । इदाणिं ''[४]सचित्ते'' त्ति–

मोत्तुं पुराण-भावितसड्ढे सच्चित्तसेसपडिसेहो ।
मा होहिति णिद्धम्मो, भोयणमोए य उड्डाहो ॥३१७४॥

जो पुराणो भावियसड्ढो वा एते मोत्तुं सचित्ते–सेसा सचित्ता ण पव्वाविज्जति । अह पव्वाविंति सेहं सेहिं वा तो चउगुरुं आणातिया य दोसा । वासासु पव्वावितो मा होहिति णिद्धम्मो तेण ण पव्वाविज्जति । कहं णिद्धम्मो भवति ? उच्यते–'वासंते मा णीहि, आउक्कायातियविराधणा भवति' । ताहे सो भणाति–जइ एते जीवा तो णिसग्गमाणे किं भिक्खं गेण्ह ? वियारभूमिं वा गच्छह ? कहं वा तुब्भे अहिंसगा ? साहवो य वासासु चलणे ण धोवंति पायलेहणियाए णिल्लिहंति ताहे सो भणाति–असुद्धं चिक्खल्लं मद्दिऊण पाए ण धोवंति, असुइणो एते, समलस्स य कओ धम्मो ? । एवं विप्परिणतो उण्णिक्खमति । अहवा–सागारियं साहवो पाए धोवंति ततो असामायारी पाउसदोसो य, असमंजसं ति काउं ण सहति णिद्धम्मो अ भवति । ''भोयणमोए य उड्डाहो'' त्ति वासे

---

१. गा० ३१६६ । २. गा० ३१६६ । ३. गा० ३१६६ । ४. गा० ३१६६ ।

पडते अभाविते सेहे [१]बहीतो आणितं जइ मंडलीए भुंजति तो उड्डाहं करेति, पाणा इव एए परोप्परं संकट्टं भुंजंति । अहंपि णेहिं विट्टालितो । ताहे विप्परिणमति। अह मंडलीए ण भुंजति ताहे असामायारी समया य ण कता भवति । जति वा ते साहवो णिस्सग्गमाणे मत्तएसु उच्चार-पासवणाति आयरंति, सो य तं दट्ठुं विप्परिणामेज्जा, उण्णिक्खते, उड्डाहं च करेति । अह साहवो सागारियं ति काउं धरेंति तो आयविराहणा । अह णिसग्गंते चेव णिसिरंति तो संजमविराधणा । जम्हा एवमादिदोसा तम्हा वासासु पज्जोसवेति ण पव्वावेतव्वो । पुराणसड्ढेसुं पुण एते दोसा ण भवंति, तेण ते पव्वाविज्जंति । कारणे पज्जोसविते वि पव्वाविज्जति । अतिसति जाणिऊण जत्थ पुव्वुत्ता दोसा णत्थि तं पव्वावेति । अणतिसति वि अव्वोच्छित्तिमाइकारणेहिं पव्वावेति । इमं च जयणं करेति— विचित्तं महतिं वसहिं गेण्हंति, आउक्कायजीवचोदणे पण्णविज्जति, असरीरो धम्मो णत्थि त्ति काउं, मंडलीमोएसु जत्तं करेंति, अण्णाए वसहीए ठवेंति, जत्तेण य उवचरंति ॥३१७४॥ "सचित्ते" त्ति गयं। इदाणिं "[२]अचित्ते" त्ति दारं—

डगलच्छारे लेवे, छड्डुण गहणे तहेव धरणे य ।
पुंछण-गिलाण-मत्तग, भायणभंगाति हेतू से ॥३१७५॥

छार-डगल-मल्लमातीणं गहणं, वासाउडुबद्धगहियाण वोसिरणं, वत्थातियाण धरणं, छाराइयाण वा धरणं, जति ण गेण्हंति सो मासलहुं, जा य तेहिं विणा गिलाणातियाण विराहणा, भायणे वि विराधिते लेवेण विणा । तम्हा घेत्तव्वाणि । छारो गहितो एक्कोणे घणो कज्जति । जति ण कज्जं तलियाहिं तो विगिंचिज्जंति । अह कज्जं ताहि तो छारपुंजस्स मज्झे ठविज्जति । पणयमादि-संसज्जणभया उभयं कालं तलियाडगलादियं च सव्वं पडिलेहंति । लेवं संजोएत्ता अप्पडिभुज्ज-माणभायणहेट्ठा पुप्फगे, कीरति, छारेण य उग्गुंठिज्जति, सह भायणेण पडिलेहिज्जंति, अह अपडिभुज्जमाणं भायणं णत्थि ताहे भल्लगं लिंपिऊण पडिहत्थं भरिज्जति । एवं काणइ गहणं काणइ वोसिरणं काणइ गहणधरणं ॥३१७५॥ "दव्वट्ठवणा" गता । इयाणिं "[३]भावट्ठवणा"

[२]इरिएसण[३] [४]भासाणं [५]मणवयसा[६] कायए[७] य [८]दुच्चरिते ।
[९]अहिकरणकसायाणं[१०], संवच्छरिए विओसवणं ॥३१७६॥

इरियासमिती एसणासमिती भासासमिती एतेसिं गहणे—आयाण-णिक्खेवणासमिती परिट्ठावणियासमिती य गहियातो । एतासु पंचसु वि समितीसु वासासु समिएण भवियव्वं । एवं उक्ते चोदगाह—"उदुबद्धे किं असमितेण भवितव्वं ? जेण वासासु पंचसु वि समितीसु उवउत्तेण भवियव्वमिति भणसु ?" आचार्याह—

कामं तु सव्वकालं, पंचसु समितीसु होति जतियव्वं ।
वासासु अहीकारो, बहुपाणा मेदिणी जेणं ॥३१७७॥

"कामं तु" । काममवधृतार्थे, यद्यपि सर्वकालं समितो भवति तहावि वासासु विसेसेण अहिकारो कीरइ जेणं तदा बहुपाणा मेदिणी आगासं च । मेदिणि त्ति पुढवी एवं ताव सव्वासिं सामण्णं भणियं ॥३१७७॥

---

१. वसहीओ अणिते । इत्यपि प्रत्यन्तरे । २. गा० ३१६६ । ३. गा० ३१४० ।

इदाणिं एक्केक्काए समितीए दोसा भणंति–

भासणे संपातिवहो, दुण्णेओ णेहछेदु ततियाए ।
इरितचरिमासु दोसु य, अपेह अपमज्जणे पाणा ॥३१७८॥

''भासणे'' त्ति भासासमितीते असमियस्स असमंजसं भासमाणस्स मक्खिगातिसंपातिमाण मुहे पविसंताण वधो भवति, आदिग्गहणातो आउक्कायफुसिता सचित्तपुढविरतो सचित्तवाओ य मुहे पविसति । ''ततिया'' एसणासमिती पडिक्कमणऽज्झयणे सुत्ताभिहिताणुक्कमेण वासासु उवउत्तस्स वि विराहणा, किं पुण अणुवउत्तस्स । उदउल्लपुरेकम्माणं च हत्थमत्ताणं णेहच्छेदं दुक्खं जाणंति स्निग्धकालत्वात् दुर्ज्ञेयो दुर्विज्ञेय आउक्काइयच्छेदो परिणती–अचित्तो भवतीत्यर्थः ।

''इरिए'' त्ति–इरियासमितताए अणुवउत्तो छज्जीवणिक्काए विराहेति । ''चरिमासु दोसु'' त्ति–आयाणणिक्खेवणासमिती पारिट्ठावणियासमिती य, एताओ दो चरिमाओ । एयासु अणुवउत्तो जइ पडिलेहणपमज्जणं ण करेति दुप्पडिलेहिय-दुप्पमज्जियं वा करेति ण पमज्जति वा, एयासु वि एवं छज्जिवणिकायविराहणा भवति । पंच समितीओ उदाहरणाओ जहा आवस्सए ॥३१७८॥

मण-वयण-कायगुत्तो, दुच्चरियातिं च णिच्चमालोए ।
अहिकरणे तु दुरूवग, पज्जोए चेव दुमए य ॥३१७९॥

मणेणं वायाए काएण य गुत्तो भवति । गुत्तीणं उदाहरणा जहा आवस्सए । जं किं चि मूलगुणे उत्तरगुणेसु समितीसु गुत्तीसु वा उदुबद्धे वासासु य दुच्चरियं तं वासासु खिप्पं आलोएयव्वं । इयाणिं–''अधिकरण'' त्ति–अधिकरणं कलहो भण्णति, तं च जहा 'चउत्थोद्देसे' वण्णियं तहा इहावि सवित्थरं दट्ठव्वं । तं च ण कायव्वं, पुव्वुपण्णं च ण उदीरियव्वं । पुव्वुपण्णं जइ कसायुक्कडताए न खामितं तो–पज्जोसवणासु अवस्सं विओसवेयव्वं । अधिकरणे इमे दिट्ठंता दुरूवगामोवलक्खियं, पज्जोतो, दमओ य ॥३१७९॥ तत्थ ''दुरूवग'' त्ति उदाहरणं–आयरियजणवयस्स अंतग्गामे एक्को कुंभारो । सो कुडगाणं भंडि भरिऊण पच्चंतगा दुरूतगं णामयं गतो । तेहिं य दुरूतगव्वेहिं गोहेहिं एगं बइल्लं हरिउकामेहिं भण्णति–

एगबतिल्लं भंडि, पासह तुब्भे वि डज्झंतखलहाणे ।
हरणे ज्झामाण भाणग, घोसणता मल्लजुद्धेसु ॥३१८०॥

''भो भो पेच्छह इमं अच्छेरं, एगेण बइल्लेण भंडी गच्छति'' । तेण वि कुंभकारेण भणियं ''पेच्छह भो इमस्स गामस्स खलहाणाणि डज्झंति'' । अतिगया भंडी गाममज्झे ठिता । तस्स तेहिं दुरूवगव्वेहिं छिद्दं लभिऊण एगो बइल्लो हडो । विक्कयं गया कुलाला, ते य गामिल्लया जातिता देह बइल्लं । ते भणंति–तुमं एक्केण चेव बइल्लेण आगयो । ते पुणो जातिता । जाहे ण देंति ताहे सरयकाले सव्वधण्णाणि खलधाणेसु कतानि, ताहे अग्गी दिण्णो । एवं तेण सत्त वरिसाणि झामिता खलधाणा । ताहे अट्ठमे वरिसे दुरूवगगामेल्लएहिं मल्लजुद्धमहे वट्टमाणो भाणगो भणितो–घोसिहि भो जस्स अम्हेहिं अवरद्धं तं खामेमो, जं च गहियं तं देमो, मा अम्ह सस्से दहउ । ततो भाणएण उग्घोसियं ॥३१८०॥

ततो कुंभकारेण भाणगो भणितो-भो ! इमं घोसेहि–

अप्पिणह तं बइल्लं, दुरूवगा तस्स कुंभकारस्स ।
मा भे डइहिति धण्णं, अण्णाणि वि सत्त वरिसाणि ॥३१८१॥

भाणगेण उग्घोसियं तं । तेहिं दुरूवगव्वेहि सो कुंभकारो खामितो । दिण्णो य से बइल्लो । इमो य से उवसंहारो– जति ता तेहिं असंजतेहिं अण्णाणीहिं होंतेहिं खामियं तेण वि खमियं, किमंग पुण संजएहिं नाणीहिं य । जं कयं तं सव्वं पज्जोसवणाए खामेयव्वं च, एवं करंतेहिं संजमाराहणा कता भवति ॥३१८१॥

अहवा–इमो दिट्ठंतो पज्जोओ त्ति–

चंपा अणंगसेणो, पंचऽच्छर थेर नयण दुम वलए ।
विह पास णयण सावग, इंगिणि उववाय णंदिवरे ॥३१८२॥

बोहण पडिमोद्दायण, पभाव उप्पाय देवदत्तद्दे ।
मरणुववाते तावस, नयणं तह भीसणा समणा ॥३१८३॥

गंधारगिरी देवय, पडिमा गुलिया गिलाणपडियरणं ।
पज्जोयहरण पुक्खर, रणगहणे णामओ सवणा ॥३१८४॥

इहेव जंबुद्दीवे 'चंपा' णाम णगरी, 'अणंसगेणो' णाम सुवण्णगारो । सो य अतीव थीलोलो । सो य रूववइं कण्णं पासति तं बहुं दविणजायं दाउं परिणेइ । एवं किल तेण पंच इत्थिसया परिणीया । सो ताहिं सद्धिं माणुस्सए भोगे भुंजमाणो विहरइ । इतो य 'पंचसेलं' णाम दीवं । तत्थ 'विज्जुमाली' णाम जक्खो परिवसइ । सो य चुतो । तस्स दो अग्गमहिसीतो 'हासा पहासा' य । ताओ भोगत्थिणीतो चिंतेति–किंचिं उवप्पलोभेमो । ताहिं य दिट्ठो 'अणंगसेणो' सुंदरे रूवे विउव्विऊण तस्स 'असोगवणियाए' णिलीणा । ताओ दिट्ठातो अणंगसेणेण । ततो य तस्स मणक्खेवकरे विब्भमे दरिसेंति । अक्खितो सो ताहिं, हत्थं पसारेउमारद्धो । ताहे भणितो–''जति ते अम्हेहिं कज्जं तो पंचसेलदीवं एज्जह'' त्ति भणित्ता ताओ अदंसणं गता । इयरो विविहप्पलावीभूओ असत्थो रण्णो पण्णगारं दाऊण उग्घोसणपडहं णीणावेति । इमं उग्घोसिज्जति–''जो अणंगसेणयं पंचसेलं दीवं पावेति तस्स सो दविणस्स कोडिं पयच्छति'' । एवं घुस्समाणे णावियथेरेण भणियं–''अहं पावेमि'' त्ति छिक्को पडहो । तस्स दिण्णा कोडी । तं दुवे गहियसंबला दूरूढा णावं । जाहे दूरं गया ताहे णाविएण पुच्छितो–किं चि अग्गतो जलोवरि पासंसि ? तेण भणियं ''ण व'' त्ति । जाहे पुणो दूरं गतो ताहे पुणो पच्छति, एतेण भणियं–किंचि माणुससिरप्पमाणं घणंजण-वण्णं दीसति । णाविएण भणियं–एस पंचसेलदीवणगस्स धाराए ठितो वडरुक्खो । एसा णावा एतस्स अहेण जाहित्ति, एयस्स परभागे जलावत्तो । तुमं किंचि संबलं घेत्तु दक्खो होउं वडसालं विलग्गेज्जसि । अहं पुण सह णावाए जलावत्ते गच्छीहामि । तुमं पुण जाहे जलं वेलाए उअत्तं भवति ताहे णगधाराए णगं आरुभित्ता परतो पच्चोरुभित्ता पंचसेलयं दीवं जत्थ ते अभिप्पेयं तत्थ गच्छेज्जसु । अण्णे भणंति–

तुमं एत्थ वडरुक्खे आरूढो ताव गच्छसु, जाव उ संज्झावेलाए महंता पक्खिणो आगमिष्यंति पंचसेलदीवातो । ते रातो वासित्ता पभाए पंचसेलगदीवं गमिस्संति । तेसिं चलणविलग्गो गच्छेज्जसु

जाव य सो थेरो एवं कहेति ताव संपत्ता वडरुक्खं णावा । अणंगसेणो वडरुक्खमारुढो । णावियथेरो सह णावाए जलावत्ते गतो । एतेसिं दोण्ह पगाराणं अन्नतरेण तातो दिट्ठातो । ताहिं संभट्ठो, भणिओ य ण एरिसेण असुइणा देहेण अम्हे परिभुज्जामो । किंचि बाल–तवचरणं काउं णियाणेण य इहे उववज्जसु, ताहे सह अम्हेहिं भोगे भुंजहसि । ताहिं य से सुस्सादुमंते पत्तपुप्फफले य दत्ते उदगं च। सीयलच्छायाए पासुत्तो । ताहिं य देवताहिं पासुत्तो चेव करयलपुडे छुभित्ता चंपाए सभवणे क्खित्तो, विबुद्धो य पासति–सभवणं सयणपरिजणं च । आढतो पलविउं ''हासे पहासे'' । लोगेण पुच्छिज्जंतो भणाति–दिट्ठं सुयमणुभूयं वत्तं पंचसेलए दीवे ।

तस्स य वयंसो णाइलो णाम सावओ, सो से जिणपण्णत्तं धम्मं कहेति–''एयं करेहि । ततो सोधम्माइसु कप्पेसु दीहकालठितीओ सह वेमाणिणीहिं उत्तमे भोगे भुंजिहिसि, किमेतेहिं वधूतेहिं वाणमंतरीएहिं अप्पकालट्ठितीएहिं'' । सो तं असद्दहंतो सयणपरियणं च अगणंतो णियाणं काउं इंगिणिमरणं पडिवज्जति । कालगओ उववण्णो पंचसेलए दीवे 'विज्जुमाली णाम जक्खो', हासपहासाहिं सह भोगे भुंजमाणो विहरति । सो वि णाइलो सावगो सामण्णं काउं आलोइअ-पडिक्कंते कालं काउं अच्चुत्ते कप्पे सामाणितो जातो । सो वि तत्थ विहरति ।

अण्णया णंदीसरवरदीवे अट्ठाहिमहिमणिमित्तं सयं इंदाणितेहिं अप्पणऽप्पणो णितोगेहिं णिउत्ता देवसंघा मिलंति । 'विज्जुमालि' जक्खस्स य आउज्जणियोगो । पडहमणिच्छंतो बला आणीतो देवसंघस्स य दूरत्थो आयोज्जं वायंतो, णाइलदेवेण दिट्ठो । पुव्वाणुरागेण तप्पडिबोहणत्थं च णाइलदेवो तस्स समीवं गतो । तस्स य तेयं असहमाणो पडहमंतरे देति । णाइलदेवेण पुच्छित्तो–मं जाणसि त्ति । विज्जुमालिणा भणियं–को तुब्भे सक्काइए इंदे ण याणइ ? देवेण भणियं–परभवं पुच्छामि, णो देवत्तं। विज्जुमालिणा भणियं–''ण जाणामि'' ।

ततो देवेण भणियं–''अहं ते परभवे चंपाए णगरीए वयंसओ आसी णाइलो णाम । तुमे तया मम वयणं ण कयं तेण अप्पिड्ढिएसु उववण्णो, तं एवं गए वि जिणप्पणीयं धम्मं पडिवज्जसु । धम्मो से कहितो, पडिवण्णो य । ताहे सो विज्जुमाली भणाति–इदाणिं किं मया कायव्वं ? अच्चुयदेवेण भणियं–बोहिणिमित्तं जिण-पडिमा अवतारणं करेहि । ततो विज्जुमाली अट्ठाहियमहिवन्ते गंतुं चुल्लिहिमवंतं गोसीसदारुमयं पडिमं देवयाणुभावेण णिव्वत्तेति, रयणविचित्ताभरणेहिं सव्वा-लंकारविभूसियं करेति, अण्णस्स य गोसीसचंदणदारुस्स मज्झे पक्खिवति, चिंतेति य ''कत्थिमं णिवेसेमि'' ।

इतो य समुद्दे वणियस्स पवहणं दुच्चा पुणो गहियं डोल्लति, तस्स य डोलायमाणस्स छम्मासा वट्टति । सो य वणिओ भीतोव्विग्गो धूवकडच्छुयहत्थो इट्ठदेवया-णमोक्कारपरो अच्छति । विज्जुमालिणा भणियं–''भो भो मणुया ! अज्जं पभाए इमं ते जाणपत्तं वीतीभए णगरे कूलं पाविहिति। इमं च गोसीसचंदणदारुं, पुरजणवयं उदायणं च रायाणं मेलेउं भणेज्जासि–एत्थ देवाहिदेवस्स पडिमं करेज्जह'' एसा देवाणवत्ती । तओ देवाणुभावेण, नावा पत्ता वीईभयं । तओ वणिओ अग्घं घेत्तुं गओ रायसमीवं, भणियं च तेण ''इत्थ गोसीसचंदणे देवाधिदेवस्स पडिमा कायव्वा'' । सव्वं जहावत्तं वणिएण रण्णो कहियं, गओ वणिओ । रण्णा वि पुरचतुवेज्जे(वण्णे)

मेलेउं अक्खियं अक्खाणयं । साद्दिआ वणकुट्टगा–''इत्थ पडिमं करेहि'' त्ति । कते अधिवासणे बंभणेहिं भणियं–देवाहिदेवो बंभणो तस्स पडिमा कीरउ, वाहितो कुठारो ण वहति । अण्णेहिं भणियं–विण्हु देवाधिदेवो । तहावि तं ण वहति । एवं खंदरुद्दाइया देवयगणा भाणेत्ता सत्थाणि वाहिताणि ण वहंति । एवं संकिलिस्संति । इतो य पभावतीए आहारो रण्णो उवसाहितो । जाहे राया तत्थऽवक्खित्तो ण गच्छती ताहे पभावतीए दासचेडी विसज्जिता–गच्छ रायाणं भणाहि–वेलाइक्कमो वट्टेति, सव्वमुवसाहियं किण्ण भुंजह त्ति ? गया दासचेडी, सव्वं कहियं । ततो रातिणा भणियं–सुहियासि, अम्हं इमेरिसो कालो वट्टति । पडिगया दासचेडी । ताए दासचेडीए सव्वं पभावतीए कहियं । ताहे पभावती भणति–''अहो मिच्छद्दंसणमोहिता देवाधिदेवं पि ण मुणंति'' । ताहे पभावती ण्हाया कयकोउयमंगला सुक्किल-वास-परिहाण-परिहया बलि-पुप्फ-धूव-कडच्छुय-हत्था गता ।

ततो पभावतीए सव्वं बलिमादिकाउं भणियं–''देवाधिदेवो महावीरवद्धमाणसामी, तस्स पडिमा कीरउ'' त्ति पहराहि । वाहितो कुडाहो, एगधाए चेव दुहा जातं, पेच्छंति य पुव्वणिव्वत्तियं सव्वालंकारभूसियं भगवओ पडिमं, सा णेउ रण्णा घरसमीवे देवाययणं काउं तत्थ विट्ठया । तत्थ किण्हगुलिया णाम दासचेडी देवयसुस्सूसकारिणी णिउत्ता । अट्ठमी-चाउद्दसीसु पभावती देवी भत्तिरागेणं सयमेव णट्टोवहारं करेति । राया वि तयाणुवत्तीए मुरए पवाएति ।

अण्णया पभावतीए णट्टोवहारं करेंतीए रण्णा सिरच्छाया ण दिट्ठा । ''उप्पाउ'' त्ति काउं अमंगुल-चित्तस्स रण्णो णट्टसममुरवक्खोडा (ण) पडंति त्ति रुट्ठा महादेवी ''अवज्ज'' त्ति काउं । ततो रण्णा लवियं–''णो मे अवज्जा, मा रूससु, इमेरिसो उप्पाओ दिट्ठो, ततो चित्ताकुलताए मुरवक्खोडयाण चुक्को'' त्ति । ततो पभावतीए लवियं–जिणसासणं पवण्णेहिं मरणस्स ण भेयव्वं ।

अण्णया पुणो वि पभावतीए ण्हायकयकोउयाते दासचेडी वाहित्ता ''देवगिहपवेसा सुद्धवासा आणेहिं'' त्ति भणिया । ते य सुद्धवासा आणिज्जमाणा कुसुंभरागरत्ता इव अंतरे संजाता उप्पायदोसेण । पभावतीए अद्दाए मुहं णिरक्खंतीए ते वत्था पणामिता । ततो रुट्ठा पभावती ''देवयायणं पविसंतिए किं मे अमंगलं करेसि त्ति, किमहं वासघर-पवेसिणि'' त्ति, अद्दाएणं दासचेडी संखावत्ते आहया । मता दासचेडी खणेण । वत्था वि साभाविता जाता । पभावेती चिंतेति–''अहो मे णिरवराहा वि दासचेडी वावातिया, चिराणुपालियं च मे थूलगपाणाइवायवयं भग्गं, एसो वि मे उप्पाउ'' त्ति । ततो रायाणं विण्णवेति–''तुब्भेहिं अणुण्णाया पव्वज्जं अब्भुवेमि । मा अपरिचत्तकामभोगा मरामि'' त्ति । रण्णा भणियं–''जति मे सुद्धम्मे बोहेहिसि'' त्ति । तीए अब्भुवयगा णिक्खंता, छम्मासं संजममणुपालेत्ता आलोइयपडिक्कंता मता उववन्ना वेमाणिएसु । ततो पासित्ता पुव्वं भवं पुव्वाणुरागेण संगारविमोक्खणत्थं च बहूहिं वेसंतरेहिं रण्णो जइणं धम्मं कहेति । राया वि तावसभत्तो तं णो पडिवज्जेति ।

ताहे पभावतीदेवेणं तावसवेसो कतो, पुप्फफलोदयहत्थो रण्णो समीवगं गतो । अतीव एगं रमणीयं फलं रण्णो समप्पियं । रण्णा अग्घायं सुरभिगंधं ति, आलोइयं चक्खुणा सरूवं ति, आसातियं अम(य)रसोवमं ति । रण्णा य पुच्छित्तो तावसो–कत्थ एरिसा फला संभवंति ? इतो णाइदूरासण्णे तावसासमे एरिसा फला भवंति । रण्णा लवियं–दंसेहि मे तं तावसासमं, ते य रुक्खा । तावसेण भणियं–एहि, दुयग्गा वि वायामो । दो वि पयाता । राया य मउडातिएण सव्वा-

लंकारविभूसितो गतो पेच्छति य मेइणिगुरुंबभूतं वणसंडं । तत्थ पविट्ठो दिट्ठो तावसासमो, तावसाऽसमे य पेच्छति स दारे पत्ते गंधं दिव्वं । दिट्ठिते य मंतेमाणे णिसुणेइ एस राया एगागी आगतो सव्वालंकारो मारेउं गेण्हामो से आभरणं। राया भीतो पच्छओ सक्कितुमारद्धो । तावसेण य कूवियं—धाह धाह एस पलातो गेण्ह । ताहे सव्वे तावसा भिसियगणे तियंतियकमंडलुहत्था धाविता, हण हण गेण्ह गेण्ह मारह त्ति भणंता—रण्णो अणुमग्गतो लग्गा ।

राया भीतो पलायंतो पेच्छइ—एगं महंतं वणसंडं । सुणेति तत्थ माणुसालावं । एत्थ रणं ति मण्णमाणो तं वणसंडं पविसति । पेच्छइ य तत्थ चंदमिव सोमं, कामदेवमिव रूववं, णगकुमारमिव सुणेवत्थं, बहस्सति व सव्वसत्थविसारयं, बहूणं समणाणं साविगाण य सुस्सरेण सरेणं धम्म-मक्खायमाणं समणं । तत्थ राया गतो सरणं सरणं भणंतो । समणेण य लवियं—''ते ण भेतव्वं'' ति। ''छुट्टोसि'' त्ति भणिता तावसा पडिगता । राया वि तेसिं विप्परिणतो इसि आसत्थो । धम्मो य से कहितो, पडिवण्णो य धम्मं । पभावतिदेवेण वि सव्वं पडिसंघरियं । राया अप्पाणं पेच्छति सिंघासणत्थो चेव चिट्ठामि, ण कहिं वि गतो आगतो वा, चिंतेति य किमेयं ति ? पभावतिदेवेण य आगासत्थेण भणियं—सव्वमेयं मया तुज्झ पडिबोहणत्थं कयं, धम्मे ते अविग्घं भवतु, अण्णत्थ वि मं आवत्तिकप्पे संभरेज्जासि त्ति लवित्ता गतो पभावती देवो । सव्वपुरजणवएसु पारंपरिणणिग्घोसो णिग्गतो—वीतीभए णगरे देवावतारिता पडिमा त्ति ।

इतो य 'गंधारा' जणवयातो सावगो पव्वइतुकामो सव्वतित्थकराणं जम्मण-णिक्खमण-केवलुप्पाय-णिव्वाणभूमिओ दट्ठुं पडिणियत्तो पव्वयामि त्ति । ताहे सुतं 'वेयड्ढगिरिगुहाए' रिसभातियाण तित्थकराण सव्वरयणविचित्तियातो कणगपडिमाओ। साहूसकासे सुणित्ता ताओ दच्छामि त्ति तत्थ गतो। तत्थ देवताराधणं करेत्ता विहाडियाओ पडिमाओ । तत्थ सो सावतो थयथुतीहिं थुणंतो अहोरत्तं णवसितो । तस्स णिम्मलरयणेसु ण मणागमवि लोभो जातो । देवता चिंतेति—''अहो माणुसमलुद्धं'' त्ति । तुट्ठा देवया, ''बूहिं वरं'' भणंती उवट्ठिता । ततो सावगेण लवियं—''णियत्तो हं माणुसएसु कामभोगेसु किं मे वरेण कज्जं ति ? ''अमोहं देवतादंसण'' त्ति भणित्ता देवता अट्ठासयं गूलियाणं जहाचिंतितिमणोरहाणं पणामेति । ताओ गहिताओ सावतेण, ततो णिग्गतो । सुयं च णेण जहा बीतीभए णगरे सव्वालंकार-विभूसिता देवावतारिता पडिमा । तं दच्छामि त्ति, तत्थ गतो, वंदिता पडिमा । कति वि दिणे पज्जुवासामि त्ति तत्थेव देवतायतणे ठितो, तो य सो तत्थ गिलाणो जातो । ''देसितो सावगो'' काउं कण्हगुलियाए पडियरितो । तुट्ठो सावगो । किं मम पव्वतितुकामस्स गुलियाहिं एस भोगत्थिणी तेण तीसे जहाचिंतयमणोरहाणं अट्ठसयं गुलियाणं दिण्णं, गतो सावगो ।

ततो वि किण्हगुलियाए विण्णा(स)णत्थं किमेयाओ सव्वं जहाचिंतियमणोरहाओ, उ णेति ? जइ सच्चं तो ''हं उत्तत्तकणगवण्णा सुरूवा सुभगा य भवामि'' त्ति एगा गुलिया भक्खिया । ताहे देवता इव कामरूविणी परावत्तियवेसा उत्तत्तकणगवण्णा सुरूवा सुभगा य जाया । ततो पभिति जणो भासिउमाढतो एस किण्हगुलिया देवताणुभावेण उत्तत्तकणगवण्णा जाया, इयाणिं होउं णामं ''सुवण्णगुलिय'' त्ति, तं च घुसितं सव्वजणवएसु । ततो सा सुवण्णगुलिया गुलिग-लद्धपच्चया भोगत्थिणी एगं गुलियं मुहे पक्खिविउं चिंतेति ''पज्जोयणो मे राया भत्तारो भविज्ज'' त्ति ।

बीतीभयाओ उज्जेणी किल असीतिमितेसु जोयणेसु । तत्थ व अकम्हा रायसभाए पज्जोयस्स अग्गतो पुरिसा कहं कहंति—"बीतीभते णगरे देवावतारियपडिमाए सुस्सूसकारिगा कण्हगुलिया देवताणुभावेण सुवण्णगुलिगा जाता, अतीव सोहग्ग-लावन्नजुत्ता बहुजणस्स पत्थणिज्जा जाता ।" तं सुणेत्ता पज्जोओ तस्स गुलुम्मातितो दूतं विसज्जेति उदायणस्स—"एय सुवण्णगुलियं समं विसज्जेसु" त्ति । गओ दूतो, विण्णत्तो उदायणो । उदायणेण रुट्ठेण विसज्जितो, अस्सकारियाऽसम्माणितो य दूतो । जहावत्तं दूतेण पज्जोयस्स कहियं । पुणो पज्जोएण रहस्सितो दूतो विसज्जिओ सुवण्णगुलियाए जइ मं इच्छसि वा तोऽहं रहस्सियमागच्छामि । तीए भणियं—जति पडिमा गच्छति तो गच्छामि, इयरहा णो गच्छे । गंतुं दूतेण कहियं पज्जोयस्स ।

ततो पज्जोतोऽणलगिरिणा हत्थिरयणेएण [१]सण्णद्धरिणिमियगुडेण अप्पपरिच्छडेणागतो, अहोरत्तेण पत्तो, पओसवेलाए पविट्ठा चरा, कहियं सुवण्णगुलियाते । तत्थ य बालवसंतकाले लेपगमहे वट्टमाणे पुव्वकारिता पज्जोएण लेपगपडिमा मंडियपसाधिता गीताओज्जणिग्घोसेण सव्वजणसमक्खे लेप्पगछलेण णिता सुवण्णगुलिगा य । पडिमं सुवण्णगुलिगं च पज्जोतो हरिउं गतो । जं च रयणिऽणलगिरी वीतीभए णगरे पवेसिंतो तं रयणिं अंतो जे गया तेऽणलगिरिणो गंधहत्थिणो गंधेण आलाणखंभं भंतुं सव्वे वि लुलिया सव्वजणस्स य जायंति । महामंतिजणेण य उण्णीयं—णूणं एत्थऽणलगिरी हत्थी खंभविप्पणट्ठो आगतो, अण्णो वा कोइ वणहत्थी । पभाए रण्णा गवेसावियं । दिट्ठोऽणलगिरिस्स आणिमलो । पवत्तिबाहतेण कहियं-रण्णो आगतो पज्जोतो पडिगओ य । गवेसाविता सुवण्णगुलिगा य त्ति, णायं तदट्ठा आगतो आसि त्ति । रण्णा भणियं—पडिमं गवेसहि त्ति । गविट्ठा । कुसुमोमालिया चिट्ठइ न व त्ति, देवतावतारियपडिमाए य गोसीसचंदणसीताणुभावेण य कुसुमा णो मिलायंति । ण्हायपयतोतराया मज्झण्हदेसकाले देवाययणं अतिगओ, पेच्छती य पुव्वकुसुमे परिमिलाणे। रण्णा चिंतियं—किमेस उप्पातो, उत अण्णा चेव पडिम त्ति ? ताहे अवणेउं कुसुमे णिरिक्खिता, णायं हडा पडिमा । रुट्ठो उदायणो दूतं विसज्जेति, जइ ते हडा दासचेडी तो हडा णाम, विसज्जेह मे पडिमं । गतपच्चागतेण दूतेण कहियं उदायणस्स—ण विसज्जेति पज्जोओ पडिमं ।

ततो उदायणो दसहिं मउडबद्धराती सह सव्वसाहणबलेण पयातो । कालो य गिम्हो वट्टति । मरुजणवयमुत्तरंतो य जलाभावे सव्वखंधवारो ततियादिणे तिसाभिभूतो विसण्णो । उदायणस्स रण्णो कहियं । रण्णा वि अप्पबहुं चिंतिउं णत्थि अण्णो उवातो सारणं वा, णत्थि परं पभावतिदेवो सरणं ति, पभावतिदेवो सरणंसि कओ । पभावतिदेवस्स कयसिंगारस्सासणकंपो जाओ, तेण ओही पउत्ता, दिट्ठा उदायणस्स रण्णो आवत्ती । ततो सो आगतो तुरंतो पिणद्धंखं परं जलधरेहिं पुव्वं अप्पातितो जणवओ पविरलतुसार-सीयलेण वायुणा । ततो पच्छा वालपरिक्खितं व जलं जलधरेहिं मुक्कं सरस्स तं च जलं देवता-कय-पुक्खरणीतिए संठियं, देवयकयपुक्खरणि ति अबुहजणेणं "त्ति पुक्खरं" ति तित्थं पवत्तियं । ततो उदायणो राया गतो उज्जेणिं । रोहिता उज्जेणी । बहुजणक्खए वट्टमाणे उदायणेण पओतो भणिओ—तुज्झं मज्झ य विरोहो । अम्हे चेव दुअग्ग जुज्झामो, किं सेसजणवएणं मारविएणं ति। अब्भुवगयं पज्जोएण । दुअग्गाण वि दूतए संचारेण संलावो—कहं जुज्झामो ? किं रहेहिं गएहिं

---

१. सन्नद्धस्थापितकवचेन ।

अस्सेहिं ? ति । उदायणेण भणियं—गएहिं असमाणं जुज्झं ति, कल्लं रहेहिं जुज्झामो त्ति । दुवग्गणे वि अवट्टियं। बिदियदिणे उदायणो रहेण उवट्ठितो, पज्जोओऽणलगिरिणा हत्थि—रयणेण । सेसखंधावारो सेण्णच्चपरिवारो पेच्छगो य उदासीणो चिट्ठति । उदायणेण भणियं—एस भट्ठपडिवण्णो हतो मया, संपलग्गं जुद्धं, आगतो हत्थी । उदायणेण चक्कभमे च्छूढो, चउसु वि पायतलेसु विद्धो सरेहि, पडिओ हत्थी । एवं उदायणेण रणे जिता गहिओ पज्जोओ । भग्गं परबलं । गहिया उज्जेणी । णट्ठा सुवण्णगुलिया । पडिमा पुण देवताहिट्ठिता संचालेउं ण सक्किता । पज्जोतो य ललाटे सुणहपाएण अंकितो । इमं च से णामयं ललाटे चेव अंकितं—

दासो दासीवतिओ, छेत्तट्ठी जो घरे य वत्तव्वो ।
आणं कोवेमाणो, हंतव्वो बंधियव्वो य ॥३१८५॥

कंठा । उदायणो ससाहणेण पडिणियत्तो, पज्जोओ वि बद्धो खंधावारे णिज्जति । उदायणो आगओ, जाव दसपुरोद्देसे[१] तत्थ वरिसाकालो जातो । दस वि मउडबद्धरायाणो णिवेसेण ठिता । उदायणस्स उवजेमणाए भुंजति पज्जोतो ।

अण्णया पज्जोसवणकाले पत्ते उदायणो उववासी, तेण सूतो विसज्जितो । पज्जोओ अज्ज गच्छसु, किं ते उवसाहिज्जउ त्ति । गतो सूतो, पुच्छिओ पज्जोओ । आसंकियं पज्जोतस्स । "ण कयाति अहं पुच्छिओ, अज्ज पुच्छा कता । णूणं अहं विससम्मिसेण भत्तेण अज्ज मारिज्जिउकामो । अहवा—किं मे संदेहेण, एयं चेव पुच्छामि ।" पज्जोएण पुच्छिओ सूतो—अज्ज मे किं पुच्छिज्जति । किं वा हं अज्ज मारिज्जिउकामो ?

सूतेण लवियं—ण तुमं मारिज्जसि । राया समणोवासओऽज्ज पज्जोसवणाए उववासी । तो ते जं इट्ठं अज्ज उवसाहयामि त्ति पुच्छिओ । तओ पज्जोतेण लवियं—"अहो सपावकम्मेण वसणपत्तेण पज्जोसवणा वि ण णाता, गच्छ कहेहि राइणो उदायणस्स जहा अहं पि समणोवासगो अज्ज उववासिओ भत्तेण ण मे कज्जं ।" सूतेण गंतुं उदायणस्स कहियं—सो वि समणोवासगो अज्ज ण भुंजति त्ति ।

ताहे उदायणो भणति—समणोवागेण मे बद्धेण अज्ज सामातियं ण सुज्झति, ण य सम्मं पज्जोसवियं भवति, तं गच्छामि समणोवासगं बंधणातो मोएमि खामेमि य सम्मं, तेण सो मोइओ खमिओ य ललाटमंकच्छायणट्ठया य सोवण्णो से पट्टो बद्धो । ततो पभिति पट्टबद्धरायाणो जाता । एवं ताव जति गिहिणो वि कयवेरा अधिकरणाइं ओसवंति समणेहिं पुण सव्वपावविरतेहिं सुट्ठुतरं ओसवेयव्वं ति । सेसं सवित्थरं जीवंतसामिउप्पत्तीए वत्तव्वं ॥३१८६॥ अहवा—इमं उदाहरणं—

खद्धादाणियगेहे, पायस दमचेडरूवगा दट्ठुं ।
पितरोभासण खीरे, जाइय रद्धे य तेणा तो ॥३१८६॥

खद्धि आदाणिं जेसु गिहेसु ते खद्धादाणीगिहा—ईश्वरगृहा इत्यर्थः । तेसु खद्धादाणीयगिहेसु, खणकाले पायसो णवगपयसाहितो । तं दट्ठुं दामगचेडा दमगो-दारिद्दो तस्स पुत्तभंडा इत्यर्थः पितरं ओभासंति—'अम्ह वि पायसं देहि' त्ति भणितो । तेण गामे दुद्धतंदुले ओहारिऊण समप्पियं भारियाए—"अम्ह वि पायसं देहि" त्ति । सो य पच्चंतगामो, तत्थ चोरसेणा पडिता, ते य गामं विलुलिउमाढत्ता ।

---

१. उद्देशः स्थानं आदेशो वा ।

पायसहरणं छेत्ता, पच्छागय असियएण सीसं तु ।
भाउयसेणाहिवखिंसणाहिं सरणागतो जत्थ ॥३१८७॥

तस्स दमगस्स सो य पायसो सह थालीए हडो । तं वेलं सो दमगो छेत्तं गतो । सो य छेतातो तेणं लुणिऊणं आगतो, तं चिंतेति—''अज्ज चेडरूवेहिं समं भोक्खेमि'' त्ति घरंगणपत्तस्स चेडरूवेहिं कहितं ततो ''बप्प'' त्ति भणंतेहि सो य पायसो हडो । सो तणपूलियं छड्डेऊण गतो कोहाभिभूतो, पेच्छति सेणाहिवस्स पुरतो पायसथालियं ठवियं । ते चोरा पुणो गामं पविट्ठा, एगागी सेणाहिवो चिट्ठइ। तेण य दमगेण असिएण सीसं छिण्णं सेणावतिस्स णट्ठो दमगो । ते य चोरा हण्णागया णट्ठा । तेहिं य गतेहिं मयकिच्चं काउं तस्स डहरतरतो भाया सो सेणाहिवो अभिसित्तो । तस्स मायभगिणी-भाउज्जाइयातो अ खिंसंति—''तुमं भाओवरतिए जीवंते अच्छति सेणाहिवत्तं काउं, धिरत्थू ते जीवियस्स। सो अमिरसणगतो गर्हितो—दमगो जीवगेज्झो, आणितो निगडियवेढिगो सयणमज्झगतो आसणट्ठितो वणगं गहाय भणति—अरे अरे भातिवेरिया, कत्थ ते आहणामि त्ति । दमगेण भणियं ''जत्थ सरणागता पहरिज्जंति तत्थ पहराहि'' त्ति । एवं भणिते सयं चिंतेति—''सरणागया णो पहरिज्जंति ।'' ताहे सो माउभगिणीसयणाणं च मुहं णिरिक्खति । तेहिं ति भणितो—''णो सरणागयस्स पहरिज्जति'', ताहे सो तेण पूएऊण मुक्को । जति ता तेण सो धम्मं अजाणमाणेण मुक्को, किमं णु पुण साहुणा परलोगभीतेण अब्भुवगयवच्छल्लेण अब्भुवगयस्स सम्मं ण सहियव्वं ? खामियव्वं ति ।

इयाणिं ''[१]कसाय'' त्ति दारं । तेसिं चउक्कणिक्खेवो जहावट्ठाणे कोहो चउव्विधो उदगराइसमाणो वालुआराइसमाणो पुढवीराइसमाणो पव्वयगराइसमाणो, दारं ।

वाओदएहि राई, नासति कालेण सिगयपुढवीणं ।
णासति उदगस्स सतिं, पव्वतराई तु जा सेलो ॥३१८८॥

वाएण उदएण य राती णासइ जहा सक्खं सिगयपुढवीणं । ''कालेण'' त्ति कालविशेष-प्रदर्शनार्थे, उदगराती सकृत् नश्यति तत्क्षणादित्यर्थः । जा पुण पव्वतराती सा जाव पव्वतो ताव चिट्ठति अंतरा नापगच्छतीत्यर्थः ॥३१८८॥

इयाणिं रातेहिं कोव—अवसंधारणत्थं भण्णति—

उदगसरिच्छा पक्खेणऽवेति चतुमासिएण सिगयसमा ।
वरिसेण पुढविराती, अमरण गती य पडिलोमा ॥३१८६॥

उदगराइसमाणो जो रुसितो तद्दिवसं चेव पडिक्कमणवेलाए उवसमति जाव पक्खे वि उवसमतो उदगरातिसमाणो भण्णति । जो पुण दिवसपक्खिएसु अणुवसंतो जाव चउमासिए उवसमति तो सिगतरातिसमाणो कोहो भवति । जो पुण दिवसपक्खचाउम्मासिएसु अणुवसंतो संवच्छरिए उवसमति सो पुढविराइसमाणो । जहा पुढवाए सरदे फुडियातो दालिओ पाउसे मिलंति एवं तस्स वि वरिसेण क्रोधो अवेति। जो पुण पज्जोसवणाए वि णो उवसमति सो पव्वयरातीसमाणो कोहो । जहा पव्वयस्स राती ण मिलति एवं तस्स वि आमरणंतो कोहो णोवसमति । एतेसिं गतीतो पडिलोमं

---

१. गा० ३१७६ ।

वत्तव्वाओ । पव्वयरातीसमाणस्स णरगगती, पुढवीसमाणस्स तिरियगती, सिगयसमाणस्स मणुयगती, उदगसमाणस्स देवगती, अकसायस्स मोक्खगती ॥३१८९॥

एमेव थंभकेयण, वत्थेसु परूवणा गतीओ य ।
मरुय अचंकारि य पंडरज्जमंगू य आहरणा ॥३१९०॥

एवं सेसा कसाया चउभेया वत्तव्वा । थंभे त्ति थंभसमाणो माणो । सो चउव्विहो अत्थि ।

सेल-ऽट्ठि-थंभदारुयलया य वंसे य मेंढ गोमुत्ती ।
अवलेहणि किमि कद्दम कुसुंभरागे हलिद्दा य ॥३१९१॥

चउसु कसातेसु गती, नरय तिरिय माणुसे य देवगती ।
उवसमह णिच्चकालं, सोग्गइमग्गं वियाणंता ॥३१९२॥

सेलथंभसमाणो माणो अत्थि, अट्ठिथंभसमाणो माणो अत्थि, कट्ठथंभसमाणो माणो अत्थि, तिणिसलयासमाणो माणो अत्थि । गतीतो पडिलोमं वत्तव्वातो ।

''केयणं'' ते छज्जियालेवणगंडो केयणं ति भण्णति, सो य वंको तस्समा माया । अहवा—यत् कृतकं तं पाययसेलीए केयणं भण्णइ, कृतकं च माया । माया चउव्विहा—अवलेहणियाकेयणे, गोमुत्तियाकेयणे, घणवंसमूलसमकेयणे, मेंढसिंगकेयणे वि । गतीतो पडिलोमं वत्तव्वाओ । ''वत्थे'' त्ति वत्थरागसमाणो लोभो । सो चउव्विहो । हरिद्दारागसमाणो लोभो, कुसुंभरागसमाणो लोभो, कद्दमरागसमाणो लोभो, किमिरागसमाणो लोभो । गतीओ पडिलोमातो वत्तव्वाओ । इमे उदाहरणा—कोहे मरुओ, माणे अच्चंकारियभट्टा, मायाए पंडरज्जा, लोभे अज्जमंगू ॥३१९२॥ कोहे इमं—

अवहंत गोण मरुते, चउण्ह वप्पाण उक्करो उवरिं ।
छूढो मओ उवट्टा, अतिकोवे ण देमो पच्छित्तं ॥३१९३॥

एत्थ एसेव दमगो । अधवा—एगो मरुगो, तस्स इक्को बइल्लो । सो य तं गहाय केयारे हलेण वाहेमि त्ति गतो । सो य परिस्संतो पडितो, ण तरति उट्ठेउं । ताहे तेण धिज्जातिएण हणंतेण तस्स उवरिं तुत्तगो भग्गो, तहावि ण उट्ठति । अण्णकट्ठाभावे लेट्ठुएहिं हणिउमारद्धो, एगकेयारलेट्ठुएहिं, तहावि णोट्ठितो, एवं चउण्ह केयाराण उक्करेण आहतो, णो उट्ठितो । तो तेण लेट्ठुपुओ कतो, मओ सो गोणो । ताहे सो बंभणो गोवज्झविसोहणत्थं धिज्जातियाणमुवट्ठितो । तेण जहावत्तं कहियं, भणियं च तेण—अज्ज वि तस्सोवरिं मे कोहो ण फिट्टति । ताहे सो धिज्जातिएहिं भणिओ—तुमं अतिक्कोही, णत्थि ते सुद्धी, ण ते पच्छित्तं देमो, सव्वलोगेण वज्जितो सोऽसिलोगपडितो जातो । एवं साहुणा एरिसो कोवो ण कायव्वो । अह करेज्ज तो उदगरातीसमाणेण भवियव्वं । जो पुण पक्खिय-चाउम्मासिय-संवच्छरिएसु ण उवसमति तस्स विवेगो कायव्वो, जहा धिज्जातियस्स । माणे इमं—

वणिधूयमच्चंकारिय-भट्टा अट्ठसुय मग्गतो जाया ।
चरणपडिसेव सचिवे, अणुयत्तीहिं पदाणं च ॥३१९४॥
णिवचिंत विकालपडिच्छणा य दाणं ण देमि णिवकहणं ।
खिंसा णिसि णिग्गमणं, चोरा सेणावती गहणं ॥३१९५॥

नेच्छति जलूग वेज्जे, गहणं तं पि य अणिच्छमाणी तु ।
गेण्हावे जलूगवणा, भाउयदूए कहण मोए ॥३१९६॥

'खितिपतिट्ठियं' णगरं । 'जियसत्तू' राया । 'धारिणी' देवी । 'सुबुद्धी' सचिवो । तत्थ णगरे 'धणो' णाम सेट्ठी । तस्स 'भद्दा' णाम भारिया । तस्स य धूया भट्टा । सा य माउपियभाउयाण य उवातियसयलद्धा । मायपितीहि य सव्वपरियणो भण्णति—''एसा जं करेउ ण केण ति किंचिच्चं-कारेयव्वं'' ति । ताहे लोगेण से कायं णाम अच्चंकारियभट्टा । सा य अतीवरूववती, बहुसु वणियकुलेसु वरिज्जति । धणो य सेट्ठी भणति—जो एयं ण चंकारेहिति तस्सेसा दिज्जिहिति त्ति । एवं वरगे पडिसेहेति। अण्णया सचिवेण वरिता । धणेण भणियं—जइ ण किंचि वि अवराहे चंकारेहिसि तो ते पयच्छामो । तेण य पडिसुयं । तस्स दिण्णा । भारिया जाता । सो य ण चंकारेति । सो य अमच्चो रातीते जामे गते रायकज्जाणि समाणेउं आगच्छति । सा तं दिणे दिणे खिंसति सवेलाए णागच्छसि त्ति । ततो सवेलाए एतुमाढत्तो । अण्णया रण्णो चिंता जाता—किमेस मंती सवेलाए गच्छति त्ति । रण्णो अण्णेहिं कहियं—एस भारियाए आणाभंगं न करेति त्ति । अण्णया रण्णा भणियं—इमं एरिसं तारिसं च कज्जं च सवेलाए तुमे ण गंतव्वं । सो ओसुअभूतो वि रायाणुअत्तीए ठितो । सा य रुट्ठा वारं बंधेउं ठिता । अमच्चो आगतो उस्सूरे, ''दार-मुग्घाडेहि'' त्ति बहुं भणिता वि जाहे ण उग्घाडेति ताहे तेण चिरं अच्छिऊण भणिता—''तुमं चेव सामिणी होज्जासि त्ति अहो मे आलो अंगीकतो'' । ताहे सा ''अहमालो'' त्ति भणिया दारमुग्घाडेउं पियघरं गता । सव्वालंकारविभूसिता अंतरा चोरेहिं गहिता । तासे सव्वालंकारं घेत्तुं चोरेहिं सेणावतिस्स उवणीता । तेण सा भणिता—मम महिला होहि त्ति । सो तं बला ण भुंजति, सा वि तं णेच्छति । ताहे तेण वि सा जल्लगवेज्जस्स हत्थे विक्कीता । तेण वि सा भणिता—मम भज्जा भवाहि त्ति । तं पि अणिच्छतीए तेण वि रुसिएण भणिता—''वणं''—पाणीयं, तातो जलूगा गेण्हाहि'' त्ति । सा अप्पाणं णवणीएण मक्खेउं जलमवगाहति, एवं जलूगातो गेण्हति । सा तं अणणुरूवं कम्म करेति ण य सीलभंगं इच्छति । सा तेण रुहिरसावेण विरूवलावण्णा जाया । इतो य तस्स भाया दूयकिच्चेण तत्थागतो, तेण सा अणुसरिस त्ति काउं पुच्छित्ता, तीए कहियं, तेण दव्वेण मोयाविया आणिया य । वमणविरेयणेहिं पुण णवसरीरा जाता ।

अमच्चेण य पच्चाणेउं घरमाणिया सव्वसामिणी ठविया । ताए सो कोहपुरस्सरस्स माणस्स दोसं दट्ठुं अभिग्गहो गहितो—'ण मे कोहो माणो वा कायव्वो ॥३१९४॥३१९५॥३१९६॥

सयगुणसहस्सपागं, वणभेसज्जं जतिस्स जायणया ।
तिक्खुत्त दासिभिदण, ण य कोहो सयं पदाणं च ॥३१९७॥

तस्स घरे सयसहस्सपागं तेल्लमत्थि, तं च साहुणा वणसंरोहणत्थं ओसढं मग्गियं । ताए य दासचेडी आणत्ता—''आणेहिं'' त्ति । ताए आणंतीए सहतेल्लेण एगं भायणं भिण्णं । एवं तिण्णि भायणाणि भिण्णाणि । ण य सा रुट्ठा । तिसु य सयसहस्सेसु विणट्ठेसु चउत्थवाराए अप्पणा उट्ठेऊणं दिण्णं । जइ ताए कोहपुरस्सरो मेरुसरिसो माणो णिज्जितो तो साहुणा सुट्ठुतरं णिहंतव्वो इति ॥३१९७॥ मायाए इमं—

पासत्थि पंडरज्जा, परिण्ण-गुरुमूल-णातअभिओगा ।
पुच्छा तिपडिक्कमणे, पुव्वब्भासा चउत्थं पि ॥३१९८॥

णाणातितियस्स पासे ठिता पासत्थी, सरीरोवकरणब(पा)उसा णिच्चं सुक्किल्लवासपरिहरित्ता विचिट्ठइ त्ति । लोगेण से णामं 'कयं पंडरज्ज' त्ति । सा य विज्जा-मंत-वसीकरणुच्चाटणकोउएसु य कुसला जणेसु पउंज्जति । जणो य से पणयसिरो कयंजलितो चिट्ठति । अद्धवयातिक्कंता वेरग्गमुवगता गुरुं विण्णवेति—''आलोयणं पयत्थामि'' त्ति । आलोइए पुणो विण्णवेति—''ण दीहं कालं पवज्जं काउं समत्था'' । ताहे गुरुहिं अप्पं कालं परिकम्मवेत्ता विज्जामंतादियं सव्वं छड्डावेत्ता ''परिण्ण'' त्ति अणसणगं पच्चक्खायं । आयरिएहिं उभयवग्गो वि वारितो ण लोगस्स कहेयव्वं । ताहे सा भत्ते पच्चक्खाते जहा पुव्वं बहुजणपरिवुडा अच्छिता इयाणिं न तहा अच्छति, अप्पसाहुसाहुणिपरिवारा चिट्ठइ। ताहे से अरती कज्जति । ततो ताए लोगवसीकरणविज्जा मणसा आवाहिता । ताहे जणो पुप्फधूवगंधहत्थो अलंकितविभूसितो वंदवदेहिं । उभयवग्गो पुच्छित्तो—किं ते जणस्स अक्खायं ? ते भणंति—''ण व'' त्ति । सा पुच्छित्ता भणति—मम विज्जाए अभिओइयं एति । गुरुहिं भणिता—''ण वट्टति'' त्ति । ताहे पडिक्कंता । सयं ठितो लोगो आगंतु । एवं तओ वारा सम्मं पडिक्कंता, चउत्थवाराते पुच्छिता ण सम्ममाउट्टा भणति य—पुव्वब्भासाऽहुणा आगच्छंति ॥३१९८॥

अपडिक्कमसोहम्मे, अभिउग्गा देवसक्कओसरणे ।
हत्थिणि वाउसग्गे, गोयम-पुच्छा तु वागरणा ॥३१९९॥

अणालोएउं कालगता सोहम्मे एरावणस्स अग्गमहिसी जाता । ताहे सा भगवतो वद्धमाणस्स समोसरणे आगता, धम्मकहावसाणे हत्थिणिरूवं काउं भगवतो पुरतो ठिच्चा महतासद्देण वातं कम्मं करेति । ताहे भगवं गोयमो जाणगपुच्छं पुच्छति । भगवया पुव्वभवो से वागरितो । मा अण्णो वि को ति साहु साहुणी वा मायं काहिती, तेणेयाए वायकम्मं कतं, भगवता वागरियं । तम्हा एरिसी माया दुरंता ण कायव्वा ।

लोभे इमं उदाहरणं—''लुद्धणंदी'' अहवा ''अज्जमंगू''—

महुरा मंगू आगम बहुसुय वेरग्ग सड्ढपूया य ।
सातादि-लोभ-णितिए, मरणे जीहाइ णिद्धमणे ॥३२००॥

अज्जमंगू आयरिया बहुस्सुया अज्झागमा बहुसिस्सपरिवारा उज्जयविहारिणो ते विहरंता महुरं णगरीं गता । ते ''वेरग्गिय'' त्ति काउं सड्ढेहिं वत्थातिएहिं पूइता, खीर-दधि-घय-गुलातिएहिं दिणे दिणे पज्जतिएण पडिलाभयंति । सो आयरिओ लोभेण सातासोक्खपडिबद्धो ण विहरति । णितिओ जातो । सेसा साधू विहरिता । सो वि अणालोइयपडिक्कंतो विराहियसामण्णो वंतरो णिद्धम्मणा जक्खो जातो । तेण य पदेसेण जदा साहू णिग्गमण-पवेसं करेंति, ताहे सो जक्खो पडिमं अणुपविसित्ता महापमाणं जीहं णिल्लालेति । साहूहिं पुच्छितो भणति—अहं सायासोक्खपडिबद्धो जीहादोसेण अप्पड्ढिओ इह णिद्धम्मणाओ भोमज्जे णगरे वंतरो जातो, तुज्झ पडिबोहणत्थमिहागतो तं मा तुब्भे एवं काहिह । अण्णे कहेंति—जदा साहू भुंजंति तदा सो महप्पमाणं हत्थं सव्वालंकारं विउव्विऊण गवक्खदारेण साधूण पुरतो पसारेति । साहूहिं पुच्छितो भणाति—सो हं अज्जमंगू इड्ढिरसपमादगरुओ मरिऊण णिद्धमणे जक्खो जातो, तं मा कोइ तुब्भे एवं लोभदोसं करेज्ज ॥३२००॥ एवं कसायदोसे णाउं पज्जोसवणासु अप्पणो परस्स वा सव्वकसायाण उवसमणं कायव्वं । इमं च वासासु कायव्वं—

अब्भुवगयगयवेरा, णातुं गिहिणो वि मा हु अहिगरणं ।
कुज्जाहि कसाए वा, अविगडियफलं व सिं सोउं ॥३२०१॥

पच्छित्तं बहुपाणा, कालो बलिओ चिरं च ठायव्वं ।
सज्झाय-संजम-तवे, धणियं अप्पा णियोतव्वो ॥३२०२॥

अट्ठसु उदुबद्धिएसु मासेसु जं पच्छित्तं संचियं ण वूढं तं वासासु वोढव्वं । किं कारणं तं वासासु वुज्झते ? भण्णते—जेण वासासु बहुपाणा भवंति, ते हिंडंतेहिं वहिज्जंति, सीयाणुभावेण य कालो बलितो, सुहं तत्थ पच्छित्तं वोढुं सक्कति । एगक्खेत्ते चिरं अच्छियव्वं तेण वासासु पच्छित्तं वुज्झति । अवि य सीयलगुणेण बलियाइं इंदियाइं भवंति । तदप्पणिरोहत्थं तवो कज्जति । पंचप्पगारसज्झाए उज्जमियव्वं, सत्तरसविहे य संजमे, बारसविहे य तवे अप्पा धणियं सुट्ठु णिओएयव्वो, णिउंजितव्यमित्यर्थः ॥३२०२॥

पुरिमचरिमाण कप्पो, तु मंगलं वद्धमाणतित्थम्मि ।
तो परिकहिया जिणगण-हरा य थेरावलिचरित्तं ॥३२०३॥

पुरिमा उसभसामिणो सिस्सा, चरिमा वद्धमाणसामिणो । एतेसिं एस कप्पो चेव जं वासासु पज्जोसविज्जंति, वासं पडउ मा वा । मज्झिमयाणं पुण भणितं—पज्जोसवेंति वा ण वा, जति दोसो अत्थि तो पज्जोसवंति, इहरहा णो । मंगलं च वद्धमाणसामितित्थे भवति । जेण य मंगलं तेण सव्वजिणाणं चरिताणि कहिज्जंति, समोसरणाणि य, सुधम्मातियाण थेराणं आवलिया कहिज्जति ॥३२०३॥ एत्थ सुत्तणिबधे य इमो कप्पो कहिज्जति—

सुत्ते जहा णिबंधो, वग्घारियभत्तपाणमग्गहणं ।
णाणट्ठि तवस्सी यऽणहियासि वग्घारिए गहणं ॥३२०४॥

''णो कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा वग्घारिय-वुट्ठिकायंसि गाहावतिकुलं भत्ताए वा पाणाए वा णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा । कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायंसि संतरुत्तरंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा । (कल्पसूत्र २५३) वग्घारियं णाम जं तिण्णवासं पडति, जत्थ वा णेव्वं वासकप्पो वा गलति, जत्थ वासकप्पं भेत्तूण अंतो काओ य उल्लेति, एयं वग्घारियं वासं । एरिसे ण कप्पति भत्तपाणं धेत्तुं । सुत्ते जहा णिबंधो तहा न कल्पते इत्यर्थः । अवग्घारिए पुण कप्पंति भत्तपाणग्गहणं काउं । *कप्पति से अप्पवुट्ठिकायंसि संतरुत्तरंसि,* संतरमिति अंतरकप्पो, उत्तरमिति वासकप्पकंबली ।

इमेहिं कारणेहिं बितियपदे वग्घारियवुट्ठिकाये वि भत्तपाणग्गहणं कज्जति ''णाणट्ठी'' पच्छद्धं । ''णाणट्ठी'' त्ति जदा को ति साहू अज्झयणं सुत्तक्खंधमंगं वा अहिज्जति, वग्घारियवासं पडति, ताहे सो वग्घारिए वि हिंडति ।

'तवस्सी' त्ति अहवा—छुहालु अणधियासो वग्घारिए हिंडति । एते तिण्णिहि वग्घारिते संतरुतरा हिडंति । संतरुत्तस्य व्याख्या पूर्ववत् । अहवा—इह संतरं जहासत्तीए चउत्थमादी करेंति । उत्तरमिति 'वाले सुत्तादिए' ण अडंति ॥३२०४॥

संजमखेत्तचुयाणं, णाणट्ठि-तवस्सि-अणहियासाणं ।
आसज्ज भिक्खकालं, उत्तरकरणेण जइयव्वं ॥३२०५॥

संजमखेत्त-चुया जे णाणट्ठि तवस्सी अणधियासी य जो, एते सव्वे भिक्खाकाले उत्तरकरणेण भिक्खग्गहणं करेंति ॥३२०५॥ केरिसं पुण संजमखेत्तं–

उण्णियवासाकप्पो, लाउयपातं च लब्भती जत्थ ।
सज्जा एसणसोही, वरिसइकाले य तं खेत्तं ॥३२०६॥

जत्थ खेत्ते उण्णियवासाकप्पा लब्भंति, जत्थ अलाबु पादा चाउक्कालो य सुज्झति सज्झाओ, जत्थ य भत्तादीयं सव्वं एसणासुद्धं लब्भति, विविधं च धम्मसाहणोवकरणं जत्थ लब्भति । कालवरिसा णाम–रातो वासइ, ण दिवा । अहवा–भिक्खावेलं सण्णाभूमिगमणवेलं च मोत्तुं वासति । अहवा–वासासु वासति णो उदुबद्धे एस कालवरिसा । एयं संजमखेत्तं ॥३२०६॥ ततो असिवादिकारणेहिं चुता । ''[१]णाणट्ठि तवस्सि अणधियासे'' त्ति तिण्णि वि एगगाहाते वक्खाणेति–

पुव्वाहीयं णासति, णवं च छातो ण पच्चलो घेत्तुं ।
खमगस्स य पारणए, वरसति असहू य बालादी ॥३२०७॥

छुभाभिभूयस्स परिवाडिं अकुव्वतो पुव्वाधीतं णासती, अभिणवं वा सुत्तत्थ च्छातो अहीतुम-समर्थो भवति, खमगपारणए वा तवसि, बालादी असहू वा, वासंते असमत्था उववासं काउं ॥३२०७॥

ताहे इमेण उत्तरकरणेण जतंति–

वाले सुत्ते सूती, कुडसीसगछत्तए य पच्छिमए ।
णाणट्ठि तवस्सी अण-हियासि अह उत्तरविसेसा ॥३२०८॥

वरिसंते उववासो कायव्वो । असहु कारणे वा ''वाले'' त्ति उण्णियवासाकप्पेण पाउतो अडति । उण्णियस्स असति उट्टिएण अडति । उट्टियासति कुतवेणं । जाहे एयं तिविधं पि वालयं णत्थि ताहे जं सोत्तियं थिरं घणं मसिणं तेण हिंडति । सोत्तियस्स असति ताल-सूइं उवरिं काउं हिंडति । कुडसीसयं पलासं पत्तेहिं वा गंडेणविणा छत्तयं कीरइ, तं सिरं काउं हिंडति । तस्सऽसति विद्लमादी (?) छत्तएणं हिंडति । एसो संजमखेत्तचुतादियाण वासासु वासंते उत्तरकरणविसेसो भणितो ॥३२०८॥

सव्वो य एस पज्जोसवणाविधी भणितो । बितियपदेण पज्जोसवणाए ण पज्जोसवेंति अपज्जोसवणाए वा पज्जोसवेज्जा इमेहिं कारणेहिं–

असिवे ओमोयरिए, रायदुट्ठे भए व गेलण्णे ।
अद्धाण रोहए वा, दोसु वि सुत्तेसु अप्पबहुं ॥३२०९॥

पज्जोसवणाकाले पत्ते असिवं होहिति त्ति णातूण ण पज्जोसवेंति, ओमोयरिएसु वि एवं अतिक्कंते वा पज्जोसविज्जा । महल्लठाणातो वा चिरेण णिग्गया ते ण पज्जोसवणाए पज्जोसवेज्जा, बोहियभए वा णिग्गता अतिक्कंता पज्जोसवेंति । एवं दोसु वि सुत्तेसु अप्पाबहुं णाउं ण पज्जोसविंति । अपज्जोसवणाए वा पज्जोसवेंति ॥३२०९॥

---

१. गा० ३२०५ ।

परिशिष्ट-५

अन्य ग्रंथो से तुलना[1]

निर्युक्ति गाथा	क.नि.	निर्युक्ति संख्या	अन्य ग्रन्थ
अपडिक्कमसोहम्मे	५९	११०	निभा ३१९९
अप्पिणह तं बइल्लं	४२	९३	निभा ३१८१
अब्भुवगतगतवेरे	६१	११२	निभा ३२०१
अवहंत गोण मरुए	५३	१०४	निभा ३१९३
असिवाइकारणेहिं	१६	६७	निभा ३१५२, बृभा ४२८३
असिवे ओमोयरिए	२४	७५	निभा ३१६१
आसाढपुण्णिमाए	२२	६३	निभा ३१४९, बृभा ४२८०
इय सत्तरी जहण्णा	१८	६९	निभा ३१५४, बृभा ४२८५
इरि-एसण-भासाणं	३७	८८	निभा ३१७६
उच्चार-पासवण-खेल	३४	८५	निभा ३१७२
उड्ढमहे तिरियम्मि य	२६	७६	निभा ३१६३
उण्णियवासाकप्पो	६६	११७	निभा ३२०६
उदयसरिच्छा पक्खेण	५०	१०१	निभा ३१८९
उभओवि अद्धजोयण	२५	७५	निभा ३१६२
ऊणाइरित्त मासा	१२	६२	निभा ३१४८
ऊणाइरित्त अट्ठ	७	५८	निभा ३१४४
एगबइल्ला भंडी	४१	९२	निभा ३१८०
एत्थ तु अणभिग्गहियं	१५	६६	निभा ३१५१, बृभा ४२८२
एत्थ तु पणगं पणगं	१७	६८	निभा ३१५३, बृभा ४२८४
एमेव थंभकेयण	५२	१०३	निभा ३१९०
ओदइयादीयाणं	४	५५	निभा ३१४१

१. (संदर्भ - निर्युक्तिपञ्चक) ।

काऊण मासकप्पं	५	५९	निभा ३१४५, बृभा ४२८६
कामं तु सव्वकालं	३८	८९	निभा ३१७७
कारणओ उडुगहिते	३३	८४	निभा ३१७१
कालो समयादिओ	६	५७	निभा ३१४३
खद्धाऽऽदाणियगेहे	४७	९८	निभा ३१८६
गंधार गिरी देवय	४५	९६	निभा ३१८५
चंपा कुमार नंदी	४३	९४	निभा ३१८२, बृभा ५२२५
जइ अत्थि पदविहारो	२०	७१	निभा ३१५७, बृभा ४२८७
ठवणाए निक्खेवो	३	५४	निभा ३१४०
तिण्णि दुवे एक्का वा	२७	७८	निभा ३१६४
दगघट्ट तिण्णि सत्त व	२८	७९	निभा ३१६५
दव्वट्ठवणाहारे	२९	८०	निभा ३१६६
दासो दासीवतितो	४६	९७	निभा ३१८५
धुवलोओ उ जिणाणं	३५	८६	निभा ३१७३
णिवचिंत विगालपडिच्छणा	५५	१०६	निभा ३१९५
नेच्छइ जलूगवेज्जग...	५६	१०७	निभा ३१९६
पच्छित्तं बहुपाणो	६२	११३	निभा ३२०२
पज्जोसमणाए अक्खराइं	१	५२	निभा ३१३८
पडिमापडिवन्नाणं	१०	६१	निभा ३१४७
परिवसणा पज्जुसणा	२	५३	निभा ३१३९
पसत्थविगईग्गहणं	३२	८३	निभा ३१६९, तु. ३१७०
पायसहरणं छेत्ता	४८	९९	निभा ३१८७
पासत्थि पंडरज्जा	५८	१०९	निभा ३१९८
पुरिम-चरिमाण कप्पो	६३	११४	निभा ३२०३
पुव्वाहीयं नासइ	६७	११८	निभा ३२०७
पुव्वाहारोसवणं	३०	८१	निभा ३१६७
बाहिं ठित्तति वसभेहिं	१४	६५	निभा ३१५०, बृभा ४२८१
बोहण पडिमा उदयण	४४	९५	निभा ३१८३
भासणे संपाइमवहो	३९	९०	निभा ३१७८
मण-वयण-कायगुत्तो	४०	९१	निभा ३१७९

महुरा-मंगू आगम	६०	११९	निभा ३२००
मोत्तुं पुराण भाविय	३६	८७	निभा ३१७४
राया सप्पे कुंथू	२२	७३	निभा ३१५८
वणिधूयाचंकारिय	५४	१०५	निभा ३१९४
वाओदएण राई	४९	१००	निभा ३१८८
वाले सुत्ते सुई	६८	११९	निभा ३२०८
वासं वा न ओरमई	२३	७४	निभा ३१६०
वासाखेत्तालंभे	९	६०	निभा ३१४६
विगति विगतीभीओ	३१	८२	निभा ३१६८, पंच. ३७०
संजमखेत्तचुयाणं	६५	११६	निभा ३२०५
सयगुणसहस्स पागं	५७	१०८	निभा ३१९७
सामित्ते करणम्मि य	५	५६	निभा ३१४२
सुत्ते जहा निबद्धं	६४	११५	निभा ३१०४
सेलट्ठि थंभ	५१	१०२	निभा ३१९१

• • •

परिशिष्ट-६

चूर्णि+अवचूर्णिगतपरिभाषा-कोशः

स्थान-गाथा	शब्द	अर्थ
प्रा.गा. २,५३	जिट्ठोग्गहो	उडुबद्धो एक्केक्कं मासं खेत्तोग्गहो भवति त्ति । वरिसासु चत्तारि मासा एगखेत्तोग्गहो भवति त्ति जिट्ठोग्गहो ।
अव.गा. २,५३	जेट्ठोग्गहो	(ज्येष्ठावग्रहः) ज्येष्ठावग्रहः=बहुकालस्थानम् ।
प्रा.गा. २,५३	ठवणा	उडुबद्धातो अण्णमेरा ठविज्जतीति ठवणा ।
अव.गा. २,५३	ठवणा	(स्थापना) स्थापना ऋतुबद्धादन्या मर्यादा स्थाप्यतेऽत्रेति ।
प्रा.गा. २८,७९	दगघट्ट	जत्थ जाव अद्धं जंघाए उदगं ।
अव.गा. २,५३	पज्जुसणा	(पर्युषणा) पर्युषणा, उष्-निवासे परि-समन्तात्, चतुरो मासानेकत्र तिष्ठन्ति पर्युषणा ।
प्रा.गा. २,५३	पज्जुसणा	सव्वासु दिसासु ण परिब्भमंतीति पज्जुसणा ।
प्रा.गा. १,५२	पज्जोसमणा	पज्जायाणं तो समणा
प्रा.गा. १,५२	पज्जोसमणा	परि=सव्वतो भावे, उस=निवासे ।
प्रा.गा. १,५२	पज्जोसमणा	जम्हा उडुबद्धिया दव्व-खेत्त-काल-भाव-पज्जाया इत्थ उज्झिज्झंत्ति ।
अव.गा. १,५२	पज्जोसमणा	(पर्युषमना) ऋतुबद्धिका द्रव्यक्षेत्रकालभावाः पर्युष्यन्ते=त्यज्यन्ते । अत्र'म' रूपम् ।
अव.गा. २,५३	पज्जोसवणा	(पर्युषवना) वर्षाकालसम्बन्धिनां द्रव्यक्षेत्रकालभावानां स्वीकारः, यतो ऋतुबद्धे एकैकं मासं तिष्ठन्ति, वर्षासु चत्वार इत्यादि । अत्र'व'त्वमिति भेदः । वर्षाकालारम्भे एव श्रावणवदप्रतिपदि वासः ।
अव.गा. २,५३	पढमसमवसरणं	(प्रथमसमवसरणम्) वर्षाप्रारम्भे प्रथममवस्थानम् ।
प्रा.गा. २,५३	पढमसमोसरणं	निव्वाघातेणं पाउसे चेव वासपाउग्गं खित्तं पविसंतीति पढम-समोसरणं ।
प्रा.गा. १,५३	परियागववत्थवणा	जम्हा पवज्जा-परियातो पज्जोसमणा-वरिसेहिं गणिज्जति तेण परियागववत्थवणा भण्णति ।

अव.गा. २,५२	परियाययवत्थवणा	पर्यायव्यवस्थापना । यथाक्रमं वन्द्यमाने पर्यायपृच्छाया उपस्थापितस्य 'कति पर्युषणा गता ?' इति पर्यायव्यवस्थापनम् आर्षं नाम ।
प्रा.गा. २,५३	परिवसणा	गिहत्था एगत्थ चत्तारि मासा परिवसंतित्ति परिवसणा ।
अव.गा. २,५३	परिवसणा	(परिवसना) सर्वासु दिक्षु न परिभ्रमन्ति ।
अव.गा. १,५२	पागइया	(प्राकृतिकाः) प्राकृतिकाः=गृहस्था एकत्र चतुरो मासाँस्तिष्ठन्ति पर्युषणायाः प्राकृतिका नाम ।
प्रा.गा. २,५३	पागतिया	पज्जोसवणत्ति एतं सव्वलोगसामण्णं पागतियत्ति ।
प्रा.गा. ६४,११५	वग्घारियं	वग्घारियं नाम जं भिण्णवासं पडति, वासकप्पं भेत्तूण अंतो कायं तिम्मेति ।
अव.गा. ६४,११५	वग्घारियं	यदभिन्नं वर्षं पतति कल्पं भित्त्वा अन्तःकायं आर्द्रयति इति वघारी वृष्टिरुच्यते ।
प्रा.गा. २,५३	वासावासो	वरिसासु चत्तारि मासा एगत्थ अच्छंतीति वासावासो ।
प्रा.गा. ३१,८२	विगति	तं आहारित्ता संयतत्वादसंयतत्त्वं विविधैः प्रकारैः गच्छिहिति विगति ।
प्रा.गा. ३१,८२	विगती	विगतो संयतभावो जस्स सो विगती ।
प्रा.गा. ६५,११६	संजमखेत्त	जत्थ वासकप्पा उण्णिया लब्भंति, जत्थ पादाणि अण्णाणि य संजमोवगरणाणि लब्भंति तं संजमखित्तं ।
अव.गा. ६५,११६	संजमखेत्त	(संयमक्षेत्रम्) संयमक्षेत्रं नाम यत्र उण्णिय= ऊर्णावर्षा कल्पा लभ्यन्ते । यात्रालाबुपात्राण्यन्यानि च संयमोपकरणानि लभ्यन्ते, स्वाध्यायैषणायाः शुद्धिर्भवति, यत्र वर्षति काले च तत् संयमक्षेत्रं स्यात् ।

• • •

परिशिष्ट-७

कल्पनिर्युक्ति में इङ्गित दृष्टान्त

(सन्दर्भः दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्तिः एक अध्ययन)

(सं० डॉ० अशोक कुमार सिंह)

जैनपरम्परा में प्राचीन काल से ही जन-जन के अन्तर्मानस में धर्म, दर्शन और अध्यात्म के सिद्धान्तों को प्रसारित करने की दृष्टि से प्रसिद्ध कथाओं, विशेषतः धर्मकथाओं का आश्रय लिया गया है। जैन धर्मकथा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसमें सत्य, अहिंसा, परोपकार, दान, शील आदि सद्गुणों की प्रेरणायें सन्निहित होना है। धर्मकथा के विषय का प्रतिपादन करते हुए आचार्य हरिभद्र ने भी कहा है, ''धर्म को ग्रहण करना ही जिसका विषय है, क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य, शौच, आकिञ्चन्य, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य की जिसमें प्रधानता है, अणुव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डविरति, सामायिक, पौषधोपवास, उपभोग-परिभोग तथा अतिथिसंविभाग से जो सम्पन्न है, अनुकम्पा, अकामनिर्जरादि पदार्थों से जो सम्बद्ध है, वह धर्मकथा कही जाती है।''[१]

प्राकृत गाथा-निबद्ध निर्युक्तियों में सङ्केतित दृष्टान्त कथायें भी धर्मकथायें हैं। अधिकरण अर्थात् पाप के दुष्परिणाम, क्षमा का माहात्म्य और चारों कषायों-क्रोध, मान, माया और लोभ के दुष्परिणामों को बताने वाली कथाओं का सङ्केत कर अधिकरण, कषायादि से विरत रहने एवं क्षमा आदि धर्मों का पालन करने की प्रेरणा दी गई है।

दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति[२] में अधिकरण अर्थात् कलह, पाप, दुष्प्रवृत्ति आदि सम्बन्धी द्विरुक्तक, चम्पाकुमारनन्दी और चेट द्रमक के दृष्टान्तों में असंयमी या गृहस्थ जनों में परस्पर कलह और शत्रुता के कारण वध, खलिहान जलाने तथा युद्ध में बन्दी बनाने जैसे प्रतिशोधात्मक कृत्य किये जाते हैं। फिर भी जब एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष से क्षमायाचना की जाती है तो दूसरा पक्ष उसके शत्रुतापूर्ण कृत्यों और अक्षम्य अपराध को अनदेखा कर क्षमा प्रदान कर देता है।

---

१. **समराइच्चकहा,** पूर्वार्द्ध (प्राकृत) आचार्य हरिभद्र, हि० अनु० डॉ० रमेशचन्द्र जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, प्रा-प्र० २, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली १९९३, पृ० ४।

२. **दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति** (मूल), सं० विजयामृतसूरि, **'निर्युक्तिसंग्रह'** हर्षपुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला १८९, लाखाबावल १९८९, गाथा ९०-११०, पृ० ४८५-८६।

इन दृष्टान्तों द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि जब असंयमी लोग भयङ्कर अपराधों के लिए क्षमायाचना और क्षमादान कर सकते हैं तब संयमी साधु तो अवश्य ही अपने प्रति किये गये अपराधों को क्षमा कर सकते हैं और स्वकृत अपराधों के लिए दूसरों से क्षमा माँग सकते हैं।

उपर्युक्त दृष्टान्तों के अतिरिक्त कषाय के दुष्परिणाम को बताने वाले चार दृष्टान्त-सङ्केत प्राप्त होते हैं। इनमें अनन्तानुबन्धी क्रोध कषाय से सम्बन्धित हल जोतने वाले मरुत, अनन्तानुबन्धी मानविषयक श्रेष्ठिपुत्री अत्यहङ्कारिणी भट्टा, अत्यधिक माया कषाय से युक्त श्रमणी पाण्डुरार्या तथा लोभी श्रमण आर्यभंगु के दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। इस निर्युक्ति में संकेतित दृष्टान्तों को इस प्रकार सूचीबद्ध कर सकते हैं :-

१. अधिकरण अर्थात् कलह सम्बन्धी दृष्टान्त

१. द्विरुक्तक दृष्टान्त

२. चम्पाकुमारनन्दी दृष्टान्त

३. भृत्य द्रमक दृष्टान्त

२. कषाय से सम्बन्धित दृष्टान्त

१. क्रोधकषाय विषयक मरुत दृष्टान्त,

२. मानकषाय विषयक अत्यहङ्कारिणी भट्टा दृष्टान्त,

३. मायाकषाय विषयक पाण्डुरार्या दृष्टान्त,

४. लोभकषाय विषयक आर्यमङ्गु दृष्टान्त।

निर्युक्ति साहित्य में कथाओं को, उनके प्रमुख पात्रों के नाम-निर्देश के साथ एक, दो या कभी-कभी तीन गाथाओं में कथा के मुख्य बिन्दुओं के कथन द्वारा, इङ्गित किया गया है। कथा का पूर्ण स्वरूप परवर्ती साहित्य से ही ज्ञात हो पाता है, वह भी मुख्यतः चूर्णि साहित्य से। **निशीथभाष्यचूर्णि**[३] और **दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि**[४] में उपर्युक्त कथायें दिये गये क्रम से उपलब्ध हैं। नि०भा०चू० में ये कथायें विस्तृत रूप में वर्णित हैं जबकि द० चू० में संक्षिप्त रूप में वर्णित हैं। इन दोनों चूर्णियों के अतिरिक्त यथाप्रसङ्ग **बृहत्कल्पभाष्य**[५] और

३. **निशीथभाष्य-चूर्णि,** भाग ३, सं० आचार्य अमरमुनि, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली एवं सन्मति ज्ञानपीठ, वीरायतन, राजगृह (ग्र० स० ५), पृ० १३९-१५५।

४. **दशाश्रुतस्कन्धमूलनिर्युक्तिचूर्णिः**—मणिविजयगणि ग्रन्थमाला सं० १४, भावनगर १९५४, पृ० ६०-६२।

५. **बृहत्कल्पभाष्य,** जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९३३-४२।

आवश्यकचूर्णि[६] में भी ये कथायें प्राप्त होती हैं। इन चूर्णियों में प्राप्त विवरणों के आधार पर ही इन कथाओं का स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है–

१. अधिकरण सम्बन्धी द्विरुक्तक दृष्टान्त

एगबइल्ला भंडी पासह तुब्भे उज्झ खलहाणे ।
हरणे झामणजत्ता, भाणगमल्लेण घोसणया ॥९१॥

अप्पिणह तं बइल्लं दुरुतग्ग ! तस्स कुंभयारस्स ।
मा भे डहीहि गामं अन्नाणि वि सत्त वासाणि ॥९२॥

– दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति गाथा[७]

कथा सारांश

एक कुम्हार मिट्टी के बर्तनों से भरी बैलगाड़ी लेकर द्विरुक्तक (द्वि-अर्थी भाषा बोलने वाले) नाम के समीपवर्ती गाँव में पहुँचा। कुम्हार का एक बैल चुराने के अभिप्राय से द्विरुक्तकों ने कहा, 'हे ! हे ! लोगो ! आश्चर्य देखो ! एक बैल वाली गाड़ी है।' इस पर कुम्हार बोला, 'हे लोगों ! देखो ! इस गाँव का खलिहान जल रहा है' और उसने गाड़ी गाँव के बीच ले जाकर खड़ी कर दी। मौका देखकर गाँव वालों ने उसका एक बैल चुरा लिया। बर्तन बिक जाने के बाद आने पर उसने गाँव वालों से बैल वापस देने की बार-बार याचना की। गाँव वालों ने कहा, 'तुम एक ही बैल के साथ आये हो। बैल वापस न मिलने से क्रुद्ध कुम्हार शरदकाल में गाँव वालों के धान्य से भरे खलिहान को लगातार सात वर्ष तक आग लगाता रहा। आठवें वर्ष गाँव वालो ने इकट्ठे होकर घोषणा करवायी कि, 'जिसके प्रति भी हमने अपराध किया है, वह हमें क्षमा करे, परिवार सहित हमारा नाश न करें।' तब कुम्हार बोला, 'बैल मुझे वापस दो।' बैल मिल जाने पर उसने गाँव वालों को क्षमा कर दिया।

यदि उन असंयत अज्ञानी लोगों द्वारा स्वकृत अपराध हेतु क्षमा माँगी गयी और उस असंयमी कुम्हार ने क्षमा भी कर दिया, तो पुनः संयत ज्ञानियों द्वारा भी अपने प्रति किये गये अपराध के लिए पर्युषण पर्व में अवश्य क्षमा कर देनी चाहिए। ऐसा करने से संयम आराधना होती है।

२. चम्पाकुमार नन्दी या अनङ्गसेन दृष्टान्त

चंपाकुमारनंदी पंचऽच्छर थेरनयण दुमऽवलए ।
विह पासणया सावग इंगिणि उववाय णंदिसरे ॥९३॥

---

६. **आवश्यकचूर्णि,** दो खण्ड, ऋषभदेव केसरीमल संस्था, रतलाम १९२८-२९।

७. **द०नि०,** लाखाबावल, पृ० ४८५।

बोहण पडिमा उदयण पभावउप्पाय देवदत्ताते ।
मरणुयवाए तायस, यणं तह भीसणा समणा ॥९४॥
गंधार गिरी देवय, पडिमा गुलिया गिलाण पडियरेण ।
पज्जोयहरण पुक्खर रण गहणा मेऽज्ज ओसवणा ॥९५॥
दासो दासीवतितो छत्तद्वि य जो घरे य वत्थव्वो ।
आणं कोवेमाणो हंतव्वो बंधियव्वो य ॥९६॥ –द०नि० ।[८]

कथा-सारांश

जम्बूद्वीप में चम्पा नगरी निवासी स्वर्णकार कुमारनन्दी अत्यन्त स्त्री-लोलुप था । रूपवती कन्या दिखाई पड़ने पर धन देकर उससे विवाह कर लेता था । इस तरह उसने पाँच सौ स्त्रियों से विवाह किया था । मनुष्यभोग भोगते हुए वह जीवन यापन कर रहा था । इधर पञ्चशैल नाम के द्वीप पर विद्युन्माली नामक यक्ष रहता था । हासा और प्रभासा (प्रहासा) उसकी दो प्रमुख पत्नियाँ थीं। भोग की कामना से वे विचरण कर रही थीं तब तक कुमारनन्दी दिखाई पड़ा । कुमारनन्दी को अपना अप्रतिम रूप दिखाकर वे छिप गई । मुग्ध कुमारनन्दी द्वारा याचना करने पर वे प्रकट होकर बोली, ''पञ्चशैल द्वीप आओ'' और वे अदृश्य हो गई ।

नाना प्रकार से प्रलाप करते हुए वह राजा के पास गया । राजा-उद्घोषक से उसने घोषणा करवायी कि, उसे (अनङ्गसेन को) पञ्चशैल द्वीप ले जाने वाले को वह करोड़ मुद्रा देगा । एक वृद्ध नाविक तैयार हो गया । अनङ्गसेन उसके साथ नाव पर सवार होकर प्रस्थान किया । दूर जाने पर नाविक ने पूछा, ''क्या जल के ऊपर कुछ दिखाई दे रहा है ?'' उसने कहा, ''नहीं ।'' थोड़ा और आगे जाने पर मनुष्य के सिर के प्रमाण का बहुत काला वन दिखाई पड़ा । नाविक ने बताया कि, ''धारा में स्थित यह पञ्चशैलद्वीप पर्वत का वटवृक्ष है । यह नाव जब वटवृक्ष के नीचे पहुँचे तब तुम इसकी साल पकड़कर वृक्ष पर चढ़कर बैठे रहना । सन्ध्यावेला में बहुत से विशाल पक्षी पञ्चशैल द्वीप से आयेंगे । वे रात्रि वटवृक्ष पर बिताकर प्रातःकाल द्वीप लौट जायेंगे । उनके पैर पकड़कर तुम वहाँ पहुँच जाओगे ।''

वृद्ध यह बता ही रहा था कि नौका वटवृक्ष के पास पहुँच गयी, कुमारनन्दी वृक्ष पर चढ़ गया । उपरोक्त रीति से जब वह पञ्चशैल द्वीप पहुँचा, दोनों यक्ष देवियों ने कहा, ''इस अपवित्र शरीर से तुम हमारा भोग नहीं कर सकोगे । बालमरण तप कर निदानपूर्वक यहाँ उत्पन्न होकर ही हमारे साथ भोग कर सकोगे ।'' देवियों ने उसे सुस्वादु पत्र-पुष्प, फल और जल दिया । उसके सो जाने पर उन देवियों ने सोते हुए ही हथेलियों पर रखकर उसे चम्पा नगरी में उसके भवन में रख दिया । निद्रा खुलनेपर आत्मीयजनों को देखकर वह ठगा सा दोनों यक्ष देवियों का नाम

८. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ४८५ ।

लेकर प्रलाप करने लगा । लोगों के पूछने पर कहता, ''पञ्चशैल के विषय में जो वृत्त सुना था उसको देखा और अनुभूत किया ।''

श्रावक नागिल उसका समवयस्क था । नागिल ने कहा कि, ''जिनप्रज्ञप्त धर्म का पालन करो जिससे सौधर्म आदि कल्पों में दीर्घकाल तक स्थित रहकर वैमानिक देवियों के साथ उत्तम भोग कर सकोगे । इन अल्प स्थिति वाली वाणव्यन्तरियों के साथ भोग करने से क्या प्रयोजन ?'' फिर भी उसने निदान सहित इङ्गिनीमरण स्वीकार किया । कालान्तर में वह पञ्चशैल द्वीप पर विद्युन्माली नामक यक्ष हुआ और हासा-प्रभासा (प्रहासा) के साथ भोग करते हुए विचरण करने लगा ।

नागिल श्रावक भी श्रमण व्रत अङ्गीकार कर, आलोचना और प्रतिक्रमण कर समय व्यतीत करते हुए अच्युतकल्प में सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ ।

किसी समय नन्दीश्वर द्वीप में अष्टाह्निका की महिमा के निमित्त सभी देव एकत्रित हुए । समारोह में देवताओं द्वारा विद्युन्माली देव को पटह (नगाड़ा) बजाने का दायित्व सौंपा गया । अनिच्छुक उसे बलात् लाया गया । पटह बजाते हुए उसे नागिलदेव ने देखा । पूर्वजन्म के अनुराग के कारण प्रतिबोध देने हेतु नागिलदेव ने उसके समीप आकर पूछा, ''मुझे जानते हो ?'' विद्युन्माली ने कहा, ''आप शक्रादि इन्द्रों को कौन नहीं जानता है ?'' तब देव ने कहा, ''इस देवत्व से भिन्न पिछले जन्म के विषय में कहता हूँ ।'' विद्युन्माली के अनभिज्ञता प्रकट करने पर देव ने कहा कि, ''मैं पूर्वभव में चम्पा नगरी का वासी नागिल था । तुमने पूर्वभव में मेरा कहना नहीं माना इसलिए अल्पऋद्धिवाले देवलोक में उत्पन्न हुए हो ।'' विद्युन्माली ने पूछा, ''मुझे क्या करना चाहिए ?'' अच्युत देव ने कहा, ''बोधि के निमित्त जिनप्रतिमा का अवतारण करो ।'' विद्युन्माली चुल्लि(ल्ल)हिमवंत पर देवता की कृपा से जाकर गोशीर्षचन्दन की लकड़ी की प्रतिमा लाया । उसे रत्ननिर्मित समस्त आभूषणों से विभूषित किया और गोशीर्षचन्दन की लकड़ी की पेटी के मध्य रख दिया और विचार किया, ''इसे कहाँ रखूँ ?''

इधर एक वणिक् की नौका समुद्र-प्रवाह में फँस गयी और छः मास तक फँसी रही । भयभीत और परेशान वणिक् अपने इष्ट देवता के नमस्कार की मुद्रा में खड़ा रहा । विद्युन्माली ने कहा, ''आज प्रातःकाल यह वीतिभय नगर के तट पर प्रवाहित होगी । गोशीर्षचन्दन की यह लकड़ी वहाँ के राजा उदायन को भेंटकर इससे नये देवाधिदेव की प्रतिमा निर्मित कराने के लिए कहना ।'' देवकृपा सो नौका वीतिभय नगर पहुँची । वणिक् ने राजा के पास जाकर देव के कथनानुसार निवेदन किया और वृत्तान्त कहा । राजा ने भी नगरवासियों को एकत्र किया और वणिक् से ज्ञात वृत्तान्त बताया । वणकुट्टग से प्रतिमा बनाने के लिए कहा गया । ब्राह्मणों ने देवाधिदेव ब्रह्म की प्रतिमा बनाने के लिए कहा । परन्तु कुठार से लकड़ी नहीं कटी । ब्राह्मणों ने कहा, ''देवाधिदेव विष्णु की प्रतिमा बनाओ,'' फिर भी कुठार नहीं चली और इसप्रकार स्कन्ध, रुद्रादि

देवगणों का नाम लेने पर भी जब शस्त्र कार्य किया, सभी खिन्न हुए ।

रानी प्रभावती ने राजा को आहार के लिए बुलाया । राजा के नहीं आने पर प्रभावती देवी ने दासी को भेजा । उसने राजा के विलम्ब का कारण बताया । दासी से वृत्तान्त ज्ञात होने पर रानी ने विचार किया, ''मिथ्यादर्शन से मोहित ये लोग देवाधिदेव से भी अनभिज्ञ हैं । प्रभावती स्नान कर कौतुक मङ्गलकर, शुक्ल परिधान धारणकर हाथ में बलि, पुष्प-धूपादि लेकर वहाँ गयी । प्रभावती ने बलि आदि सब कृत्य कर कहा, ''देवाधिदेव महावीर वर्द्धमान स्वामी हैं, उनकी प्रतिमा कराओ ।'' इसके बाद कुठार से एक प्रहार में ही उस लकड़ी के दो टुकड़े हो गये । उसमें रखी हुई सर्वालङ्कारभूषिता भगवान् की प्रतिमा दिखाई पड़ी । घर के समीप निर्मित मन्दिर में राजा ने उस मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी ।

कृष्णगुलिका नामक दासी मन्दिर में सेविका नियुक्त की गई । अष्टमी और चतुर्दशी को प्रभावती देवी भक्तिराग से स्वयं ही मूर्ति की पूजा करती थी । एक दिन पूजा करते समय रानी को राजा के सिर की छाया नहीं दीख पड़ी । उपद्रव की आशङ्का से भयभीत रानी ने राजा को सूचित किया । और उपाय सोचा कि जिनशासन की पूजा से मरण का भय नहीं रहता है ।

एक दिन प्रभावती के स्नान-कौतुकादि क्रिया के बाद मन्दिर जाने हेतु शुद्ध वस्त्र लाने का दासी को आदेश दिया । उत्पात-दोष के कारण वस्त्र कुसुंभरंग से लाल हो गया । प्रभावती ने उन वस्त्रों को प्रणाम किया परन्तु उसमें रङ्ग लगा हुआ देखकर वह रुष्ट हो गई और दासी पर प्रहार किया, दासी की मृत्यु हो गयी । निरपराधिनी दासी के मर जाने पर प्रभावती पश्चात्ताप करने लगी कि, दीर्घकाल से पालन किये गये मेरे स्थूलप्राणातिपातव्रत खण्डित हो गये । यही मुझ पर उत्पात है ।

प्रभावती ने प्रव्रज्या-ग्रहण की आज्ञा हेतु राजा से विनती की । राजा की अनुमति से गृह त्यागकर उसने निष्क्रमण किया । छः मास तक संयम का पालन कर, आलोचना और प्रतिक्रमण कर मृत्यु के पश्चात् वैमानिक देव के रूप में उत्पन्न हुई ।

राजा को देखकर, पूर्वभव के अनुराग से वह अन्य वेश धारण कर जैनधर्म की प्रशंसा करती है । तापस भक्त होने के कारण राजा उसकी बात स्वीकार नहीं करता था । (प्रभावती) देव ने तपस्वी वेश धारण किया । पुष्पफलादि के साथ राजा के समीप जाकर उसे एक बहुत ही सुन्दर फल भेंट किया । वह फल अलौकिक, कल्पनातीत और अमृतरस के तुल्य था । राजा के पूछने पर तपस्वी ने निकट ही तपस्वी के आश्रम में ऐसे फल उत्पन्न होने की सूचना दी । राजा ने तपस्वी-आश्रम और वृक्ष दिखाने का तपस्वी से अनुरोध किया ।

मुकुट आदि समस्त अलङ्कारों से विभूषित हो वहाँ जाने पर राजा को वनखण्ड दिखाई

पड़ा। उसमें प्रविष्ट होने पर आश्रम दिखाई पड़ा । आश्रम के द्वार पर राजा को ऐसा आभास हुआ की मानो कोई कह रहा है, ''यह राजा अकेले ही आया है । इसका वध कर इसके समस्त अलङ्कार ग्रहण कर लो ।'' भयभीत राजा पीछे हटने लगा । तपस्वी भी चिल्लाया, ''दौड़ो-दौड़ो, यह भाग रहा है, इसे पकड़ो ।'' तब सभी तपस्वी हाथ में कमण्डल लेकर 'मारो-मारो, पकड़ो-पकड़ो' कहते हुए दौड़े । राजा भागने लगा ।

भयभीत होकर भागते हुए राजा को एक विशाल वनखण्ड दिखाई पड़ा । उसमें मनुष्यों का स्वर सुनाई पड़ा । उस वनखण्ड में प्रवेश करने पर राजा ने चन्द्र के समान सौम्य, कामदेव के समान सौन्दर्ययुक्त, बृहस्पति के समान सर्वशास्त्र विशारद, बहुत से श्रमणों, श्रावकों, श्राविकाओं के समक्ष, धर्म का प्रवचन करते हुए एक श्रमण को देखा । राजा 'शरण-शरण' चिल्लाते हुए वहाँ गया । श्रमण ने कहा, ''भयभीत मत हो ! छोड़ दिये गये ।'' यह कहते हुए तपस्वी भी चला गया, राजा भी आश्वस्त हो गया । श्रमण से धर्म प्रवचन सुनकर राजा ने जिन धर्म स्वीकार कर लिया ।

परन्तु यथार्थ में राजा अपने सिंहासन पर ही बैठा था, वह कहीं गया ही नहीं था । उसने सोचा, 'यह क्या है ?' आकाशस्थित (प्रभावती) देव ने बताया, 'यह सब (चमत्कार) मैंने तुझे प्रतिबोध देने के लिए किया था । तुम्हारा धर्म निर्विघ्न हो !' यह कहकर देव अन्तर्ध्यान हो गये। समस्त नगरवासियों के मध्य घोषणा हुई, वीतिभय नगर में देव द्वारा अवतीर्ण प्रतिमा है ।

गान्धार जनपदवासी एक श्रावक ने सङ्कल्प किया कि, 'सभी तीर्थङ्करों के पञ्चकल्याणकों-जन्म, निष्क्रमण, कैवल्यप्राप्ति, निर्वाणभूमियों आदि का दर्शन करने के पश्चात् प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा ।' यात्रा के दौरान उसने वैताढ्य गिरि की गुफा में वर्तमान ऋषभादि तीर्थङ्करों की रत्ननिर्मित स्वर्ण-प्रतिमाओं के विषय में एक साधु के मुख से सुना । अतः दर्शन की इच्छा से वहाँ गया। स्तव एवं स्तुतियों से स्तवन करते हुए, अहोरात्र निवास करते हुए उसके मन में रत्नों के प्रति थोड़ा भी लोभ नहीं हुआ। उसके निर्लोभ से तुष्ट हो प्रत्यक्ष होकर देव ने उससे वर माँगने के लिए कहा । तब श्रावक ने कहा, ''भोग से निवृत्त मुझे वरदान से क्या प्रयोजन ?''

'मोघरहित देवत्व का दर्शन है'', यह कहकर देवता ने यथाचिन्तित मनोरथों को पूर्ण करने वाली आठ सौ गुलिकायें प्रदान की । फिर श्रावक वीतिभय नगर में विद्यमान देव द्वारा अवतारित समस्त अलङ्कारों से विभूषित प्रतिमा के विषय में सुनकर, उसके दर्शनार्थ वहाँ गया । प्रतिमाराधन के लिए कुछ दिन तक मन्दिर में रुका और बीमार पड़ गया । 'प्रव्रज्याभिलाषी मेरे लिए ये गुलिकायें निष्प्रयोजन हैं,' यह सोचकर उसने गुलिकायें मन्दिर की दासी कृष्णगुलिका को दे दी और वहाँ से प्रस्थान किया।

कृष्णगुलिका ने गुलिकाओं की शक्ति-परीक्षा के लिए यह सङ्कल्प कर एक गुलिका खा

ली कि, 'मैं उदात्त कनकवर्णा, सुन्दर रूपवाली और ऐश्वर्यवाली हो जाऊँ ।' उससे वह देवता के समान कामरूपवाली, परावर्तित वेशवाली, उदात्त कनकवर्णवाली, सुन्दर रूपवाली और सुभगा हो गयी । लोगों में चर्चा होने लगी कि देवताओं की कृपा से कृष्णगुलिका कनकवर्णा हो गयी । इसका नाम स्वर्णगुलिका होना चाहिए और वह इसी नाम से प्रसिद्ध हो गयी । गुलिकाओं की अलौकिक शक्ति के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाने पर उसने एक गुलिका मुख में रखकर कामना कियी कि, 'प्रद्योत राजा मेरे पति हों ।'

वीतभय से उज्जयिनी अस्सी योजन (३२० कोस) दूर होने पर भी अकस्मात् राजसभा में राजा प्रद्योत के सम्मुख एक पुरुष यह कथा कहने लगा, ''वीतिभय नगर में देवता द्वारा अवतारित प्रतिमा की सेविका कृष्णगुलिका देवकृपा से स्वर्णगुलिका हो गई है । अत्यधिक सौभाग्य तथा लावण्य से युक्त वह बहुत से लोगों द्वारा पार्थित की जाने लगी है ।''

वार्ता सुनकर प्रद्योत ने स्वर्णगुलिका को पाने हेतु उदायन के पास दूत भेजा कि, ''इसे स्वर्णगुलिका के साथ वापस करो ।' दूत के पहुँचने पर उदायन ने यथोचित सत्कार नहीं किया । अपने प्रस्ताव का अनुकूल उत्तर न मिलने पर प्रद्योत ने युद्धदूत भेजा कि, ''यदि स्वर्णगुलिका को नहीं भेजोगे तो युद्धार्थ आ रहा हूँ !'' वह दूत स्वर्णगुलिका से भी मिला । उसने कहा, ''यदि प्रतिमा वहाँ जायेगी तभी मैं जाऊँगी, अन्यथा नहीं जाऊँगी ।'' दूत के लौट आने पर प्रद्योत अपने हाथी-रत्न अनलगिरि पर सवार होकर युद्ध के लिए सुसज्जित हो, कवच धारण कर गुप्त रूप से प्रदोषवेला में (प्रदोष समये) नगर में प्रविष्ट हुआ । वहाँ वसन्त काल में कृत्रिम प्रतिमा निर्मित करवाकर, उसे सजाकर उच्चस्वर में गीत गाते हुए देवतावतारित प्रतिमा लाने के लिए राजभवन में निर्मित मन्दिर में प्रविष्ट हुआ । छल से कृत्रिम प्रतिमा को मन्दिर में स्थापित किया और देवतावतारित प्रतिमा का हरण कर प्रद्योत चला गया ।

जिस रात अनलगिरि वीतिभय नगर में प्रविष्ट हुआ, गन्धहस्ति के गन्ध से उसके प्रवेश के विषय में लोगों को ज्ञात हो गया । महामन्त्री ने विचार किया, 'निश्चय ही अनलगिरि हाथी-स्तम्भ नष्ट कर आया हुआ है अथवा दूसरा कोई वनहस्ती आया हुआ है ।' प्रातःकाल अनलगिरि के आने के लक्षण दिखाई पड़े । राजा को बताया गया कि प्रद्योत आकर वापस चला गया । स्वर्णगुलिका की खोज करवाने पर ज्ञात हुआ कि उसके निमित्त ही प्रद्योत आया था । मन्दिर में विद्यमान प्रतिमा की सत्यता की परख के लिए तथा यह देवतावतारित प्रतिमा है या उसकी प्रतिमूर्ति यह जानने के लिए उस पर पुष्प रखे गये । मूल प्रतिमा के गोशीर्षचन्दन की शीतलता के प्रभाव से पुष्प मलिन नहीं होते थे । राजा स्नान करने के पश्चात् मध्याह्न में देवायतन गये और पूर्व कुसुमों को म्लान हुआ देखकर राजा ने जान लिया, 'मूल प्रतिमा का हरण हो गया है ।' क्रोधित उदायन ने चण्डप्रद्योत के पास दूत भेजा कि, 'दासी को भले ही हर ले गये किन्तु प्रतिमा

वापस भेज दो !' चण्डप्रद्योत की ओर से सकारात्मक उत्तर न मिलने पर उदायन ने समस्त साधनों एवं सेनाओं के साथ प्रस्थान किया । ग्रीष्म का समय होने से मरु जनपद में यात्रा करते हुए जलाभाव से समस्त सेना प्यास से व्याकुल हो गयी । समस्या के निवारण के लिए उदायन राजा ने प्रभावती देव की आराधना की । देव के आसन में कम्प उत्पन्न हुआ । देव द्वारा अवधिज्ञान का प्रयोग करने पर उदायन राजा की आकृति दिखाई पड़ी । देव ने तुरन्त आकर बादलों से जलवर्षा करवायी जिससे देवता द्वारा निर्मित पुष्कर में जल एकत्र हो गया । इस देवकृत पुष्कर को ही अज्ञानी लोग पुष्करतीर्थ कहने लगे ।

उज्जयिनी पहुँचकर उदायन राजा ने प्रद्योत को घेर लिया और अधिसंख्य लोगों की उपस्थिति में उससे कहा, ''तुमसे हमारा विरोध है । हम दोनों ही युद्ध करेंगे, शेष जनों को मरवाने से क्या ?'' प्रद्योत ने इसे स्वीकार कर लिया । बाद में दूत के माध्यम से सन्देश भिजवाया कि, ''किस प्रकार युद्ध करेंगे—रथों से, हाथियों से या अश्वों से ?'' उदायन ने कहा, ''तुम्हारे हाथी अनलगिरि जैसा उत्तम हाथी मेरे पास नहीं है, तब भी तुझे जो अभीष्ट है उससे युद्ध करो ।'' प्रद्योत ने कहा, ''रथ से युद्ध करेंगे !'' निश्चित दिन उदायन रथ पर उपस्थित हुआ जबकि प्रद्योत अनलगिरि हाथी-रत्न के साथ । शेष सेनापति एवं सैन्यसमूह दर्शक मात्र था, तटस्थ था ।

युद्ध आरम्भ होने पर उदायन ने हाथी के चारों पैरो को बाँध दिया । हाथी गिर पड़ा । उज्जयिनी पर उदायन का अधिकार हो गया । स्वर्णगुलिका भाग गई । देवताधिष्ठित प्रतिमा को पुनः वहाँ से लाना सम्भव नहीं हुआ । प्रद्योत के ललाट पर ''दासीपति'' यह नाम अङ्कित करवाया गया ।

उदायन सेना सहित लौट आया, प्रद्योत भी बन्दी बनाकर लाया गया । उदायन के वापस आते-आते वर्षाकाल आ गया । पर्युषण पर्व आरम्भ होने पर उदायन ने दूत द्वारा प्रद्योत से पूछवाया कि वे क्या आहार ग्रहण करेंगे । दूत द्वारा अप्रत्याशित रूप से पूछने पर प्रद्योत आशङ्कित हो गया कि प्राण का खतरा है । दूत ने शङ्का-निवारण किया कि, 'श्रमणोपासक राजा आज पर्युषणा का उपवास रखते हैं इसलिए तुम्हें इच्छित आहार प्रदान करेंगे ।' प्रद्योत को दुःख हुआ कि पापकर्म युक्त होने के कारण पर्युषण का आगमन भी नहीं जान पाया । उसने उदायन से कहलवाया कि, 'वह भी श्रमणोपासक है और आज आहार नहीं ग्रहण करेगा ।' तब उदायन ने कहा, ''श्रमणोपासक को बन्दी बनाने से मेरा सामायिक शुद्ध नहीं होगा और न ही सम्यक् पर्युशमन होगा । इसलिए श्रमणोपासक को बन्धन से मुक्त करता हूँ और सम्यक् क्षमापना करूँगा ।'' उसने प्रद्योत को मुक्त कर दिया और ललाट पर जो अङ्कित था उस पर स्वर्णपट्ट बाँध दिया । उसके बाद से वह 'पट्टबद्ध' राजा के रूप में प्रख्यात हो गया ।

इस प्रकार यदि गृहस्थ भी वैरवश किये गये पापों का उपशमन करते हैं तो पुनः सर्वपाप से विरत श्रमणों को तो अच्छी प्रकार से उपशमन करना चाहिए ।

३. भृत्य द्रमक–वृत्तान्त

खद्धाऽऽदाणियगेहे पायस दट्ठूण चेडरूवाइं ।
पियरो भासण खीरे जाइय लद्धे य तेणा उ ॥९७॥

पायसहरणं छेत्ता पच्चागय दमग असियए सीसं ।
भाउय सेणावति खिंसणा य सरणागतो जत्थ ॥९८॥–द० नि० ।[९]

कथा-सारांश[१०]

द्रमक नामक नौकर का पुत्र, स्वामी के घर में बना क्षीरान्न देखकर, उसे माँगने लगा। नौकर गाँव में से दूध और चावल माँगकर लाया और पत्नी को क्षीरान्न बनाने के लिए कहा। निकट के गाँव में ठहरा हुआ चोरों का दल गाँव लूटने के लिए आया और उस गरीब के घर से क्षीरान्न से भरी थाली उठा ले गया। उस समय वह नौकर खेत पर गया हुआ था। खेत से तृण काटकर लौटते समय वह यह सोचते हुए घर आया कि, 'आज बच्चे के साथ क्षीरान्न खाऊँगा।' बच्चे ने क्षीरान्न की चोरी के बारे में बताया। द्रमक तृण-पूल रखकर क्रोध से भरकर चला। चोरों के सेनापति के सामने क्षीरान्न की थाली देखी, सेनापति अकेला था। चोर दुबारा गाँव में चले गये थे। द्रमक ने तलवार से उसका सिर काट लिया। सेनापति का वध हो जाने से चोर भी भाग गये। सेनापति का छोटा भाई नया सेनापति बना। सेनापति की माँ, बहन और भाभी उसकी निन्दा करती थीं, ''भाई के वैरी के जीवित रहने पर तुम्हारे सेनापतित्व का धिक्कार है।'' सेनापति क्रोध में भरकर गया और द्रमक को जीवित पकड़कर लाया। उसने द्रमक से पूछा, ''हे ! हे ! भ्रातृवैरी ! किस अस्त्र से तुम्हें मारुँ ?'' द्रमक ने उत्तर दिया, ''जिससे शरणागत पर प्रहार करते हैं, उससे प्रहार करो।'' द्रमक के इस उत्तर पर वह सोचने लगा–शरणागत पर प्रहार नहीं किया जाता है और उसने द्रमक को मुक्त कर दिया।

यदि धर्म के उस अज्ञानी ने भी मुक्त कर दिया तो पुनः परलोक से भयभीत वात्सल्य के जानकार क्यों नहीं सम्यक्त्व का पालन करेंगे ?

४. क्रोध कषाय विषयक मरुक दृष्टान्त

अवहंत गोण मरुए चउण्ह वप्पाण उक्करो उवरिं ।
छोढुं मए सुवट्ठाऽतिकोवे णो देमो पच्छित्तं ॥१०३॥–द० नि०[११] **।**

---

९. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ४८५ ।

१०. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ६१ एवं **नि०भा०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० १४७-१४८ ।

११. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ४८ ।

कथा-सारांश[१२]

मरुक नामक व्यक्ति के पास एक बैल था। वह उसे जोतने के लिए खेत पर ले गया। जोतते-जोतते बैल थककर गिर पड़ा और उठ न सका। तब मरुक ने उसे इतना मारा कि मारते-मारते पैरा या चाबुक टूट गया, तब भी बैल नहीं उठा। एक क्यारी के ढेल से मारा, फिर भी नहीं उठा। चार क्यारियों के ढेलों से मारा, फिर भी नहीं उठा। तब उसने बैल पर ढेलों का ढेर कर दिया और बैल मर गया।

गोवधजनित पाप की विशुद्धि के लिए वह मरुक किसी ब्राह्मण के पास गया। सारी बात बताकर उसने अन्त में कहा कि, ''आज भी बैल के ऊपर मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ।'' ब्राह्मण ने कहा, ''तुम अतिक्रोधी हो, तुम्हारी शुद्धि नहीं है, तुम्हें प्रायश्चित्त नहीं दूँगा।''

इस प्रकार साधु को भी क्रोध नहीं करना चाहिए। यदि क्रोध उत्पन्न भी हो तो वह जल में पड़ी लकीर के समान हो। जो क्रोध पुनः एक पक्ष में, चातुर्मास में और वर्ष में उपशान्त न हो उसे विवेक द्वारा शान्त करना चाहिए।

५. मान कषाय विषयक अत्यहङ्कारिणी भट्टा दृष्टान्त

वणिधूयाऽच्चंकारिय भट्टा अट्ठसुयमग्गओ जाया।
वरग पडिसेह सचिवे, अणुयत्तीह पयाणं च ॥१०४॥

णिवचिंत विगालपडिच्छणा य दारं न देमि निवकहणा।
खिंसा णिसि निग्गमणं चोरा सेणावई गहणं ॥१०५॥

नेच्छइ जलूगवेज्जग गहणं तम्मि य अणिच्छमाणम्मि।
गाहावइ जलूगा थणभाउग कहण मोयणया ॥१०६॥

सयगुणसहस्सपागं, वणभेसज्जं वतीसु जायणता।
तिक्खुत्त दासीभिंदण ण य कोवो सयं पदाणं च ॥१०७॥—द० नि०[१३]।

कथा-सारांश[१४]

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में जितशत्रु राजा था, धारिणी देवी उसकी रानी और सुबुद्धि उसका मन्त्री था। वहाँ धन नामक श्रेष्ठी था, भट्टा उसकी पुत्री थी। माता-पिता ने सब परिजनों से कह दिया था, भट्टा जो भी करे, उसे रोका न जाय, इसलिए उसका नाम 'अच्चंकारिय' भट्टा पड़ा।

---

१२. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ६१ एवं **नि०भा०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० १४९-१५०।

१३. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ४८६।

१४. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ६१ एवं **नि०भा०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० १५०-१५१।

वह अत्यन्त रूपवती थी । बहुत से वणिक्परिवारों ने उसका वरण करना चाहा । धनश्रेष्ठि उनसे कहता था कि, ''जो इसे इच्छानुसार कार्य करने से मना नहीं करेगा, उसे ही यह दी जायेगी'', इस प्रकार वह वरण करने वालों का प्रस्ताव अस्वीकार कर देता ।

अन्त में एक मन्त्री ने भट्टा का वरण किया । धन ने उससे कहा, ''यदि अपराध करने पर भी मना नहीं करोगे, तब दूँगा ।'' मन्त्री द्वारा शर्त मान लेने पर भट्टा उसे प्रदान कर दी गई। कुछ भी करने पर वह उसे रोकता नहीं था ।

वह अमात्य राजकार्यवश विलम्ब से घर लौटता था, इससे भट्टा प्रतिदिन रुष्ट होती थी। तब वह समय से घर आने लगा । राजा को दूसरों से ज्ञात हुआ कि, यह पत्नी की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करता है । एक दिन आवश्यक कार्यवश राजा ने रोक लिया । अनिच्छा होते हुए भी उसे रुकना पड़ा। अत्यन्त रुष्ट हो भट्टा ने दरवाजा बन्द कर लिया । घर आकर अमात्य ने दरवाजा खुलवाने का बहुत प्रयास किया फिर भी जब भट्टा ने दरवाजा नहीं खोला तब मन्त्री ने कहा, ''तुम ही स्वामिनी बनो ! मैं जाता हूँ ।''

रुष्ट हो वह द्वार खोलकर पिता के घर की ओर चल पड़ी । सब अलङ्कारों से विभूषित होने के कारण चोरों ने रास्ते में पकड़कर उसके सब अलङ्कार लूट लिये और उसे सेनापति के पास लाये। सेनापति ने उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा पर वह उसे नहीं चाहती थी। उसने बलपूर्वक भोग नहीं किया, और उसे जलूक वैद्य के हाथ बेच दिया । वैद्य ने भी उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा । भट्टा उसकी भी पत्नी बनने के लिए सहमत नहीं हुई । भट्टा क्रोध में जलूक के प्रतिकूल वचन बोलती और उसकी इच्छा के विपरीत कार्य करती थी । वह शीलभङ्ग नहीं करना चाहता था । भट्टा रक्तस्राव के कारण कुरूप हो गई । इधर उसका भाई कार्यवश वहाँ आया और धन देकर उसे छुड़ा लाया। वमन और विरेचन द्वारा पुनः उसे रूपवती बनाकर मन्त्री के पास भेजा। स्वीकार कर अमात्य ने उसे घर लाया ।

भट्टा ने क्रोध पुरस्सर मान का दोष देखकर अभिग्रह किया मैं मान अथवा क्रोध कभी नहीं करूँगी ।

६. माया कषाय विषयक पाण्डुरार्या दृष्टान्त

पासत्थि पंडरज्जा परिण्ण गुरुमूल णाय अभिओगा ।
पुच्छति च पडिक्कमणे पुव्वब्भासा चउत्थम्मि ॥१०८॥
अपडिक्कम्म सोहम्मे अभिओगा देवि सक्कतोसरणं ।
हत्थिणि वायणिसग्गो गोतमपुच्छा य वागरणं ॥१०९॥—दशा० नि०[१५] ।

---

१५. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ४८६ ।

कथा-सारांश[१६]

पाण्डुरार्या नामक एक शिथिलाचारिणी साध्वी थी। वह पीत संवलित शुक्ल वस्त्रों से सदा सुसज्जित रहती थी। इसलिए लोग उसे पाण्डुरार्या नाम से जानते थे। उसे विद्यासिद्ध थी और वह बहुत से मन्त्रों को जानने वाली थी। लोग उसके समक्ष करबद्ध सिर झुकाये बैठे रहते थे। उसने आचार्य से भक्तप्रत्याख्यान कराने के लिए कहा। तब गुरु ने सब प्रत्याख्यान करा दिया। भक्तप्रत्याख्यान करने पर वह अकेली बैठी रहती थी। उसके दर्शनार्थ कोई नहीं आता था। तब उसने विद्या द्वारा लोगों का आह्वान किया। लोगों ने पुष्प-गन्धादि लेकर उसके पास आना आरम्भ कर दिया। श्रावक-श्राविका वर्ग से पूछा गया कि, ''क्या उन्हें बुलाया गया है? ''लोगों ने अस्वीकार किया। पूछने पर वह बोली, ''मेरी विद्या का चमत्कार है।'' आचार्य ने कहा, ''त्याग करो! उसके द्वारा चामत्कारिक कार्य छोड़ने पर लोगों ने आना छोड़ दिया। आर्या पुनः एकाकिनी हो गई। तब चमत्कार द्वारा पुनः बुलाना आरम्भ किया। आचार्य द्वारा पूछने पर वह बोली कि, ''लोग पूर्व अभ्यास के कारण आते हैं। इस प्रकार बिना आलोचना किये ही मृत्यु प्राप्त कर वह सौधर्म कल्प में ऐरावत की अग्रमहिषी उत्पन्न हुई वह भगवान् महावीर के समवसरण में हस्तिनी का रूप धारण कर आई है।'' कथा के अन्त में उच्चस्वर से शब्द की है। भगवान् ने पूर्वभव कहा। इसलिए कोई भी साधु अथवा साध्वी ऐसी दुरन्ता माया न करे।

७. लोभ कषाय विषयक आर्यमङ्गु दृष्टान्त

महुरा मंगू आगम बहुसुय वेरग्ग सड्ढपूया य।
सातादिलोभ णितिए, मरणे जीहा य णिद्धमणे ॥११०॥–(द०नि० ।[१७])

कथा-सारांश[१८]

बहुश्रुत आगमों के अध्येता, बहुशिष्य परिवार वाले, उद्यत विहारी आचार्य आर्यमङ्गु विहार करते हुए मथुरा नगरी गये। वस्त्रादि से श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा की गई। क्षीर, दधि, घृत, गुड़ आदि द्वारा उन्हें प्रतिदिन यथेच्छ प्रतिलाभना प्राप्त होती थी। सातासुख से प्रतिबद्ध हो विहार नहीं करने से उनकी निन्दा होने लगी। शेष साधु विहार किये। मङ्गु आलोचना और प्रतिक्रमण न कर श्रामण्य की विराधना करते हुए मरकर अधर्मी व्यन्तर यक्ष के रूप में उत्पन्न हुए। उस क्षेत्र से जब साधु निकलते और प्रवेश करते थे तब वह यक्ष, यक्षप्रतिमा में प्रवेशकर दीर्घ आकार

---

१६. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ६२ एवं **नि०भा०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० १५१-१५२।

१७. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ४८६।

१८. **द०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० ६२ एवं **नि०भा०चू०,** पूर्वोक्त, पृ० १५२-१५३।

वाली जिह्वा निकालता। श्रमणों द्वारा पूछने पर कहता, ''मैं सातासुख से प्रतिबद्ध जिह्वा-दोष के कारण अल्प ऋद्धि वाला होकर इस नगर में व्यन्तर उत्पन्न हुआ हूँ। तुम्हें प्रतिबोधित करने के लिए यहाँ आया हूँ। मेरे जैसा मत करना।''

कुछ लोग इस कथा को इस प्रकार भी कहते हैं, जब श्रमण आहार लेते थे तब वह समस्त अलङ्कारों से विभूषित हो दीर्घ आकार वाला हाथ गवाक्ष द्वार से साधुओं के आगे फैलाता। साधुओं द्वारा पूछने पर कहता, ''यह मैं आर्यमङ्गु ऋद्धि और जिह्वा-लोभ से अत्यधिक प्रमाद वाला होकर मरणोपरान्त लोभ-दोष से अधर्मी यक्ष हुआ हूँ। इसलिए तुम लोग इस प्रकार लोभ मत करना।''

• • •

परिशिष्ट-८

कल्पनिर्युक्ति-संकेतसूचि

संकेत शब्द	संकेतों का विवरण
अ०	महिमा ज्ञानभक्ति भण्डार की हस्तप्रत ।
आ०	आयारो
चू०	चूर्णि
निभा०	निर्युक्ति भाष्य
ब०	लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिर, अहमदाबाद की हस्तप्रत, क्रमांक सं. १६२५६ ।
बी०	राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर की हस्तप्रत, क्रमांक सं. १३०३० ।
बभा०	बृहत्कल्प भाष्य
मु०	जिनदास कृत चूर्णि में प्रकाशित निर्युक्ति-गाथा के पाठान्तर ।
ला०	लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिर, अहमदाबाद की हस्तप्रत ।
पु०	मु. श्री पुण्यवि. सम्पादित चूर्णिः (पवित्र कल्पसूत्र) ।
कु०	आ. श्री वि. कुलचन्द्रसू.जी सम्पादित दशाश्रुतस्कन्धचूर्णिः ।

• • •

परिशिष्ट-९

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

ग्रन्थ नाम	कर्ता	सम्पादक	प्रकाशक और प्रकाशन
अनुसन्धान-५१		वि.शीलचन्द्रसू.	क.स. हेमचन्द्रचार्य शिक्षणनिधि अहमदाबाद
उवासगदसाओ		युवा.श्रीमधुकरमुनि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
कल्पसूत्रम् किरणावली टीका सहित		मु. वैराग्यरतिवि., मु. प्रशमरतिवि.	प्रवनच प्रकाशन, पुणे.
कैलाश श्रुतसागर ग्रन्थ सूचि खण्ड-१		पं. मनोज जैन, डॉ. बालाजी गणोरकर	श्री महावीर जैन आराधन केन्द्र, कोबा तीर्थ, गांधीनगर.
गवर्नमेन्ट कलेक्शन ऑफ मेन्युस्क्रिप्टस, खण्ड-१७, भाग-२		प्रो. एच. आर कापडीया	भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पुणे
जिनरत्नकोश-१		एच. डी. वेलनकर	भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पुणे
जैन परम्परानो इतिहास भाग-१ से ४	त्रिपुटी म.	भद्रसेनविजयजी म.	श्री यशोविजयजी जैन आराधना भवन, पालीताणा.
जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास	मो.द.देसाई	आ. विजय मुनि-चन्द्रसूरिजी	आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर, सुरत
दशाश्रुतस्कन्ध ग्रन्थ निर्युक्ति-चूर्णिसहित:	कुलचन्द्रसूरिजी	अभयचन्द्रवि.ग.	श्री जैन श्वेताम्बर मूर्ति पूजक संघ, पालडी, अहमदाबाद
दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति: एक अध्ययन	डॉ. अशोक कुमार सिंह		पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी.
निर्युक्तिपञ्चकम्		आ. महाप्रज्ञ	जैन विश्व भारती, लाडनूं
निर्युक्ति-सङ्ग्रह		श्री विजयजिनेन्द्र-सूरिजी	श्री हर्षपुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला, लाखाबावल-शांतिपुरी, सौराष्ट्र.
निशीथभाष्यचूर्णि: भाग-३		आचार्य अमरमुनि	भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली.
पवित्रकल्पसूत्र		मु.श्रीपुण्यवि.म.	साराभाई मणिलाल, अहमदाबाद

प्राकृत हिन्दी कोश		के. आर. चन्द्र	प्राकृत जैन विद्या प्रकाश फण्ड, अहमदाबाद.
बृहत् कल्पसूत्रम्		चतुरविजय और पुण्यविजय म.	श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर.
विशेष शतक प्रकरण	उपा. समयसुंदरग.	आ.श्री. कल्याणबोधिसू.	जिनशासन आराधना ट्रस्ट, मुंबई.
विशेषावश्यक भाष्य-भाग-२ (अनुवाद)	जिनभद्रग.	शाह चुनीलाल हकमचंद	आगमोदय समिति, मुंबई.

● ● ●

मुखपृष्ठ परिचय

प्रकृति के प्रसिद्ध पांच मूल तत्त्व है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश । भारत का प्रत्येक दर्शन या धर्म इन पांच में से किसी एक तत्त्व को केंद्र में रखकर विकसित हुआ है । जैन धर्म का केंद्रवर्ती तत्त्व अग्नि है । अग्नि तत्त्व ऊर्ध्वगामी, विशोधक, लघु और प्रकाशक है ।

श्रुतज्ञान अग्नि की तरह अज्ञान का विशोधक है और प्रकाशक है । अग्नि के इन दो गुणधर्मों को केंद्र में रखकर मुखपृष्ठ का पृष्ठभूमि (Theme) तैयार किया गया है ।

कृष्ण वर्ण अज्ञान और अशुद्धिका प्रतीक है । अग्नि का तेज अशुद्धियों को भस्म करते हुए शुद्ध ज्ञान की और अग्रसर करता है । विशुद्धि की यह प्रक्रिया श्रुतभवन की केंद्रवर्ती संकल्पना (Core Value) है ।

अग्नि प्राण है। अग्नि जीवन का प्रतीक है । जीवन की उत्पत्ति और निर्वाह अग्नि के कारण होता है । श्रुत के तेज से ही ज्ञानरूप कमल सदा विकसित रहता है और विश्व को सौंदर्य, शांति एवं सुगंध देता है । चित्र में सफेद वर्ण का कमल इसका प्रतीक है ।

श्रुतभवन में अप्रगट, अशुद्ध और अस्पष्ट शास्त्रों का शुद्धिकरण होता है । शुद्धिकरण के फलस्वरूप श्रुत तेज के आलोक में ज्ञानरूपी कमल का उदय होता है ।